सेतुमाहात्म्यखंड

प्रकाशक -
नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

स्कन्दपुराणान्तर्गत

सेतुमाहात्म्यखंड का भाषानुवाद

अनुवादक—

श्री० पं० दुर्गाप्रसादजी

昭和46年度科学研究費補助金購入図書
東外大・東洋文化研
寄贈 合同海外学術調査団 氏

मुद्रक तथा प्रकाशक

श्रीकेसरीदास सेठ, सुपरिन्टेंडेंट,

नवलकिशोर-प्रेस

लखनऊ.

सन् १९२८ ई०

नवींबार २०००]

[सर्वाधिकारसुरक्षित

東京外国語大学
157221
47.3.31
図書館蔵書

भूमिका

इस संसार में प्रायः कोई भी प्राणी ऐसा न होगा, जो दुःखों से बचने के लिए तथा सुख को पाने के लिए निरन्तर चेष्टा न करता रहता हो, किन्तु वास्तव में सुख और दुःख ये दोनों कौन सी वस्तुएं हैं, इनका सच्चा स्वरूप क्या है, इस तत्व को जानने के लिए चेष्टा करने वाले बहुत थोड़े प्राणी हैं। सांख्यदर्शन के प्रणेता कपिल मुनि आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक इन तीनों प्रकार के दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति को ही प्राणियों का परमपुरुषार्थ मानते हैं। सांख्याचार्य कपिलमुनि ही नहीं, किन्तु वेद, उपनिषद् तथा अन्य दर्शन भी थोड़े बहुत मतभेद के साथ आत्यन्तिक दुःख-निवृत्ति एवं नित्यानन्द की प्राप्ति को ही प्राणिमात्र का चरम-लक्ष्य मानते हैं। उक्त लक्ष्य की प्राप्ति में उत्तम, मध्यम तथा अधम इन तीनों प्रकार के साधकों में भेद होने से साधन भी भिन्न भिन्न हो जाते हैं। वेद, उपनिषद् एवं दर्शनकाल में धर्मप्राण भारतवर्ष सर्वथा निरापद् था, अतः यहां आदर्श ब्रह्मचारी, आदर्श तपस्वी, आदर्श ज्ञानी तथा आदर्श

मुमुक्षुओं की किसी प्रकार की कमी न थी। उस समय की जनता अधिकतर सत्वगुणावलम्बिनी, धार्मिक तथा कर्तव्य-कर्म-परायण होने से वेद-शास्त्र की विधि के अनुसार पुण्यकर्मों को करती हुई धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष आदि चतुर्वर्ग के फलों को प्राप्त करती थी।

देश और काल के प्रभाव से पवित्र भारतवर्ष का वह पवित्र वायुमण्डल न रह सका, पतन तथा आपत्तियों की घटाएं घिर आईं, मनोविकारों की प्रबलता से धार्मिकभावों की कमी हो गई और जनता शनैः शनैः पतन की ओर अग्रसर हो चली। उस समय त्रिकालदर्शी महर्षि व्यासजी ने प्राणियों के कल्याण के लिए भिन्न भिन्न प्रकार के साधकों की रुचि तथा साधनों के अनुरूप पुराणों की रचना की। पुराणों में साधारण श्रेणी के साधकों को, सरल रीति से अभ्युदय तथा निःश्रेयस की प्राप्ति के लिए सुन्दर सुन्दर कथानक, दृष्टान्त तथा चरित्रों के द्वारा उपदेश दिया गया है। पुराणों ने प्राणिजगत् का जितना अधिक कल्याण किया है, उतना अन्य किसी शास्त्र ने भी नहीं किया है। यदि पुराणग्रन्थ न होते, तो भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास आज सर्वथा नष्ट हो जाता।

"स्कन्दपुराण" भी उन्हीं सब श्रेष्ठ पुराणों में से एक है। इसकी श्लोक संख्या ८११०० है। यह पुराण बहुत बड़ा होने से कितने ही खण्डों में विभक्त है। "सेतुमाहात्म्यखण्ड" उसी "स्कन्दपुराण" का एक उपदेशप्रद, उपयोगी खण्ड है। इसमें विशेषरूप से कितने ही दृष्टान्तों तथा कथानकों के द्वारा भगवान् रामचन्द्रजी के द्वारा निर्मित, सेतु तथा रामेश्वर तीर्थ की यात्रा का माहात्म्य विस्तृतरूप से वर्णन किया गया है। इस खण्ड की कथाएं बहुत ही मनोमोहक हैं। संस्कृतभाषा से अनभिज्ञ, हिन्दीभाषा-भाषी, रामेश्वरयात्रा के प्रेमी, श्रद्धालु जनों की सुविधा के लिए श्री पं० दुर्गाप्रसादजी ने स्कन्दपुराणान्तर्गत उसी सेतुमाहात्म्यखण्ड का सरल तथा सुबोध हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है। अनुवाद बहुत ही उत्तम है। "सेतुमाहात्म्यखण्ड" का यह नवम संशोधित संस्करण है। इस खण्ड के इतने अधिक संस्करण हो जाने से धार्मिक जनता ने इसे बहुत अधिक पसन्द किया है, यह बात सर्वथा स्पष्ट है। इस नवम संस्करण में इस ग्रन्थ को सचित्र कर दिया गया है। ग्रन्थ के आकार तथा छपाई-सफ़ाई में भी बहुत अधिक परिवर्तन हुआ है। इस खण्ड को अधिक से अधिक हृदयाकर्षक बनाने का प्रयत्न किया गया है।

आशा है, पुराणों का स्वाध्याय करनेवाले, श्रीरामेश्वर-यात्रा के प्रेमी, सज्जन, महानुभाव इस "सेतुमाहात्म्य-

खण्ड" को अपनाकर, अपनी गुणग्राहिता का परिचय देते हुए अक्षय पुण्य के भागी होंगे।

वशंवद—

कविराज गयाप्रसाद शास्त्री

"श्रीहरि"

प्रबन्धक, "प्रकाशन-विभाग"

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ।

सेतुमाहात्म्यखण्ड
की
विषयानुक्रमणिका

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१	मंगलाचरण, श्रीरामेश्वरजी के दर्शन तथा सेतुयात्रा का माहात्म्य	१
२	श्रीरामचन्द्रजी की कथा, सेतु बांधने का वर्णन तथा सेतु के बीच मुख्य चौबीस तीर्थों के नाम ...	१३
३	चौबीस तीर्थों में चक्रतीर्थ का माहात्म्य और गालव-मुनि की अद्भुत कथा...	२४
४	एक राक्षस की कथा, चक्रतीर्थ का माहात्म्य तथा उसकी सीमा का वर्णन	३६
५	चक्रतीर्थ की प्रशंसा और राजा सहस्रानीक की अद्भुत कथा	४२
६	देवीपुर के नाम का कारण और महिषासुर के युद्ध का वर्णन	६१
७	महिषासुर के संहार का वर्णन	६८
८	वेतालवरदतीर्थ का माहात्म्य और दो विद्याधर कुमारों की अद्भुत कथा	७५
९	वेतालवरदतीर्थ की प्रशंसा और दोनों विद्याधर कुमारों का शापमोक्ष	८४
१०	गन्धमादनपर्वत का माहात्म्य, एक शूद्र और एक मुनि की कथा और पापनाशनतीर्थ का माहात्म्य ...	९४
११	सीतासरोवर का माहात्म्य और कपालाभरणनामक राक्षसराज की कथा	१०४

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१२	मंगलतीर्थ का माहात्म्य तथा राजा मनोजव का इतिहास	१११
१३	एकान्तरामनाथ का और अमृतवापी का माहात्म्य और अगस्त्यमुनि के भ्राता की कथा	१२२
१४	ब्रह्मकुण्ड का माहात्म्य और ब्रह्मा विष्णु के परस्पर कलह होने की कथा	१२८
१५	हनुमत्कुण्ड का माहात्म्य और धर्मसख राजा की कथा	१३४
१६	अगस्त्यतीर्थ का माहात्म्य और कक्षीवान् मुनि का अद्भुत इतिहास	१४०
१७	राजा स्वनय की कन्या से कक्षीवान् के विवाह का वर्णन	१४६
१८	रामतीर्थ का माहात्म्य, सुतीक्ष्णमुनि की कथा और राजा युधिष्ठिर का इतिहास	१५४
१९	लक्ष्मणतीर्थ का माहात्म्य और बलदेवजी की कथा ...	१६६
२०	जटातीर्थ का माहात्म्य और शुकदेवजी की कथा ...	१७४
२१	लक्ष्मीतीर्थ का माहात्म्य और पाण्डवों की सम्पत्ति प्राप्त होने का वर्णन	१७६
२२	अग्नितीर्थ का माहात्म्य और दुष्पण्यनाम एक वैश्यपुत्र की अद्भुत कथा	१८५
२३	चक्रतीर्थ की प्रशंसा, देवताओं के यज्ञ करने का वर्णन और सूर्य भगवान् को सुवर्ण के हस्त प्राप्त होने का इतिहास	१९६
२४	शिवतीर्थ का माहात्म्य और ब्रह्मा विष्णु के परस्पर कलह होने की कथा	२०१
२५	शंखतीर्थ का माहात्म्य और वत्सनाभमुनि की अद्भुत कथा	२०८
२६	गंगातीर्थ, यमुनातीर्थ और गयातीर्थ का माहात्म्य, रैक्वमुनि का विचित्र इतिहास और राजा जातश्रुति की अद्भुत कथा	२१२
२७	कोटितीर्थ का माहात्म्य और भगवान्श्रीकृष्णजी के द्वारा कंसवध का वर्णन	२२३
२८	साध्यामृततीर्थ का माहात्म्य तथा उर्वशी और पुरूरवा की विचित्र कथा	२३३

अध्याय	विषय	पृष्ठ
२९	सर्वतीर्थ का माहात्म्य तथा नेत्रहीन सुचरितमुनि की कथा ··· ··· ··· ···	२४३
३०	धनुष्कोटि का माहात्म्य तथा जिन जिन पापों के करने से मनुष्य नरकों में गिरते हैं, उनका वर्णन ···	२४८
३१	धनुष्कोटितीर्थ का माहात्म्य और अश्वत्थामा ने जो सोते हुये वीरों को मारा था, उसका वर्णन ···	२५९
३२	राजा नन्द और धर्मगुप्त की अद्भुत कथा और धनुष्कोटितीर्थ का माहात्म्य ···	२७१
३३	पुरावसु ब्राह्मण की कथा तथा धनुष्कोटितीर्थ का माहात्म्य ··· ··· ···	२७८
३४	एक वानर और जम्बुक तथा सुमति नामक एक महापापी ब्राह्मण की कथा ···	२८५
३५	दुर्विनीत नाम ब्राह्मण की कथा तथा धनुष्कोटितीर्थ का माहात्म्य ··· ··· ···	२९३
३६	दुराचारनाम ब्राह्मण की कथा तथा महालय श्राद्ध के माहात्म्य का विस्तार सहित वर्णन ···	३०१
३७	क्षीरकुण्ड का माहात्म्य और मुद्गलमुनि की कथा	३२०
३८	गरुड़जी का विचित्र इतिहास और क्षीरकुण्ड का माहात्म्य ··· ··· ···	३२६
३९	कपितीर्थ का माहात्म्य तथा रम्भा अप्सरा की कथा	३४१
४०	गायत्रीतीर्थ और सरस्वतीतीर्थ का माहात्म्य तथा ब्रह्माजी की कथा ··· ··· ···	३४८
४१	राजापरीक्षित् और कश्यपनाम ब्राह्मण की कथा, गायत्रीतीर्थ व सरस्वतीतीर्थ का माहात्म्य ···	३५३
४२	गन्धमादनपर्वत के ऋणमोचन आदि सब तीर्थों का माहात्म्य ··· ··· ···	३६५
४३	रामेश्वर का माहात्म्य, अष्टनिधि भक्ति का वर्णन तथा रामेश्वर के पूजन आदि का फल ··· ···	३७१
४४	रावण आदि के वध की कथा तथा रामेश्वर के स्थापन का कारण ··· ··· ···	३८४
४५	हनुमान्जी की अद्भुत कथा तथा हनुमान्जी के प्रति रामचन्द्रजी का ब्रह्मज्ञान उपदेश ··· ···	३९४

अध्याय	विषय	पृष्ठ
४६	हनुमान्‌जी को रामचन्द्रजी ने जिस प्रकार आश्वासन किया, उसका वर्णन, हनुमान्‌जी का किया रामस्तोत्र और सीतास्तोत्र हनुमत्कुण्ड और हनुमदीश्वर महादेव का माहात्म्य वर्णन	४०३
४७	रावण के जन्म आदि का वर्णन और रामचन्द्रजी को रावण के वध करने से ब्रह्महत्या लगने का वर्णन	४११
४८	पाण्ड्य देश के शंकरनामक राजा और शाकल्यमुनि की कथा तथा रामेश्वर प्रशंसा	४१६
४९	रामचन्द्र, लक्ष्मण आदि के किये रामेश्वर महादेव के अनेक स्तोत्र	४२७
५०	सेतुमाधव के वैभव का वर्णन, गुणनिधि राजा और लक्ष्मीजी की अद्भुत कथा	४३७
५१	सेतुयात्रा के क्रम का वर्णन और विधान ...	४४७
५२	सेतु और गन्धमादनपर्वत के तीर्थों का माहात्म्य, अर्धोदय आदि पर्वदिनों में सेतुस्नान का माहात्म्य, सेतुमाहात्म्य के पठन और श्रवण का विस्तार से माहात्म्य, व्यासजी का नैमिषारण्य में आगमन, सेतुमाहात्म्य की प्रशंसा और ग्रन्थ समाप्ति ...	४५५

इति ।

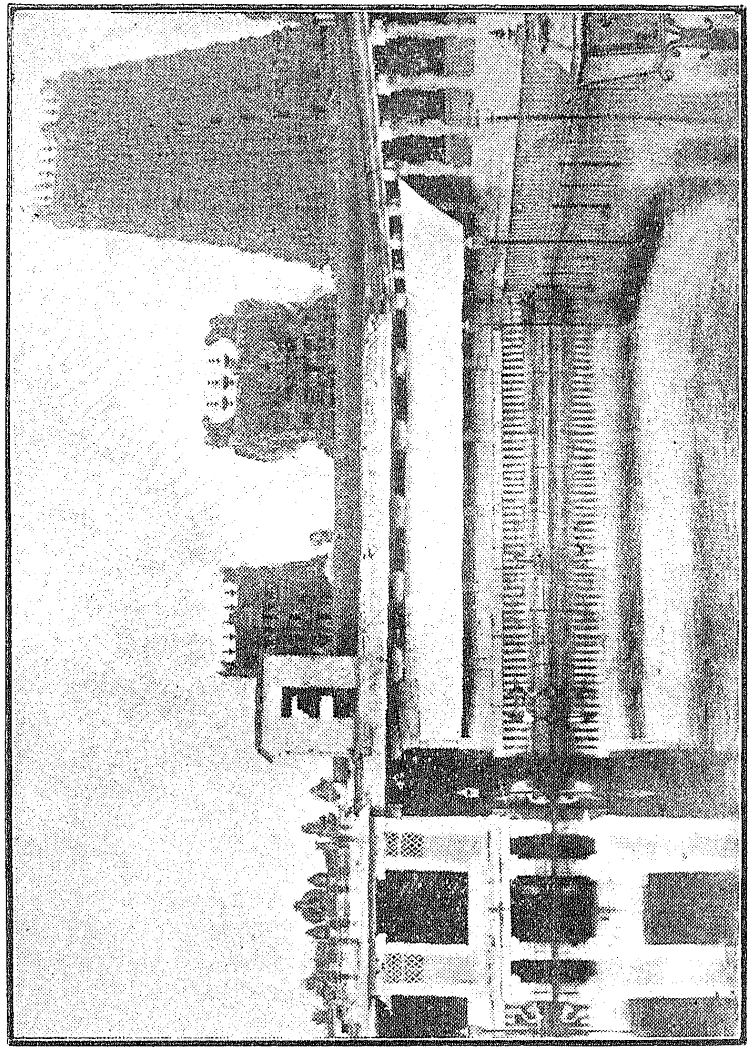

श्रीरामेश्वरजी के मन्दिर के पूर्वद्वार का बाहरी दृश्य ।

स्कन्दपुराणान्तर्गत

सेतुमाहात्म्यखण्ड का भाषानुवाद ।

पहिला अध्याय ।

श्रीरामेश्वरजी के दर्शन तथा सेतुयात्रा का माहात्म्य ।

दो० विबुध मुकुटमणिदीपिका, नीराजित दिन रैन ॥
विघ्न हरें हेरम्ब के, चरणकमल सुखदैन ॥ १ ॥
भजौं नित्य गौरी गिरिश, सकल सिद्धि के हेतु ॥
भक्त मनोरथ कल्पतरु, भवसागर के सेतु ॥ २ ॥

कथा ।

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ॥
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ १ ॥

नैमिषारण्य में बड़े बड़े महात्मा मुमुक्षु ब्रह्मज्ञान में तत्पर, अष्टाङ्गयोग में निपुण, निर्मम,

धर्मज्ञ, असूया आदि दोषों से रहित, जितेन्द्रिय, जितक्रोध, सब भूतों पर दया करनेवाले शौनक आदि छब्बीस सहस्र मुनि अपने शिष्य प्रशिष्यों सहित भक्ति-पूर्वक विष्णु भगवान् का पूजन करते हुये उग्र तप करते थे। एक समय मुक्ति के देनेवाले परमपुण्य उस क्षेत्र में सब मुनियों का समाज एकत्र हुआ। वे सब ऋषि मुनिगण परस्पर अनेक प्रकार की कथा-वार्ता कहते हुए भुक्ति मुक्ति की प्राप्ति के लिये सुगम उपाय सोचने लगे। इसी अवसर में परम विद्वान्, व्यासजी के शिष्य, सब पौराणिकों में उत्तम और बड़े तपस्वी श्रीसूतजी वहां आये। उनको देखकर सब मुनि उठे और बड़े आदर से सूतजी को आसन पर बिठलाकर अर्घ्य-पाद्य आदि से उनका पूजन कर कुशल प्रश्न पूछा। कुछ काल के अनन्तर सूतजी स्वस्थ हुए तब शौनक आदि मुनीश्वरों ने पूछा कि हे सूतजी! आपने सब पुराण श्रीवेदव्यासजी के मुख से सुने हैं इसलिये आप सब पुराणों का

तात्पर्य भली भांति जानते हैं। कृपया आप यह वर्णन कीजिए कि भूमण्डल में कौन पुण्यतीर्थ है, कौन पुण्यक्षेत्र है, जीव संसारसागर से क्योंकर मुक्त होते हैं, शिव और विष्णु में दृढ़-भक्ति क्योंकर हो सकती है और तीन प्रकार के कर्मों का फल क्योंकर सिद्ध होता है। गुरुजन अपने प्रिय शिष्यों को रहस्य बात भी बतला देते हैं अतः व्यासजी ने इस विषय का उपदेश अवश्यमेव दिया होगा। मुनियों के इन वचनों को सुनकर अपने गुरु श्रीवेदव्यासजी को प्रणाम कर सूतजी कहने लगे, हे मुनिगण! आप लोगों ने जगत् के हित के लिये यह बहुत उत्तम बात पूछी है। आज तक यह रहस्य हमने किसी से नहीं कहा, अब आप एकाग्रचित्त हो भक्तिपूर्वक सुनिए। हम वर्णन करते हैं।

रामचन्द्रजी के बांधे हुए सेतु के समीप सब क्षेत्र और तीर्थों में उत्तम रामेश्वरनाम क्षेत्र है। जिसके दर्शनमात्र से शिव और विष्णु में भक्ति, पुण्य की वृद्धि, तीनों प्रकार के कर्मों की

सिद्धि और संसार से मुक्ति होती है। जो मनुष्य भक्ति-पूर्वक सेतु का दर्शन करता है, वह अपने माता पिता के दो कोटि कुलसहित एक कल्प-पर्यन्त शिवलोक में निवास कर अन्त में मुक्ति पाता है। भूमि के पांशु अर्थात् धूलि के कण गिने जा सकते हैं, आकाश के तारे भी गिने जा सकते हैं किन्तु सेतुदर्शन के पुण्य को शेषनाग भी नहीं गिन सकते। सब देवताओं का रूप सेतु है उसके दर्शन का सम्पूर्ण पुण्य कौन वर्णन कर सकता है। सेतुदर्शन करने से सम्पूर्ण यज्ञ करने का, सब तीर्थों में स्नान करने का और सब प्रकार के तप करने का फल प्राप्त होता है। जो व्यक्ति और मनुष्यों को सेतुदर्शन करने के लिये उपदेश करता है वह भी अनन्त पुण्य पाता है। सेतु के समीप स्नान करनेवाला मनुष्य अपने सात कोटि कुलोंसहित विष्णुलोक में जाकर वहीं मुक्त होता है। सेतु, रामेश्वर लिङ्ग और गन्धमादन पर्वत का चिन्तन करनेवाला मनुष्य सब पापों से छूट जाता है। माता पिता

आदि लक्षकोटि कुलोंसहित तीन कल्प शिव-लोक में निवास कर वहीं मुक्त होता है। सेतु-स्नान करनेवाला मनुष्य मूषावस्था, वसाकूप, वैतरणी नदी, श्वभक्ष, मूत्रपान, तप्तशूल, तप्तशिला, पुरीषह्रद, शोणितकूप, शाल्मल्या-रोहण, रक्तभोजन, कृमिभोजन, स्वमांसभोजन, वह्निज्वालाप्रवेशन, शिलावृष्टि, अग्निवृष्टि, काल-सूत्र, क्षारोदक, उष्णतोय आदि घोर नरकों को नहीं देखता है। महापातकी पुरुष भी सेतु स्नान करे तो माता पिता के सौ कोटि कुलसहित तीन कल्प विष्णुलोक में निवास कर वहीं मुक्ति पाता है। अधःशिर, क्षारसेवन, पाषाणयन्त्रपीडन, गर्तप्रपतन, पुरीषलेप, क्रकचदारण, पुरीषभो-जन, रेतःपान, सन्धिदाह, अङ्गारशय्याभ्रमण, मुशलमर्दन आदि नरकों को सेतुदर्शन करने-वाला मनुष्य नहीं देखता है। जो पुरुष मन में यह चिन्तन करता है कि मैं सेतुबन्ध के दर्शन के लिये जाऊंगा अथवा सेतुबन्धयात्रा के अर्थ सौ पैर भी चले वह सब पापों से

मुक्त हो स्वर्ग को जाता है । काष्ठयन्त्रपीडन, शस्त्रभेदन, पतनोत्पतन, गदादण्डनिपीडन, गजदन्तहनन, भुजगदंशन, धूम-पान, पाश-बंध, शूलनिपीडन, क्षारोदक-सेचन, क्षाराम्बुपान, तप्तलोह, सूचिभक्षण, स्नायुदाह, स्नायुच्छेदन, अस्थिभेदन, श्लेष्मादन, विषपान, महातिक्त-निषेवण, उष्ण-तैल-पान, क्षारोदक-पान, कषायोदकपान, तप्तपाषाणभोजन, तप्त-बालुका-भोजन, दशन-मर्दन, तप्तलोह-शयन, तप्ताम्बु-निषेचन आदि महानरकों को सेतुदर्शन करनेवाला नहीं देखता है जिन नरकों में पापियों के नेत्रों में सूची डालते हैं, शिश्न और वृषणों में लोह का भार लटकाते हैं, पापियों को वृक्ष से गिराते हैं, तीखे शस्त्रों की शय्या पर सुलाते हैं और वीर्य पिलाते हैं इत्यादि दारुण नरकों को सेतु में स्नान करनेवाला नहीं देखता है । सेतु के समीप बालूरेत में लोटने से जितने पांशु (धूलि) के कण देह में लगते हैं, उतनी ब्रह्महत्याओं का नाश हो जाता है । जिसके

शरीर में सेतु का पवन लगे उसके दश हज़ार सुरापान-पातक उसी क्षण निवृत्त हो जाते हैं । जिसके केश सेतु के समीप जल में गिरें उसके दश हज़ार गुरुदारगमन नामक महा-पातक नाश को प्राप्त होते हैं । जिस पुरुष के अस्थियों को उसके पुत्र पौत्र सेतुबन्ध में डालें उसके दश हज़ार स्वर्णस्तेयपातक दूर होते हैं । स्नान के समय सेतुबन्ध का स्मरण करने से संसर्गज महापातक कटते हैं। मार्गभेदी अर्थात् रास्ता तोड़नेवाला, केवल अपने लिये रसोई बनानेवाला, यति ब्राह्मण-दूषक, बहुत भोजन करनेवाला और वेद बेचनेवाला ये पांच ब्रह्म-घातक हैं। जो पुरुष ब्राह्मण को धन आदि कोई पदार्थ देना अङ्गीकार करके फिर न दे, जो धर्मोपदेश करनेवाले गुरु से द्वेष करते हैं, और जो ब्राह्मणों का तिरस्कार करते हैं वे भी ब्रह्म-घाती होते हैं। जो पानी पीने के लिये आते हुये गो-समूह को निवारण करे वह भी ब्रह्मघाती है । ये सब पापी सेतुदर्शन करने से निष्पाप हो

जाते हैं । उपासना का त्याग करनेवाला, देवता के अन्न का भोजन करनेवाला, वेश्या पतितसमूह आदि का अन्न भक्षण करनेवाला और सुरापान करनेवाली स्त्री से संग करनेवाला ये सब सुरापान करनेहारे के समान हैं। ये सब सेतुस्नान करने से निष्पाप हो जाते हैं । कन्दमूल फल, कस्तूरी, पट्टवस्त्र, दूध, चन्दन, कपूर, सुपारी, शहद, घी, तांबा, कांसा और रुद्राक्ष की चोरी करनेवाले सुवर्णस्तेयी (सोना चुरानेवाले) गिने जाते हैं। ये भी सेतुदर्शन से निष्पाप होते हैं। किसी भी द्रव्य की चोरी करनेवाले दुष्ट पुरुष सेतु के दर्शन करते ही सब पापों से छूट जाते हैं। बहिन, पुत्र की स्त्री, भाई की स्त्री, मित्र की स्त्री, रजस्वला, परस्त्री, मद्यपान करनेवाली स्त्री, हीन वर्ण की स्त्री और विधवा स्त्री से संग करनेवाले पुरुष गुरुदारगामी कहाते हैं। ये सब सेतुस्नान से निष्पाप हो जाते हैं। जो इनके संसर्गी हैं वे भी सेतुदर्शन करने से पापरहित होते हैं। जो पुरुष विना यज्ञ किये

स्वर्ग में मेनका, घृताची आदि अप्सराओं के साथ विहार करना चाहें, वे सेतु में स्नान करें। सूर्य और अग्नि का सेवन विना किये और देवताओं के आराधन के विना जो पुरुष अपना कल्याण चाहें, वह भक्ति-पूर्वक सेतुस्नान करें। तिल, भूमि, सुवर्ण और अन्नदान किये विना जो स्वर्गवास को चाहें वे सेतुस्नान करें। उपवास व्रतादि करके शरीर को सन्ताप दिये विना स्वर्ग की इच्छा हो तो सेतुस्नान करना चाहिए। सेतुस्नान करने से मन की शुद्धि होती है और मोक्ष प्राप्त होता है। जप, तप, होम, दान, यज्ञ आदि की अपेक्षा सेतुस्नान को पुराणों में श्रेष्ठ कहा गया है। जो पुरुष निष्काम होकर सेतुस्नान करता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं और पुनर्जन्म भी नहीं होता है जो पुरुष सम्पत्ति के लिये सेतुस्नान करता है, वह विपुल सम्पत्ति पाता है। शुद्धि के लिये स्नान करे तो शुद्धि पावे, मुक्ति के लिये करे तो मुक्ति पावे और अप्सराओं के साथ रति के लिये सेतुस्नान करे तो स्वर्ग में जाकर अप्स-

राओं के साथ उत्तम भोग भोगे । सेतुस्नान से पाप का क्षय, धर्म की वृद्धि और सब मनोरथों की सिद्धि होती है । सब व्रत, यज्ञ, योग और तीर्थों से सेतुस्नान बढ़कर है । ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ, कैलास अथवा इन्द्रलोक आदि लोकों में जिन की विहार करने की इच्छा हो वे सेतुस्नान करें। आयुष्, आरोग्य, सम्पत्ति, अतिरूप, सांगवेदों का ज्ञान, सब शास्त्रों का बोध, सब मन्त्रों में अभिज्ञता इत्यादि जिस कामना के उद्देश से सेतुस्नान करे वह कामना अवश्य ही पूर्ण होती है । जो पुरुष दारिद्र्य और नरक से डरते हों वे सेतुस्नान करें । श्रद्धा से अथवा विना श्रद्धा सेतुस्नान करनेवाला मनुष्य दुःखभागी नहीं होता है । सेतुस्नान से सबके पापसमूह नष्ट होते हैं और शुक्लपक्ष के चन्द्र की भांति पुण्य बढ़ता है । जैसे समुद्र में रत्नों की वृद्धि होती है इसी भांति सेतुस्नान करने से धर्म की वृद्धि होती है । कामधेनु कल्पवृक्ष अथवा चिन्तामणि जिस प्रकार मनुष्यों के सब मनोरथ सिद्ध करते

हैं उसी प्रकार सेतुस्नान भी सब कामनाओं को सिद्ध करता है । जो पुरुष दरिद्रता के कारण सेतुयात्रा करने में असमर्थ हों, वे और मनुष्यों से धन मांगकर सेतुयात्रा करें । जो पुरुष सेतुयात्रा करनेवाले को धन देते हैं वे भी सेतुस्नान के समान फल पाते हैं । सेतुयात्रा के लिये ब्राह्मण से धन ले, ब्राह्मण न दे तो क्षत्रिय से ले, क्षत्रिय भी न दे तो वैश्य से धन मांगे, परन्तु शूद्र से कभी धन न ले सेतुयात्रा करनेवाले पुरुष को जो पुरुष धन धान्य वस्त्र भोजन आदि देते हैं, वे अश्वमेध आदि यज्ञों का फल पाते हैं, तुलापुरुष आदि महादान करने का और चारों वेदों के पारायण का भी फल पाते हैं । सेतुस्नान से ब्रह्महत्या आदि पातक दूर होते हैं और सब मनोरथ सिद्ध होते हैं । सेतुयात्रा के लिये जो याचना कर धन ले और यात्रा करे उसको प्रतिग्रह लेने का दोष नहीं होता है और सेतुस्नान का भी सम्पूर्ण फल होता है । जो पुरुष किसी से कहे कि तू सेतुयात्रा कर मैं तुझे धन दूंगा और पीछे

से धन न दे वह ब्रह्मघातक होता है । जो यात्रा के लिये याचना करके धन ले और यात्रा न करे वह भी ब्रह्मघातक है । जो धनवान् होकर लोभ से यात्रा के लिये धन मांगता फिरे वह चोर है । जिस किसी उपाय से सेतुयात्रा करे । जिस व्यक्ति को सेतुयात्रा करने का अवसर न हो वह दक्षिणा देकर ब्राह्मण से सेतुयात्रा करावे । जिस प्रकार धन मांगकर यज्ञ करने में दोष नहीं उसी प्रकार सेतुयात्रा में भी याचना करने का दोष नहीं है । औरों से द्रव्य याचना करके भी मनुष्यों को सेतुस्नान में प्रवृत्त करे । सत्ययुग में ज्ञान से, त्रेता में यज्ञ करने से, द्वापर में दान देने से मोक्ष मिलता है और सेतुस्नान से चारों युगों में मोक्ष प्राप्त होता है ॥

प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय ।

श्रीरामचन्द्रजी की कथा, सेतु-बन्धन का वर्णन और सेतु के बीच मुख्य चौवीस तीर्थों के नाम ।

शौनक आदि ऋषि पूछते हैं कि हे सूतजी ! रामचन्द्रजी ने अगाध समुद्र में क्योंकर सेतु बांधा और सेतु में गन्धमादनपर्वत के बीच कितने तीर्थ हैं यह आप वर्णन करें । ऋषियों का यह वचन सुन सूतजी कहने लगे कि हे महर्षिगण ! रामचन्द्रजी ने जिस प्रकार समुद्र में सेतु बांधा वह हम वर्णन करते हैं आप प्रीतिपूर्वक सुनिए पिता की आज्ञा से दण्डकारण्य में पञ्चवटी के बीच कुटी बनाकर सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजी ने निवास किया । वहीं मारीच के छल से रावण ने सीता को हरा, और श्रीरामचन्द्रजी वन में सीता को ढूंढ़ते २ शोक मोह से व्याकुल पम्पासर के तीर पर पहुँचे। वहां एक वानर को देखा । उस वानर ने भी श्रीरामचन्द्रजी से पूछा कि आप कौन हैं ? तब

श्रीरामचन्द्रजी ने अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा और वानर से भी उसका वृत्तान्त पूछा। तब वह वानर कहने लगा कि हे राम! वानरों के राजा सुग्रीव का मैं मन्त्री हूं और हनुमान् मेरा नाम है। सुग्रीव ने आपके पास मुझे भेजा है वह आपसे मित्रता करना चाहते हैं इसलिये आपको वहां चलना चाहिये।

हनुमान् का यह वचन सुनकर श्रीरामचन्द्र-जी सुग्रीव के पास गये। सुग्रीव के साथ अग्नि को साक्षी करके मित्रता करते हुए श्रीरामचन्द्र-जी ने बालि के मारने की प्रतिज्ञा की। सुग्रीव ने भी सीता को ढूंढ़ना अङ्गीकार किया। इस प्रकार दोनों प्रतिज्ञा कर बड़े स्नेह से ऋष्य-मूक पर्वत में रहने लगे। सुग्रीव के निश्चय के लिये दुन्दुभि नाम राक्षस के शरीर को पैर के अँगूठे से श्रीरामचन्द्रजी ने कई योजन फेंक दिया और एक बाण से सात ताल के वृक्ष भी बेधे। तब सुग्रीव ने प्रसन्न होकर कहा, हे राम! आपको मित्र कर अब मुझे इन्द्र आदि-

देवताओं से भी भय नहीं है। मैं रावण को मारकर अवश्य सीता को लाऊंगा। अनन्तर राम लक्ष्मण को साथ लेकर सुग्रीव किष्किन्धा में गया और गर्जने लगा। बालि भी उसके गर्जन को पहिचानकर क्रोध के साथ अन्तःपुर से निकलकर अपने छोटे भाई सुग्रीव से युद्ध करने लगा। बालि ने एक मूका सुग्रीव के ऐसा मारा कि वह विह्वल होकर भगा और श्रीरामचन्द्रजी के समीप में पहुँचा। तब श्रीरामचन्द्रजी ने एक माला सुग्रीव को पहिना दी और फिर युद्ध करने के लिये भेजा। सुग्रीव पुनः जाकर बालि के साथ बाहुयुद्ध करने लगा। इसी अवसर में रामचन्द्रजी ने एक बाण ऐसा मारा कि बालि गिरपड़ा और मरगया। किष्किन्धा का राज्य सुग्रीव ने पाया। वर्षाऋतु व्यतीत होने के अनन्तर बहुत सी वानरों की सेना साथ लेकर सुग्रीव रामचन्द्रजी के पास आया और सीता को ढूंढ़ने के लिए वानरों को भेजा। उन वानरों में से हनुमान् लङ्का में पहुँचे और सीताजी को देखा। सीताजी की दी-

हुई चूड़ामणि लाकर श्रीरामचन्द्रजी को दिया। चूड़ामणि को देखकर रामचन्द्रजी को हर्ष और शोक दोनों एक ही काल में हुये । फिर लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान् आदि को संग ले श्रीरामचन्द्रजी ने अभिजित् मुहूर्त में लङ्का की ओर प्रस्थान किया। कई देशों को लांघते हुए महेन्द्र पर्वत के मध्य चक्रतीर्थ पर निवास किया। वहीं रावण का भाई विभीषण अपने चार मंत्रियों समेत श्रीरामचन्द्रजी से आ मिला श्रीरामचन्द्रजी ने विभीषण का बड़ा आदर किया। सुग्रीव के मन में सन्देह था कि यह रावण का दूत तो नहीं है । श्रीरामचन्द्रजी ने सुग्रीव का सन्देह दूरकर अनेक युक्तियों तथा परीक्षणों से विभीषण को निष्कपट जान अपने समीप में रक्खा। सम्पूर्ण राक्षसों का राजा बनाकर सुग्रीव के समान विभीषण को भी अपना मन्त्री बनाया ।

श्रीरामचन्द्रजी ने सब वानरों से यह पूछा कि समुद्रलङ्घन का क्या उपाय किया जाय । वानरों

की सेना भी बहुत बड़ी है और समुद्र भी दुस्तर है। समुद्र में बड़ी २ तरङ्गे उठ रही हैं। मत्स्य, शंख, शुक्ति, नक्र आदि जीवों से भरा है । कहीं बड़वाग्नि के कारण भयंकर है। कहीं प्रलय के मेघ गर्ज रहे हैं और सौ योजन इसका विस्तार है । सब सेनासहित हम क्योंकर इसके पार होसकेंगे। यह बड़ा भारी विघ्न बीच में है । सीता क्योंकर प्राप्त होंगी। कौन सा उपाय किया जाय जिससे समुद्र के पार हों बड़ा भारी कष्ट हमारे ऊपर आपड़ा। राज्य से भ्रष्ट होकर वन में आये, पिताजी का देहान्त हुआ और भार्या हरी गई ये सब दारुण दुःख तो थे ही, सबसे अधिक दुःख यह आपड़ा कि, समुद्रलङ्घन किस भांति हो इस समुद्र के गर्जन को धिक्कार है, जो हमारा दुःख नहीं देखता और अगस्त्यजी ने कहा था, हे राम! तुम रावण को मार कर पाप निवृत्त होने के लिये गन्धमादन पर्वत में जाना यह मुनि का वचन क्योंकर मिथ्या हो सक्ता है। इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले कि, हे महर्षिगण ! श्रीरामचन्द्रजी

के इन वचनों को सुनकर सुग्रीव आदि वानर हाथ जोड़ कर बोले कि हे महाराज ! नौका और प्लवों के द्वारा सब सेना पार होजायगी आप क्यों चिन्ता करते हैं ? तब विभीषण ने कहा कि समुद्र का लङ्घन नौका आदि से नहीं होसक्ता इसका यह उपाय है कि श्रीरामचन्द्रजी समुद्र की शरण में प्राप्त हों; क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी के पूर्व पुरुषों ने समुद्र को खोदा है इसलिये समुद्र भी सगरवंश की अवश्य ही सहायता करेगा ।

विभीषण के वचनों को सुनकर सब वानरों को आश्वासन देते हुए श्रीरामचन्द्रजी बोले कि, समुद्र का विस्तार सौ योजन है अतः नौका आदि के द्वारा सब सेनाएँ समुद्र के पार नहीं हो सकती हैं और इतनी नौका भी कहाँ हैं, जिनमें सब सेनाएँ बैठ जायँ। व्यापारियों को क्लेश देना और उनकी नौका छीनना हमें अङ्गीकार नहीं । नौका आदि पर चढ़कर समुद्र में प्रवेश करते ही यदि शत्रु प्रहार करें तो हम न इधर के रहे न उधर के अतः विभीषण का कथन ही हमको

उत्तम देख पड़ता है । पहले हम समुद्र की प्रार्थना करते हैं। यदि प्रार्थना से भी समुद्र हमें मार्ग न देगा तो आग्नेयास्त्र से समुद्र को दग्ध कर देंगे । यह विचारकर, पवित्र हो आचमनकर लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजी कुशों के बिछौने पर समुद्रतट पर सोगये । इस प्रकार निराहार तीन दिन तीन रात्रि उसी कुशों के बिछौने पर सोते रहे और समुद्र की प्रार्थना करते रहे किन्तु समुद्र ने श्रीरामचन्द्रजी को दर्शन न दिया । तब श्रीरामचन्द्रजी ने क्रोध के साथ लक्ष्मण से कहा, आज हम शंख, शुक्ति, मगर, मत्स्य आदि जीवों समेत समुद्र को अपने बाणों से शुष्क करेंगे । क्षमा युक्त हमको समुद्र असमर्थ जानता है, इसलिये अब क्षमा करना अनुचित है । हे लक्ष्मण ! हमारा धनुष् लावो, हम समुद्र को सुखादें और हमारी सेना पैरों से ही पार उतर जाय । बड़े २ दैत्य महा मकर और ऊंचे २ तरङ्गों से युक्त इस निर्मर्याद समुद्र की मर्यादा आज हम तोड़ते हैं । इतना कह

श्रीरामचन्द्रजी ने क्रोध के साथ धनुष् पर बाण चढ़ाया । उस समय उनका स्वरूप ऐसा दुर्धर्ष था जैसा त्रिपुरवध के समय शिवजी का । श्रीरामचन्द्रजी कोप से धनुष् को चढ़ाकर तीनों लोकों को कम्पित करते हुए समुद्र पर बाण छोड़ने लगे । उन बाणों के लगतेही समुद्र भयभीत हो पाताल से निकल कर श्रीरामचन्द्र जी की शरण में आया और ब्राह्मण रूप धारणकर हाथ जोड़ श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति करने लगा ॥

समुद्र उवाच ॥ नमामि ते राघव पादपङ्कजं सीतापते सौख्यद पादसेविनाम् ॥ नमामि ते गौतमदारमोक्षदं श्रीपादरेणुं सुरवृन्दसेव्यम् ॥ १ ॥ सुन्दप्रियादेहविदारिणे नमो नमोऽस्तु ते कौशिकयागरक्षिणे ॥ नमो महादेवशरासभेदिने नमो नमो राक्षससङ्घनाशिने ॥ २ ॥ राम राम नमस्यामि भक्तानामिष्टदायिनम् ॥ अवतीर्णं रघुकुले देवकार्यचिकीर्षया ॥ ३ ॥ नारायणमनाद्यन्तं मोक्षदं शिवमच्युतम् ॥ राम राम महाबाहो रक्ष मां शरणागतम् ॥ ४ ॥

इस प्रकार स्तुति करता हुआ समुद्र बोला, हे श्रीरामचन्द्र ! हे दया के सागर ! तुम कोप को

निवृत्त करो और मेरी रक्षा करो । मैं आपकी शरण में आया हूं । विधाता ने भूमि, वायु, तेज, आकाश आदि का जो स्वभाव रचा है वे उसी में स्थिर हैं । इसी प्रकार मेरा स्वभाव अगाधता (अर्थात् जिसके तल को कोई स्पर्श न करसके) है । लोभ से, काम से, भय से और राग से मैं अपने स्वभाव को कभी नहीं छोड़ सकता, परन्तु आपकी सेना उतरने के लिये मैं अवश्य सहायता करूंगा । समुद्र का यह वचन सुन श्रीरामचन्द्रजी ने कहा कि हे समुद्र ! तुम शुष्क होजावो जिससे हम सेना सहित लङ्का में पहुँचें । तब समुद्र ने फिर प्रार्थना की, महाराज ! जो उपाय मैं कहूँ वह आप कीजिये । यदि मैं आपकी आज्ञा से शुष्क होजाऊं, तो जो आएगा वही मुझे धनुष् का बल दिखाएगा और सूखने की आज्ञा देगा इसलिये आपकी सेना पार होने का मैं उपाय बतलाता हूं । आपकी सेना में विश्वकर्मा का पुत्र बड़ा शिल्पी (कारीगर) नल नामक एक वानर है वह जो तृण, काष्ठ, पाषाण आदि जल में

फेंकेगा उसको मैं धारण करूंगा । वही सेतु बन जायगा । उसी सेतु से सेनासहित तुम लङ्का को जाओ । इतना कह समुद्र अन्तर्धान हुआ । श्रीरामचन्द्रजी ने नल से कहा, तुम समुद्र में सेतु बाँध सकते हो । इसलिये सेतु बाँधो । तब नल कहने लगा, हे श्रीरामचन्द्रजी ! आपकी आज्ञा से समुद्र में मैं सेतु बाँध सक्ता हूं । मेरे पिता विश्वकर्मा ने मुझे वर दिया है और मेरी माता को भी वर दिया है कि मेरे तुल्य शिल्पी तेरा पुत्र होगा । मैं विश्वकर्मा का औरस पुत्र हूं और विश्वकर्मा के समान हूं इसलिये अभी सेतु बाँधता हूं । नल का यह वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने वानरों को आज्ञा दी और वानर भी क्षणभर में हज़ारों पर्वतों के शृङ्ग, वृक्ष, बेलि, तृण आदि ले आये । नल ने समुद्र के ऊपर श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से दश योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा सेतु बाँधा । श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा बँधवाये हुए उस सेतु का जो मनुष्य दर्शन करते हैं, वे सब पातकों से छूट जाते हैं । सेतुदर्शन से

जितना शिवजी प्रसन्न होते हैं, उतना व्रत, दान, तप, होम आदि से प्रसन्न नहीं होते हैं । सूर्य के तेज के समान जैसे कोई तेज नहीं उसी प्रकार सेतुस्नान के तुल्य स्नान नहीं । जहां श्रीरामचन्द्रजी ने सेतु बाँधा और जहां कुशशय्या पर सोये पीछे लोक में प्रसिद्ध तीर्थ हुआ । सूतजी कहते हैं, हे महर्षिगण ! हमने सेतुबन्धन की यह कथा कही । सेतुबन्ध के समीप इतने तीर्थ हैं, कि जिनकी गणना शेषजी भी अपनी हज़ार जिह्वाओं से नहीं कर सक्के हैं । परन्तु जो तीर्थ वहां मुख्य हैं हम उनका माहात्म्य कहते हैं । वहां चौबीस तीर्थ प्रधान हैं, चक्रतीर्थ १ वेतालवरद २ पापविनाशन ३ सीतासर ४ मङ्गलतीर्थ ५ अमृतवापिका ६ ब्रह्मकुण्ड ७ हनुमत्कुण्ड ८ अगस्त्यतीर्थ ९ रामतीर्थ १० लक्ष्मणतीर्थ ११ जटातीर्थ १२ लक्ष्मीतीर्थ १३ अग्नितीर्थ १४ शक्रतीर्थ १५ शिवतीर्थ १६ शंखतीर्थ १७ यमुनातीर्थ १८ गङ्गातीर्थ १९ गयातीर्थ २० कोटितीर्थ २१ साध्यामृततीर्थ २२ मानसतीर्थ २३ और

धनुष्कोटितीर्थ २४ ये चौबीस तीर्थ सेतु के समीप प्रधान हैं और महापातक नष्ट करनेवाले हैं। जिस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी ने सेतु बाँधा जो २ वहां प्रधान तीर्थ हैं, हमने उनका वर्णन किया है, जिनके सुनने से मनुष्य मुक्ति पाते हैं। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक इस अध्याय को पढ़ता अथवा सुनता है, वह जय पाता है और जन्म-मरण के क्लेश से छूट जाता है ॥

द्वितीय अध्याय समाप्त।

तीसरा अध्याय।

चौबीस तीर्थों में चक्रतीर्थ का माहात्म्य और गालवमुनि की अद्भुत कथा।

शौनक आदि ऋषि पूछते हैं कि; हे सूतजी! आपने चौबीस तीर्थ सेतु के समीप में कहे, उनमें प्रथम तीर्थ का नाम चक्रतीर्थ क्योंकर हुआ, कृपया आप यह वर्णन करें। मुनियों का यह वचन सुन सूतजी बोले कि हे महर्षिगण! चौबीस तीर्थों में जो प्रथम तीर्थ है उसके स्मरण करने से गर्भ में

वास नहीं होता और उस तीर्थ में स्नान आदि करने से लाखों जन्मों के किये पाप दूर होते हैं। उस तीर्थ से अधिक अथवा उसके समान जगत् में कोई तीर्थ नहीं है। गङ्गा, सरस्वती, नर्मदा, पम्पा, गोदावरी, यमुना, कावेरी, मणिकर्णिका आदि बड़े २ तीर्थ और उत्तम २ नदी इस तीर्थ के कोटि भाग के भी तुल्य नहीं हैं। इस तीर्थ का पहला नाम धर्मतीर्थ है। जिस प्रकार उसका चक्रतीर्थ यह नाम पड़ा, उसका वर्णन करते हैं।

सेतुमूल के समीप जहां दर्भशयन है, वहीं ही चक्रतीर्थ है। पूर्वकाल में विष्णुभक्त गालव मुनि ने दक्षिणसमुद्र के किनारे हालास्य, फुल्ल-ग्राम, क्षीरसर, एवं धर्मपुष्करिणी आदि तीर्थों में बहुत काल तक तप किया। निरन्तर वेदपाठी, दयायुक्त, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, सब भूतों को अपने तुल्य समझनेवाला, विषयों से निःस्पृह एवं सब जीवों के हित में तत्पर गालव मुनि तप करने लगा। वह कुछ काल तक निराहार रहा, कुछ काल तक वृक्ष का एक सूखा पत्ता खाकर

रहा, कुछ काल तक जलाहार करके रहा और कुछ काल तक वायु भक्षण करके तप करता रहा। पांच हज़ार वर्ष तक इस प्रकार घोर तप करके फिर पांच हज़ार वर्ष निराहार, दृष्टि व श्वास रोककर उसने तप किया। वर्षाऋतु में वर्षा में रहना, हेमन्त में जल के बीच शयन करना और ग्रीष्म में पञ्चाग्नि तापना इस प्रकार हृदय में विष्णुभगवान् का ध्यान और अष्टाक्षर मन्त्र का जप करते हुए उसने बड़ा उग्र तप किया।

तप करते २ गालव मुनि को लाखों वर्ष बीते तब उसके तप से प्रसन्न हो शंख, चक्र, गदा, पद्म को धारण कोटि सूर्य के समान प्रकाशित गरुड़ पर चढ़े छत्र, चामर, हार, केयूर, कटक, मुकुट, कुण्डल आदि से भूषित विष्वक्सेन, सुनन्द आदि सेवकों करके युक्त वेणु, वीणा, मृदङ्ग आदि बाजे बजाते और गाते हुए नारद आदि मुनियों से सेवित पीताम्बर पहने, लक्ष्मी से शोभित मेघ के समान नीलवर्ण दोनों और सनक आदि महायोगियों करके सेवित

एक हाथ से कमल को हिलाते मन्दहास्य से तीनों लोकों को मोहित करते हुए अपनी कान्ति से दशों दिशाओं को प्रकाशित करते कण्ठ में कौस्तुभमणि करके भूषित सुवर्ण की छड़ी हाथ में धारण किए हुए हज़ारों कञ्चुकियों से युक्त, भक्तवत्सल विष्णुभगवान् गालव मुनि के सम्मुख प्रकट हुए। गालव मुनि भी भगवान् के दर्शन पाकर आनन्द में मग्न हो परमभक्ति से स्तुति करने लगा--

गालव उवाच ॥ नमो देवाधिदेवाय शंखचक्रगदाभृते ॥ नमो नित्याय शुद्धाय सच्चिदानन्दरूपिणे ॥ १ ॥ नमो भक्तार्त्तिहन्त्रे ते हव्यकव्यस्वरूपिणे ॥ नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे ॥ २ ॥ नमः परेशाय नमोऽविभूम्ने नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये विधात्रे ॥ नमोऽस्तु सूर्येन्द्रविलोचनाय नमो विरञ्च्याद्यभिवन्दिताय ॥ ३ ॥ यो नाम जात्यादिविकल्पहीनः समस्तदोषैरपि वर्जितो यः ॥ समस्तसंसारभयापहारिणे तस्मै नमो दैत्यविनाशनाय ॥ ४ ॥ वेदान्तवेद्याय रमेश्वराय वैकुण्ठवासाय विधातृपित्रे ॥ नमोनमः सर्वजनार्तिहारिणे नारायणायामितविक्रमाय ॥ ५ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवायशार्ङ्गिणे ॥ भूयोभूयो नमस्तुभ्यं शेषपर्यङ्कशायिने ॥ ६ ॥

इस प्रकार स्तुति करके गालव मुनि भगवान् का ध्यान करने लगे। भगवान् भी स्तुति सुनकर परम प्रसन्न हो प्रीति से मुनि को आलिङ्गन कर कहने लगे, हे गालव ! तेरे तप से और स्तोत्र से हम बहुत प्रसन्न हुए। अब जो तेरी इच्छा हो वह वर मांग। भगवान् का यह वचन सुनकर गालव मुनि प्रार्थना करने लगे, हे नारायण ! हे जगन्नाथ ! हे गोविन्द ! मैं आपके दर्शन से कृतार्थ होकर समस्त संसार में श्रेष्ठ हुआ। अधर्मी पुरुष आपको नहीं देख सके। ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि देवता भी आपका तत्त्व नहीं जानते। योगी और कर्मनिष्ठ आपका दर्शन नहीं पासकते। तीनों वेद भी आपका भली भांति प्रतिपादन नहीं कर सकते। मैंने साक्षात् आपका दर्शन पाया। इससे अधिक और क्या वर होगा। मैं अपने आपको आपके दर्शन से ही कृतार्थ मानता हूं। जिनके नामस्मरणसे महापातकी भी मुक्तिपाते हैं उनका मैं साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ। अब केवल यही वर चाहता हूं कि आपके चरणारविन्द में

दृढ़ भक्ति हो। गालव का यह वचन सुनकर भगवान् ने कहा, हे गालव ! मुझमें तेरी निष्काम दृढ़ भक्ति होगी। समस्त कर्म का फल मुझे अर्पण करता हुआ मेरे ध्यान में आसक्त होकर इस देह के अन्त में मुझमें लीन होगा। अब तू इसी आश्रम में निवास कर। यह धर्मपुष्करिणी सब पाप हरनेवाली है। इसके तीर पर तप करने से अवश्य ही सिद्धि होगी। पूर्व काल में दक्षिणसमुद्र के तट पर महादेवजी की प्रसन्नता के लिये बहुत कालतक धर्म ने तप किया है और यह तीर्थ स्नान के लिये रचा गया है, इसीसे इसका नाम धर्मपुष्करिणी हुआ है। जिसप्रकार मेरी प्रसन्नता के लिये तूने तप किया है, इसी प्रकार शिवजी के प्रसाद के अर्थ धर्म ने बहुतही तप किया था। अनन्तर शिवजी ने प्रसन्न हो धर्म को दर्शन दिया था। धर्म ने भी शिवजी के दर्शन पाकर परम सन्तुष्ट हो भक्तिपूर्वक शिवजी की स्तुति की थी।

धर्म उवाच ॥ प्रणमामि जगन्नाथमीशानं प्रणवात्मकम् ॥

समस्तदेवतारूपमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥ १ ॥ ऊर्ध्वबीजं विरूपाक्षं विश्वरूपं नमाम्यहम् ॥ समस्तजगदाधारमनन्तमजमव्ययम् ॥ २ ॥ यमामनन्ति योगीन्द्रास्तं वन्दे पुष्टिवर्द्धनम् ॥ नमो लोकाधिनाथाय वञ्चते परिवञ्चते ॥ ३ ॥ नमोऽस्तु नीलकण्ठाय पशूनां पतये नमः ॥ नमः कल्मषनाशाय नमो मीढुष्टमाय च ॥ ४ ॥ नमो रुद्राय देवाय कद्रुद्राय प्रचेतसे ॥ नमः पिनाकहस्ताय शूलहस्ताय ते नमः ॥ ५ ॥ नमश्चैतन्यरूपाय पुष्टीनां पतये नमः ॥ नमः पञ्चास्यदेवाय क्षेत्राणां पतये नमः ॥ ६ ॥

इस प्रकार धर्म के मुख से स्तुति सुनकर महादेवजी प्रसन्न हो कहने लगे, हे धर्म! हम तेरे इस तप और स्तोत्र से बहुत प्रसन्न हुए अब जो वर तू चाहे, वह मांग। तब धर्म ने प्रार्थना की, हे नाथ! मैं सदा आपका वाहन होकर रहूं यही वर चाहता हूं और इसी वर से मैं कृतार्थ होजाऊंगा। धर्म की यह प्रार्थना सुनकर श्रीमहादेवजी ने कहा, हे धर्म! तू हमारा वाहन हो, और हमारे धारण करने की तुझमें शक्ति हो। तेरी सेवा करनेवाले पुरुषों की हमारे में दृढ़ भक्ति होगी। महादेवजी की आज्ञा पातेही

धर्म ने वृषरूप धारण कर महादेवजी को अपने ऊपर चढ़ा लिया। महादेवजी भी उस पर चढ़कर प्रसन्न हो कहने लगे, हे धर्म! दक्षिण समुद्र के तीर पर जो तीर्थ तूने बनाया है वह धर्मपुष्करिणी नामसे लोक में प्रसिद्ध होगा। इसके तट पर किये हुए जप, होम, दान, वेदपाठ आदि धर्मकृत्य अनन्तफल को देनेवाले होंगे। इतना वर इस तीर्थ को देकर उसी वृषरूप धर्म के ऊपर चढ़े हुए महादेवजी कैलास को चले गये। इतनी कथा सुनाकर विष्णुभगवान् ने कहा, हे गालव! तू भी इसी धर्मपुष्करिणी के तट पर जबतक शरीर रहे, तबतक निवास कर। पीछे मेरे लोक में प्राप्त होगा। यदि यहां कुछ तुझे भय होगा तो हमारी आज्ञा से सुदर्शनचक्र तेरे भय को निवृत्त करेगा। इतना कह विष्णुभगवान् अन्तर्धान हुए।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिगण! विष्णुभगवान् के अन्तर्धान होने के अनन्तर गालवमुनि भी धर्मपुष्करिणी के तट पर तीनों काल शालग्राम शिला में विष्णुभगवान् का पूजन करता और

स्थिरक्करूप से विष्णुभगवान् का ध्यान करता था। एक दिन उसने माघशुक्ल एकादशी का उपवास कर जागरण किया और विष्णुभगवान् का पूजन किया। गालवमुनि ने द्वादशी को प्रातःकाल स्नान करके धर्मपुष्करिणी के तीर पर सन्ध्या-वन्दन आदि कर्म करता हुआ भांति २ के पुष्प और तुलसीदल लाकर भक्ति से विष्णुभगवान् का पूजन किया और पुनः वह स्तुति करने लगा——

गालव उवाच ॥ सहस्रशिरसं विष्णुं मत्स्यरूपधरं हरिम् ॥ नमस्यामि हृषीकेशं कूर्मवाराहरूपिणम् ॥ १ ॥ नारसिंहं वामनाख्यं जामदग्न्यं च राघवम् । बलभद्रं च कृष्णं च कल्किं विष्णुं नमाम्यहम् ॥ २ ॥ वासुदेवमनाधारं प्रणतार्तिविनाशनम् ॥ आधारं सर्वभूतानां प्रणमामि जनार्दनम् ॥ ३ ॥ सर्वज्ञं सर्वकर्तारं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥ ४ ॥

इस प्रकार भगवान् की स्तुति करके गालव मुनि धर्मपुष्करिणी के तीर पर विष्णुभगवान् का ध्यान करने लगा। इसी अवसर में एक राक्षस

भूख से व्याकुल वहां आ निकला। वह गालव मुनि को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और दौड़-कर मुनि को जा पकड़ा। गालवमुनि भी अपनी यह दशा देख पुकारने लगे, हे नारायण! हे करुणासिन्धो! हे शरणागतपालक! हे दामोदर! हे लक्ष्मीकान्त! हे गरुड़ध्वज! जिस प्रकार आपने प्रह्लाद की रक्षा की, और ग्राह से गज को छुटाया उसी भांति इस दुष्ट राक्षस से मेरे प्राण बचाइये। इस प्रकार गालवमुनि को भय-भीत जानकर विष्णुभगवान् ने उसकी रक्षा के लिये सुदर्शनचक्र को आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही अनेक सूर्यों के समान प्रकाश से युक्त, सुदर्शन-चक्र घोर शब्द करता हुआ धर्मपुष्करिणी के तट पर आया। उसको देखते ही वह राक्षस भगा परन्तु सुदर्शन ने उसका शिर काट दिया। गालव-मुनि राक्षस को भूमि पर गिरा हुआ देखकर अति प्रसन्न हो सुदर्शनचक्र की स्तुति करने लगा।

गालव उवाच । विष्णुचक्र नमस्तेऽस्तु विश्वरक्षणदीक्षित ॥ नारायणकराम्भोजभूषणाय नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥

युद्धेष्वसुरसंहारकुशलाय महारव ॥ सुदर्शन नमस्तुभ्यं भक्तानामार्तिनाशिने ॥ २ ॥ रक्ष मां भयसंविग्नं सर्वस्मादपि कल्मषात् ॥ ३ ॥

इतनी स्तुति कर गालवमुनि ने कहा, हे विष्णुचक्र ! हे प्रभो ! आप जगत् के कल्याण के अर्थ इस धर्मतीर्थ में विराजमान हों । गालवमुनि का यह वचन सुन बड़ी प्रीति से सुदर्शनचक्र बोला, हे गालव ! यह धर्मतीर्थ बहुत पुण्यप्रद है, इसलिये लोकों के हित के अर्थ मैं इसमें निवास करूंगा । तेरी पीड़ा देखकर विष्णुभगवान् ने मुझको भेजा है । मैंने भी शीघ्र आकर तेरी रक्षा की और इस दुष्ट राक्षस को मारा । तू विष्णुभगवान् का परमभक्त है । अब इस धर्मपुष्करिणी में लोकरक्षा के अर्थ मैं सन्निधान करता हूं । मेरे सान्निध्य से तुझको तथा और जीवों को भी यहां भूत राक्षस आदि की बाधा न होगी । यह धर्मपुष्करिणी पूर्वकाल में धर्म ने देवीपत्तन पर्यन्त बनाई है । इस समस्त स्थान में मैं निवास करूंगा । मेरे सान्निध्य से

इसका नाम चक्रतीर्थ होगा । जो पुरुष भक्ति से इस चक्रतीर्थ में स्नान करेंगे, उनके वंश के सब मनुष्य निष्पाप हो विष्णुलोक को जायँगे । जो पुरुष यहां पितरों के उद्देश से पिण्डदान करेंगे, वे अपने पितरों सहित स्वर्ग में प्राप्त होंगे । इतना कह गालवमुनि के तथा और सब मुनियों के देखते २ सुदर्शनचक्र ने धर्मपुष्करिणी में प्रवेश किया । इतना कह कर सूतजी बोले, हे मुनिगण ! धर्मतीर्थ का जिन कारणों से चक्रतीर्थ नाम हुआ, वह मैंने आपको सुना दिया । चक्रतीर्थ के तुल्य दूसरा तीर्थ न हुआ और न होगा । इस तीर्थ में स्नान करनेवाले अवश्य मुक्ति पाएंगे । जो पुरुष इस अध्याय को भक्ति से पढ़ेंगे अथवा श्रवण करेंगे वे चक्रतीर्थस्नान का फल पावेंगे, और इस लोक में सुख भोगकर सद्गति पाएंगे । धर्मतीर्थ को पुण्यस्थली बनानेवाले गालवमुनि को और राक्षसों का नाश करनेवाले सुदर्शनचक्र का जो पुरुष स्मरण करेंगे वे सब पापों से छूट जायँगे ।

तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय।

एक राक्षस की कथा, चक्रतीर्थ का माहात्म्य
और चक्रतीर्थ-सीमा का वर्णन।

शौनक आदि ऋषि पूछते हैं, हे सूतजी! वह राक्षस कौन था, जिसने परम विष्णुभक्त गालवमुनि को पीड़ा दी थी, आप कृपाकर इस विषय का वर्णन कीजिये। मुनियों का यह प्रश्न सुनकर सूतजी कहने लगे, हे मुनिगण! अब हम उस विषय का वर्णन करते हैं जिस प्रकार मुनियों के शाप से वह राक्षस हुआ। पूर्वकाल में कैलास के शिखर पर हालास्य नाम शिवमन्दिर में वशिष्ट अत्रि आदि ब्रह्मवादी परमशिवभक्त चौबीस हज़ार मुनि सब अङ्गों में भस्म लगाए, रुद्राक्ष-माला पहने, त्रिपुण्ड्र दिये, पञ्चाक्षर का जप करते हुए मुक्ति के लिये हालास्य नामक शिवजी की उपासना करते थे। वहीं मथुरापुरवासी भी उपासना कर रहे थे। इसी अवसर में विश्वावसु नाम गन्धर्व का पुत्र कामभावनाओं से प्रेरित होकर अपनी सौ स्त्रियों-सहित नग्न होकर हालास्य के

समीप तीर्थजल में विहार करने लगा। उसी समय वशिष्ठ मुनि भी सब मुनियों सहित मध्याह्न-कृत्य करने के लिए शिवमन्दिर से उठकर उसी तीर्थ पर आये। उन मुनिवरों को देखकर भय और लज्जा से सब स्त्रियों ने वस्त्र धारण कर लिये परन्तु निर्लज्ज उस दुर्दम नाम गन्धर्व ने वस्त्र नहीं पहने। तब वशिष्ठजी क्रोध कर बोले, हे निर्लज्ज! तूने हमको देखकर भी वस्त्र नहीं पहना इसलिये तू राक्षस हो। इतना कह वशिष्ठजी ने उन स्त्रियों से कहा, हे नारियो! तुमने हमको देख लज्जा से वस्त्र पहन लिए इसलिये तुमको शाप नहीं देते हैं, अब तुम स्वर्ग को जाओ। वशिष्ठजी का यह वचन सुन सब स्त्रियां हाथ जोड़कर विनम्रभाव से प्रार्थना करने लगीं, हे ब्रह्मपुत्र! हे सर्वधर्मज्ञ! हे वशिष्ठजी! आप कृपा-पूर्वक इस कोप को शान्त करें। स्त्रियों का पति ही भूषण है। चाहे सौ पुत्र भी हों परन्तु पति-हीन नारी विधवा ही कहाती है। विधवा होना स्त्री को मरण के तुल्य है, इसलिये आप हमारे

पति का यह अपराध क्षमा करें और इस पर कृपा करें। तत्त्वदर्शी मुनि अपराध क्षमा किया करते हैं, इसलिये आपभी इस अपने दास को क्षमा करें। स्त्रियों का यह वचन सुनकर प्रसन्न हो वशिष्ठजी बोले, हे स्त्रियो! हमारा वचन मिथ्या तो नहीं होसकता परन्तु जो हम कहें उस को श्रद्धा से सुनो। यह शाप सोलह वर्ष पर्यन्त रहेगा। सोलह वर्ष के अनन्तर राक्षसयोनि को प्राप्त हुआ यह तुम्हारा पति चक्रतीर्थ पर अपनी इच्छा से जायगा। वहां विष्णुभक्त गालव मुनि को भक्षण करने के लिये ग्रहण करेगा, तब विष्णुभगवान् की आज्ञा से सुदर्शनचक्र इसका शिर काटेगा, तब यह अपना पहला दिव्यरूप धारण कर स्वर्ग में आनन्द से तुम्हारे साथ विहार करेगा। इसमें कुछ संशय नहीं है।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिगण! इतना कह वशिष्ठजी तो मुनियों-सहित हालास्य के स्थान को गये, और वे स्त्रियां अपने पति दुर्दम को आलिङ्गन कर दुःख से रोदन करने लगीं। दुर्दम

भी उनके देखते २ ही महाभयंकर राक्षस हो गया। बड़ी २ दाढ़ें, लाल रंग के केश, दाढ़ी और नेत्र अतिकृष्ण, उसका ऐसा रूप देखकर वे नारी भयभीत हो स्वर्ग को गईं और वह राक्षसरूप दुर्दम भी जीवों को भक्षण करता हुआ देश २ और वन २ में विचरने लगा। इस प्रकार सोलह वर्ष बीतने पर वह चक्रतीर्थ में पहुँचा और गालवमुनि को भक्षण करने दौड़ा। गालवमुनि ने विष्णुभगवान् की स्तुति की तब भगवान् की आज्ञा से सुदर्शन-चक्र ने राक्षस का शिर काटकर गालवमुनि के प्राण बचाये। वह दुर्दम भी शिर कटते ही राक्षस देह को छोड़कर दिव्यदेह होगया और उत्तम विमान में बैठ हाथ जोड़ प्रणाम कर भक्ति से सुदर्शनचक्र की स्तुति करने लगा—

दुर्दम उवाच ॥ सुदर्शन नमस्तेऽस्तु विष्णुहस्तैकभूषण ॥ नमस्तेऽसुरसंहर्त्रे सहस्रादित्यवर्चसे ॥ १ ॥ कृपालेशेन भवतस्त्यक्त्वाहं राक्षसीतनुम् ॥ स्वरूपमभजं विष्णोश्च-क्रायुध नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥ त्वन्मनस्को भविष्यामि यावज्जीवं

यथा ह्यहम् ॥ तथा कृपां कुरुष्व त्वं मयि चक्र ! नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥

इतनी स्तुति कर दुर्दम ने प्रार्थना की, हे चक्रराज ! अब आप मुझे स्वर्ग जाने की आज्ञा दीजिये। विरह से पीड़ित मेरी भार्या मेरा स्मरण कर रही होगी। दुर्दम की यह विनती सुनकर सुदर्शनचक्र ने उसको प्रसन्न हो स्वर्ग में जाने की आज्ञा दी। दुर्दम आज्ञा पाते ही गालवमुनि को प्रणाम कर और उनकी भी आज्ञा ले स्वर्ग को गया। दुर्दम के स्वर्ग जाने के अनन्तर गालवमुनि ने फिर सुदर्शनचक्र से प्रार्थना की, हे चक्रराज ! आपको हम बारम्बार प्रणाम कर प्रार्थना करते हैं कि देवीपत्तन पर्यन्त इस धर्मतीर्थ में आप निवास करें और यहां स्नान करनेवाले पुरुषों के सब पाप दूर कर मोक्ष दें। यह तीर्थ लोक में चक्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो और यहां के निवासी मुनियों को भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस आदिकों का कभी भय न हो। गालव की यह प्रार्थना अङ्गीकार कर

सुदर्शनचक्र उसी तीर्थ में अन्तर्धान होगया। सूतजी कहते हैं, हे मुनिगण ! चक्रतीर्थ का माहात्म्य और राक्षस की उत्पत्ति हमने वर्णन की, इसके श्रवण करने से मनुष्यों के सब पाप दूर हो जाते हैं। शौनक आदि ऋषि पूछते हैं, हे सूतजी ! दर्भशयन से देवीपत्तन पर्यन्त आपने चक्रतीर्थ का वर्णन किया। वह बीच२ में क्योंकर विच्छिन्न होगया। आप हमारा यह सन्देह निवृत्त करें। मुनिवरों का यह प्रश्न सुन सूतजी कहने लगे, हे ऋषीश्वरो ! पूर्व काल में सब पर्वत उड़ते थे और उड़ते २ जिस नगर ग्राम आदि के ऊपर गिरते वहीं चूर्ण हो जाता था। हज़ारों मनुष्य, पशु-पक्षी आदि मरते, ब्राह्मण आदि वर्ण इस उपद्रव से नष्ट होगये और पृथ्वी पर यज्ञ होने बन्द होगये। इससे देवताओं को भी बड़ा क्लेश हुआ। तब इन्द्र ने क्रोध कर अपने वज्र से पर्वतों के पक्ष काटना आरम्भ किया। उस समय भयभीत हुए पर्वत समुद्र में गिरे और समुद्र की भ्रान्ति से कोई २

चक्रतीर्थ में भी प्रविष्ट होगये, इसी से चक्रतीर्थ बीच २ में विच्छिन्न होगया। किनारों पर पर्वत न गिरे इसलिये दर्भशयन और देवीपत्तन के समीप तो चक्रतीर्थ ठीक रहा और बीच में पर्वतों के गिरने से विभक्त अर्थात् बँट गया। सूतजी कहते हैं, हे मुनिगण! जिस प्रकार चक्रतीर्थ बीच में स्थूल होगया और इन्द्र के पक्ष काटने पर जिस प्रकार पर्वत समुद्र में प्रविष्ट हुए यह सब हमने वर्णन किया अब आप क्या सुनना चाहते हैं।

चतुर्थ अध्याय समाप्त॥ ४॥

पांचवां अध्याय।

चक्रतीर्थ की प्रशंसा और राजा सहस्रानीक की अद्भुत कथा।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! हम फिर भी चक्रतीर्थ का प्रभाव वर्णन करते हैं। विधूमनामक वसु और अलम्बुषा नाम अप्सरा ब्रह्माजी के शाप से मनुष्य होगये और चक्रतीर्थ में स्नान कर शाप से मुक्त हुए। इतना

सुन मुनियों ने पूछा हे सूतजी! उन दोनों को ब्रह्माजी ने किस अपराध पर शाप दिया, और शाप होने के अनन्तर कहां जन्म लिया, किसके पुत्र हुए, और उनका शापान्त क्योंकर हुआ, यह आप विस्तार से वर्णन करें। आप व्यासजी के शिष्य हैं और महाबुद्धिमान् हैं इसलिये कोई वृत्तान्त आपसे छिपा नहीं है। मुनियों का यह वचन सुनकर सूतजी कहने लगे, हे मुनिगण! पूर्वकाल में ब्रह्माजी अपनी सभा में विराजमान थे। सावित्री और सरस्वती उनके दोनों ओर बैठी थीं। सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नारद, आदि मुनीश्वर, सब देवताओं समेत इन्द्र, सूर्य आदि ग्रह, सिद्ध, साध्य, मरुत्, किन्नर, वसु आदि सब सेवा में स्थित थे। उर्वशी आदि अप्सराएँ नृत्य करती थीं। इस प्रकार सत्यलोक के बीच ब्रह्माजी की सभा जम रही थी। सब नृत्य देखते थे। मृदङ्ग, वीणा, वंशी आदि के मधुर शब्द, सुननेवालों को आनन्द देते थे। गङ्गाजल के कणों को लिये हुए शीतल मन्द

सुगन्ध पवन बह रहा था। एक अप्सरा जब नृत्यसे श्रान्त होजाती तब दूसरी नाचने लगती। इसी प्रकार अतिरूपवती अलम्बुषा नामवाली अप्सरा सबसभा को मोहित करती हुई नाचने लगी। उसी अवसर में वायु से उसका अधोवस्त्र दूर होगया और गुप्त अङ्ग दीखने लगा, तब ब्रह्मादि देवताओं ने लज्जा से आंखें मूंदलीं, परन्तु विधूम नाम वसु काम के वश हो उसके गुप्त अङ्ग को देखता रहा, और प्रसन्नता से उसके नेत्र प्रफुल्लित होगये। शरीर में रोमांच भी होने लगा। उसकी यह दुर्विनीतता देखकर ब्रह्माजी ने शाप दिया, हे विधूम! तूने हमारी सभा में इस अप्सरा पर कुदृष्टि की इसलिये तू मनुष्य लोक में जन्म लेकर मनुष्य हो और यह देवाङ्गना तेरी भार्या होगी। ब्रह्माजी के मुखसे शाप सुनकर विधूम बहुत व्याकुल हुआ और ब्रह्माजी के चरणों पर गिर कर प्रार्थना करने लगा, हे महाराज! मैं आपके इस दारुण शापके योग्य नहीं हूं। आप कृपाकर मेरा अपराध क्षमा करें और

इस घोर शाप से मुझे बचावें। इस प्रकार विधूम के अति दीन वचन सुन ब्रह्माजी दयालु हो कहने लगे हे विधूम! हमारा वचन मिथ्या तो नहीं हो सकता, परन्तु पृथ्वी पर जन्म लेकर तू चक्रवर्ती राजा होगा और यह तेरी रानी होगी।

बहुत काल तक निष्कण्टक राज्य करता हुआ, इसमें पुत्र उत्पन्न कर, उसको राज्य दे दक्षिणसमुद्र के तीरपर फुल्लग्राम के समीप चक्रतीर्थ के बीच अपनी भार्यासहित जब तू स्नान करेगा, तब मनुष्यदेह को त्यागकर तुम दोनों अपने लोक में प्राप्त होगे, चक्रतीर्थ में स्नान किये विना यह दारुण शाप निवृत्त न होगा। ब्रह्माजी का यह वचन सुनकर विधूम उदास हो अपने स्थान में आया और सोचने लगा कि मर्त्यलोक में किसके घर जन्म लूं और कौन मेरे माता-पिता हों। यह विचार करते२ निश्चय किया कि कौशाम्बी नगरी में बड़ा वीर और धर्मनिष्ठ राजा शतानीक है। उसकी रानी विष्णुमती बड़ी पतिव्रता है इसलिये उनसे ही जन्म लेना चाहिये।

यह मन में ठानकर पुष्पदन्त, माल्यवान्, बलोत्कट नामवाले अपने तीन सेवकों को बुलाकर कहा, हे मेरे प्यारे सेवको! तुम्हें विदित हो कि ब्रह्माजी के शाप से शतानीक की रानी विष्णुमती में मैं जन्म लेता हूं। अपने स्वामी का यह वचन सुनकर अति व्याकुल हो अश्रुपात करते हुए सेवक बोले, हे स्वामिन्! हम तीनों आपका वियोग नहीं सह सकते, इसलिये हमको भी आप मनुष्यलोक में अपने संग ले चलें। हम तीनों शतानीक राजा के मन्त्री युगन्धर के, सेनापति विप्रतीप के, और शतानीक के नर्मसुहृत् वसन्तक नाम ब्राह्मण के पुत्र होकर आपकी सेवा में रहेंगे। भृत्यों का यह वचन सुनकर विधूम कहने लगा, हे मेरे प्रिय सेवको! मैं तुम्हारा स्नेह भली भांति जानता हूं, परन्तु मनुष्यलोक अतिनिन्द्य है, मुझे तो ब्रह्माजी के दारुण शाप से जन्म लेना पड़ा। तुम इस कष्ट में मत पड़ो और थोड़े दिन मेरा वियोग सहो। मनुष्यलोक में जन्म लेने की कभी इच्छा मत करो।

विधूम का यह वचन सुनकर वे फिर बोले, हे प्रभो! मनुष्यलोक में जन्म लेना क्या आपके वियोग से भी अधिक दुःखप्रद है। हम आपका वियोग क्षणमात्र भी नहीं सह सकते, इसलिए आपको हमारा त्याग न करना चाहिये। आपके साथ मनुष्यलोक में भी रहने से कुछ दुःख नहीं और आपके विना यह स्वर्ग भी दुःखों की खानि देख पड़ता है। इस प्रकार सेवकों का दृढ़ निश्चय देखकर विधूम ने उनका वचन अङ्गीकार किया और तीनों को संग ले कौशाम्बी नगरी को चला।

इस अवसर में चन्द्रवंशभूषण अर्जुन का प्रपौत्र, जनमेजय का पुत्र, बड़ा प्रतापी, बुद्धिमान्, प्रजापालन में तत्पर शतानीक कौशाम्बी का राजा था। उसका मुख्य मन्त्री युगन्धर, सेनापति विप्रतीक और परमसुहृत् वल्लभनाम का ब्राह्मण था। सब रानियों में मुख्य विष्णुमती नाम की रानी राजा की प्रियतमा थी। जिस प्रकार विष्णुभगवान् लक्ष्मी से

अलंकृत हैं, उसी प्रकार राजा शतानीक अपनी रानी विष्णुमती से अलंकृत था। राजा के कोई पुत्र न था, इसलिये वह दुःखी रहता था। एक दिन राजा ने अपने मन्त्री युगन्धर को बुला-कर कहा कि मेरे पुत्र कैसे उत्पन्न हो, इसका विचार करना चाहिये। मन्त्री युगन्धर ने विचार कर प्रार्थना की, हे महाराज! शाण्डिल्य नाम मुनि बड़े महात्मा सत्यवादी तपस्वी और दयालु हैं। आप उनकी शरण में जाकर पुत्र की याचना करें। वे अवश्य ही आपको पुत्र देंगे। मन्त्री का यह वचन सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और मन्त्री को संग ले शाण्डिल्यमुनि के आश्रम में गया। वहां पहुँचकर अति तेजस्वी शाण्डिल्यमुनि के चरणों में प्रणाम किया। शाण्डिल्यमुनि ने भी राजा का बड़ा सत्कार किया और पाद्य अर्घ्य आदि देकर कहा, हे राजन्! आप कहें, किस प्रयोजन के लिये हमारे आश्रम में आए हैं। हम शीघ्रही आपका मनोरथ सिद्ध करेंगे ऋषि का यह वचन सुनकर

युगन्धर कहने लगा, हे मुनीश्वर! ये महाराज पुत्र न होने से दुःखी हैं और अब आपके शरण में आये हैं इसलिये आप इनका यह दुःख दूर करें।

मन्त्री का यह वचन सुनकर शाण्डिल्यमुनि ने प्रतिज्ञा की कि हम अवश्य आपको पुत्र देंगे। राजा के साथ कौशाम्बी में आकर शाण्डिल्य-मुनि ने राजा से पुत्रेष्टि यज्ञ कराई। उस यज्ञ के द्वारा जिस प्रकार महाराज दशरथ के घर श्रीराम-चन्द्रजी का जन्म हुआ था, उसी प्रकार राजा शतानीक के पुत्र का जन्म हुआ। उस पुत्र का नाम राजा ने सहस्रानीक रक्खा। इस भांति विधूमवसु राजा शतानीक का पुत्र हुआ, माल्य-वान् युगन्धर का पुत्र हुआ, जिसका नाम उस-के पिता ने यौगन्धरायण रक्खा। पुष्पदन्त विप्रतीक का पुत्र रुमण्वान् नाम हुआ और बलोत्कट वसन्तक का पुत्र बल्लभ नाम हुआ जो राजा सहस्रानीक का परम मित्र हुआ। राजकुमार के सहित ये तीनों दिन २ वृद्धि को

प्राप्त होने लगे। जब ये पांच २ वर्ष के हुये, तब अलम्बुषा नाम अप्सरा भी अयोध्या के राजा कृतवर्मा की पुत्री होकर उत्पन्न हुई। पिता ने उसका नाम मृगावती रक्खा। इस प्रकार विधूम आदि सब मर्त्यलोक में उत्पन्न हुए। इसी अवसर में बड़े पराक्रमी अहिदंष्ट्रनाम दैत्य ने अपने मित्र स्थूलशिरा को साथ ले बड़ी सेना से स्वर्ग को जा घेरा और देवताओं को पीड़ा देने लगा। देवता और दैत्यों के बीच जब युद्ध का आरम्भ हुआ तो इन्द्र ने अपनी सहायता के लिये राजा शतानीक को बुलाया। राजा शतानीक भी पुत्र को राज्य देकर इन्द्र के रथ में बैठ स्वर्ग में आया और इन्द्र की आज्ञा से दैत्यों को मारने लगा। राजा ने बड़ी वीरता से अहिदंष्ट्र को मारा परन्तु आप भी उसी युद्ध में काम आया, तब इन्द्र ने राजा का शरीर रथ में रखवाकर उसकी राजधानी को भेज दिया। इन्द्र का सारथि मातलि भी राजा के शरीर को रथ में रखकर मर्त्यलोक में आया

और राजा सहस्रानीक से सब वृत्तान्त कहा।

सहस्रानीक ने भी पिता की मृत्यु सुनकर बड़ा विलाप किया और सब प्रेतकृत्य किया। शतानीक की रानी विष्णुमती अपने पति के साथ सती हो गईं। युगन्धर विप्रतीक और वल्लभ भी थोड़े दिन के अनन्तर परलोक को सिधारे। राजा सहस्रानीक यौगन्धरायण आदि मन्त्रियों के सहित धर्मराज्य करने लगा। कुछ काल के अनन्तर स्वर्ग में कुछ उत्सव था वहां इन्द्र ने राजा सहस्रानीक को भी निमन्त्रण दे बुलवाया। उत्सव के अन्त में इन्द्र ने कहा, हे राजन्! तुम विधूम नाम वसु हो ब्रह्माजी की सभा में अलम्बुषा नाम अप्सरा को वायु के द्वारा नग्न हुई देखकर तुम कामातुर हुये थे, इसलिये ब्रह्माजी ने तुमको शाप दिया था कि तुम मर्त्यलोक में उत्पन्न हो उसी शाप से तुम मनुष्य हुए और वह अप्सरा अयोध्या के राजा कृतवर्मा की कन्या हुई। वही तुम्हारी रानी होगी। बहुत काल तक राज्य करके पुत्र को राज्य पर बिठा

कर अपनी रानी मृगावती समेत जब दक्षिण समुद्र के तट पर फुल्लग्राम के समीप चक्रतीर्थ पर पहुँचकर स्नान करोगे तब शाप से मुक्त होगे। सत्यलोक में ब्रह्माजी ने यह कहा है।

इन्द्र का यह वचन सुनकर वहां से विदा हो इसी बात को विचारता हुआ राजा सहस्रानीक अपनी राजधानी को चला। मार्ग में तिलोत्तमा नाम अप्सरा प्रीतिपूर्वक राजा से बोली, परन्तु राजा का चित्त और बात में लग रहा था इस-लिये तिलोत्तमा को कुछ उत्तर न दिया। अनादर से लज्जित हो तिलोत्तमा ने शाप दिया, हे राजन्! मैं तुझसे प्रीति करके बोलती हूँ और तू उत्तर नहीं देता। सौभाग्यवती और रूपवती स्त्री इतना अनादर नहीं सहती हैं। तू मृगावती का ध्यान करता हुआ मुझसे सम्भाषण नहीं करता इस-लिये चौदह वर्ष तक मृगावती से तेरा वियोग होगा। तिलोत्तमा का यह शाप सुनकर राजा ने कहा कि जो मृगावती प्राप्त होगी तो वियोग भी सह लेंगे, इतना कह अपनी राजधानी में आया

और मृगावती से विवाह किया। विलासरूप वृक्ष की मञ्जरी और विभ्रमरूप समुद्र की लहरी उस मृगावती को पाकर राजा बड़े आनन्द को प्राप्त हुआ।

कुछ काल के अनन्तर रानी मृगावती के गर्भ रहा और अङ्ग पीतवर्ण हो गये। स्तनों के अग्र भाग कृष्ण होने लगे। मृगावती दोहद (गर्भवती) की दशा में जो २ मनोरथ राजा से कहती सब सिद्ध होता। एक दिन रानी ने कहा, हे महाराज! आज मेरी इच्छा रुधिर की भरी वापी में स्नान करने की है। रानी का यह वचन सुन राजा ने कुसुम के रङ्ग से बावली भरवाई और रानी उस में स्नान करने लगी। रानी के सब अङ्ग लाल हो गये। इसी अवसर में पर्वत के तुल्य गरुड़ के वंश का एक पक्षी आकाश में उड़ा जाता था। उसने रानी को देखा और मांसपिण्ड की भ्रान्ति से चोंच में उठाकर ले उड़ा। जब देखा कि यह जीती है तब उदयाचलपर्वत की कन्दरा में रानी को छोड़ आप चला गया। थोड़े काल में रानी

की जब मूर्च्छा दूर हुई, तो अपने को उस घोर वन में अकेली देख भय से कांपती हुई और कमलतुल्य नेत्रों से आंसू टपकाती हुई विलाप करने लगी, हे नाथ! हे प्रिय! तेरे वियोग से पीड़ित मैं कहां जाऊं, क्या करूं और क्योंकर तुम्हारे दर्शन हों। इस भांति अनेक प्रकार के विलाप करती हुई मरने के लिये कभी तो सिंह के सम्मुख जाती, कभी मस्त हाथी के आगे गिरती। परन्तु किसी ने भी उसको न मारा। तब रानी फिर विलाप करने लगी। हा, आपत्काल में मनुष्यों को मरण भी दुर्लभ है।

उसका अतिकरुण विलाप सुन मृगों ने चरना छोड़ दिया और पक्षियों ने उड़ना बन्द कर दिया। इसी अवसर में जमदग्नि ऋषि का शिष्य उस वन में आया। उसने रानी को देखा और बहुत सा आश्वासन दे उसको अपने साथ आश्रम में ले गया। वहां जाकर अपने गुरु जमदग्नि मुनि से रानी का सब वृत्तान्त कहा। जमदग्नि मुनि ने भी रानी को बहुत कुछ आश्वासन दिया

और कहा, हे पुत्रि! अपने पिता कृतवर्मा के तुल्य मुझे समझकर प्रसन्नता से यहां रह। परमेश्वर तेरा सब दुःख दूर करेंगे। मुनि का यह वचन सुन रानी मृगावती उसी आश्रम में रहने लगी। कुछ काल के अनन्तर रानी के बड़ा तेजस्वी पुत्र जन्मा और मुनियों की पत्नियों ने बड़ी प्रीति से सूतिका के सब नेग "जैसे घर में होने चाहिये" किये, उसी समय आकाशवाणी हुई कि उदयाचल में जन्म लेने से इस बालक का नाम उदयन होगा। जमदग्नि मुनि ने उस बालक के सब संस्कार किये और सब विद्या पढ़ाई। वह बालक तरुण अवस्था को प्राप्त हुआ।

एक दिन उदयन मृगया खेलने वन में गया था। वहां देखा कि एक व्याध सर्प को पकड़े ला रहा है। उसको देखकर राजकुमार को दया आई और व्याध से कहा, रे व्याध! तू इस सर्प को क्यों क्लेश देता है, छोड़ दे। तू इसको क्या करेगा? उदयन का यह वचन सुन व्याध बोला, हे महाराज! मेरी जीविका इसी से है। नगर

और ग्रामों में इसको दिखलाने से मुझे धन और अन्न मिलेगा। इसलिये मैं इसको छोड़ नहीं सकता। इतना कह व्याध ने उस सर्प को पिटारी में रख लिया। तब उदयन ने अपने हाथ से सुवर्ण का कङ्कण उतारा "जो उसकी माता ने बाल्यावस्था में उसे पहिनाया था और जिसमें सहस्रानीक का नाम भी खुदा था" उसे व्याध को दे सर्प को बन्धन से छुटाया। सर्प भी छूटते ही मनुष्यरूप धारण कर हाथ जोड़ उदयन को प्रणाम करता हुआ बड़ी प्रीति से अपने साथ नागलोक में ले गया। उदयन भी धृतराष्ट्रनाग के पुत्र, उस किन्नरनाम नाग के साथ पाताल में जा पहुँचा। वहां धृतराष्ट्रनाग ने अतिसुन्दरी ललिता नाम अपनी कन्या उदयन को विवाह दी। उदयन भी अपनी प्रिया के साथ नागलोक में सुख भोगने लगा।

कुछ काल में ललिता के गर्भ रहा और पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र होते ही ललिता ने उदयन से कहा, हे प्रिय! मैं पूर्व जन्म में सुवर्णी नाम विद्याधरी थी। शाप से नागकन्या हुई। अब वह मेरा शाप निवृत्त हुआ इसलिये आप इस अपने पुत्र को लीजिये और मुझे अपने लोक को जाने की आज्ञा दीजिये। इतना कह वह पुत्र और पुष्पमाला "जो कभी न कुम्हिलाय" के साथ घोषवतीनाम एक अतिउत्तम वीणा उदयन को देकर सबके देखते देखते देवलोक को चली गई। उदयन भी माला, वीणा और अपने पुत्र को लेकर अपने श्वसुर से बिदा होता हुआ बहुत दिन के वियोग से दुःखिनी अपनी माता के समीप को चला। जमदग्नि मुनि के आश्रम में पहुँचकर उसने अपनी माता को प्रसन्न किया और सब वृत्तान्त उससे कहा। मृगावती भी अपने पुत्र और पौत्र को देखकर बहुत प्रसन्न हुई।

दैव-वश वह व्याध भी उस सुवर्ण-कङ्कण को बेचने के लिये कौशाम्बी में पहुँचा। उसने वह कङ्कण एक वैश्य को दिखाया। वैश्य ने उस जड़ाऊ कड़े को देखा। उस पर राजा का नाम खुदा

हुआ देखकर उस व्याध को साथ लेकर राजा के समीप में गया और सब वृत्तान्त निवेदन किया। राजा ने भी व्याध से सब वृत्तान्त पूछा और बहुत सा धन देकर कङ्कण उससे ले लिया। कङ्कण को अपनी छाती से लगाकर राजा अनेक प्रकार के विलाप कलाप करने लगा। बहुत काल तक विलाप करने के अनन्तर अपने मन्त्रियों को सङ्ग ले व्याध के कहने के अनुसार अपनी रानी मृगावती की प्राप्ति के लिये उदयाचल को चला। कुछ मार्ग चलकर विश्राम किया। राजा को मृगावती के विरह से निद्रा नहीं आती थी इसलिये वसन्तक ने भांति भांति की मनोहर कथा सुनाकर राजा के चित्त को प्रसन्न किया। कथा सुनते २ वह रात्रि बीत गई। प्रभात होते ही पुनः वहां से चले, कुछ काल के अनन्तर राजा सहस्रानीक अपनी सेनासमेत उदयाचल के बीच जमदग्नि मुनि के आश्रम में पहुँचे। वहां राजा ने मुनि के चरणों पर भक्ति से प्रणाम किया। मुनि ने भी राजा को यथायोग्य आशीर्वाद दिया

और पाद्य, अर्घ्य, आचमन, आसन आदि दे यह कहा, हे राजन्! तुम्हारी मृगावती रानी से यह बड़ा प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ है, "जो सब दिशाओं को जीतेगा" इसका नाम हमने उदयन रक्खा है। यह उदयन का पुत्र और आपका पौत्र है। यह परम पतिव्रता तुम्हारी रानी मृगावती है। अब इन तीनों को ग्रहण कीजिये।

इतना कह मुनि ने राजा को तीनों अर्पण किये। राजा भी रानी, पुत्र और पौत्र को पाकर अति हर्षित हो मुनि से विदा हुआ और कुछ दिनों में कौशाम्बी में आ पहुँचा। वहां आकर राजा ने इन्द्र का वचन स्मरण कर मनुष्य जन्म की निन्दा करता हुआ सम्पूर्ण राज्यव्यवहार उदयन को सौंप दिया। उदयन भी भली भांति प्रजापालन करने लगा। राजा सहस्रानीक रानी मृगावती, यौगन्धरायण, वसन्तक, रुमण्वान् आदि अपने मन्त्रियों को साथ ले शापमुक्ति के लिये दक्षिण समुद्र के तट पर चक्रतीर्थ में स्नान करने चले और थोड़े ही काल में चक्रतीर्थ पर पहुँच गए। चक्र-

तीर्थ में सबने स्नान किया । स्नान करते ही दिव्य देह धारण कर दिव्य वस्त्र भूषण आदि से भूषित उत्तम विमानों पर चढ़कर चक्रतीर्थ की प्रशंसा करते हुये सबके देखते २ सब लोग स्वर्ग को चले गये । उस दिन से सब मनुष्यों ने चक्रतीर्थ का प्रभाव जाना और भक्ति से उस में स्नान करने लगे । उस चक्रतीर्थ में जो व्यक्ति भक्ति से स्नान करता है वह अवश्य ही स्वर्ग को जाता है । इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले, हे मुनीश्वरो ! यह विधूम का चरित हमने वर्णन किया । इस अध्याय को जो भक्ति से पढ़ता है अथवा सुनता है, उसके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं ।

पञ्चम अध्याय समाप्त ।

छठा अध्याय ।

देवीपुर के नाम का कारण और महिषासुर के युद्ध का वर्णन ।

शौनक आदि ऋषि पूछते हैं, हे व्यासशिष्य, सूतजी ! आपने पहले वर्णन किया है कि देवी-पत्तनपर्यन्त चक्रतीर्थ है । अब आप यह वर्णन करें कि देवीपत्तन कहां है और उस स्थान का नाम देवीपत्तन क्योंकर हुआ और सेतुमूल में तथा चक्रतीर्थ में स्नान करनेवाले मनुष्यों को क्या पुण्य होता है ? मुनियों का यह प्रश्न सुन-कर सूतजी कहने लगे, हे मुनिवर्य ! आप सावधान होकर श्रवण करें, आपने जो पूछा, उस सबका हम वर्णन करते हैं, जिसके सुनने से सब पातक निवृत्त हो जायँ । जहां नैमिषारण्य स्थापन कर पहले रामचन्द्रजी ने सेतु बांधने का आरम्भ किया है वहीं देवीपुर है । जहां तक चक्र-तीर्थ की सीमा है और जिस कारण उस स्थान की देवीपुर संज्ञा हुई वह भी हम वर्णन करते हैं ।

पूर्वकाल में देवता और दैत्यों का युद्ध हुआ ।

उसमें देवताओं ने सब दैत्यों को मार डाला। तब दैत्यों की माता दिति अपनी कन्या से दुःखिनी होकर बोली, हे पुत्रि! वन में जाकर तप कर और ऐसा पुत्र उत्पन्न कर, जो इन्द्र आदि देवताओं को जीत सके। माता की यह आज्ञा पाकर महिषी का रूप धरकर दिति की कन्या तप करने के लिये वन को गई। वन में पञ्चाग्नि के मध्य में बैठकर ऐसा घोर तप किया कि तीनों लोक कांप उठे। इन्द्र आदि देवता भयभीत हो गये। तब ब्रह्माजी सुपार्श्वमुनि का रूप धरकर उसके समीप में आये और कहा, हे महिषि! हम तेरे तप से बहुत प्रसन्न हुये। बड़ा प्रतापी और इन्द्र आदि देवताओं को जीतनेवाला तेरे पुत्र होगा। जिसका मुख महिष का और शरीर मनुष्य का होगा। वह महिष नाम तेरा पुत्र स्वर्ग को पीड़ा देगा। इतना वर दे और उसको तप से निवृत्त कर सुपार्श्वमुनिरूपधारी ब्रह्माजी अपने लोक को गये। कुछ काल के अनन्तर उसके पुत्र भी उत्पन्न हुआ और प्रतिदिन बढ़ने लगा।

जब वह तरुण हुआ तब विप्रचित्ति का पुत्र विद्युन्माली नाम दैत्य बहुत से दैत्यों को संग ले महिषासुर के समीप आया और कहने लगा हे महिष! पहले स्वर्ग में हमारा ही राज्य था। पीछे विष्णु की सहायता से देवताओं ने हमारा राज्य छीन लिया। अब तू अपना पराक्रम प्रकट कर और इन्द्र को मार स्वर्ग का राज्य फिर ले। ब्रह्माजी के वर से कोई तुझे न जीत सकेगा। विद्युन्माली का यह वचन सुनकर सब दैत्यों को संग ले महिषासुर अमरावती नगरी पर आक्रमण कर देवताओं से युद्ध करने लगा। सौ वर्ष तक घोर युद्ध हुआ, अन्त में इन्द्र आदि देवता हारे और युद्ध से भागकर ब्रह्माजी की शरण में पहुँचे। ब्रह्माजी उन सब देवताओं को साथ लेकर वहां गये, जहां शिवजी और विष्णुजी थे। वहां ब्रह्माजी ने शिवजी और विष्णुजी की स्तुति की और महिषासुर का सब वृत्तान्त कहा कि इन्द्र, अग्नि, यम, कुबेर, वरुण आदि सब देवताओं के अधिकार महिष

ने छीन लिया और सब देवताओं को स्वर्ग से निकाल दिया । अब मनुष्यों की भांति देवता भूमि पर घूमते हैं । आपको यह वृत्तान्त बताने के लिये हम आये हैं । इस समय जो उचित हो, वह कीजिये । ब्रह्माजी का यह वचन सुनकर शिवजी ने और विष्णुजी ने बड़ा क्रोध किया । उनके मुख क्रोध से प्रज्वलित हो अति भयंकर हो गये । तब विष्णुजी, शिवजी और ब्रह्माजी के मुख से तेज निकला एवं इन्द्र आदि देवताओं के शरीर से भी तेज निकला । वह सब तेज एकत्र हुआ और जलते हुये पर्वत की भांति अपनी ज्वालाओं से दिशाओं को व्याप्त करने लगा । सब देवताओं के देखते २ क्षणमात्र में वह तेज एक अतिसुन्दरी स्त्री हो गया । शिवजी के तेज से उसका मुख, विष्णु के तेज से भुजा, ब्रह्मतेज से चरण, इन्द्र के तेज से मध्यभाग, यम के तेजसे केश, चन्द्र के तेज से कुच, वरुण के तेज से जंघा और ऊरू, पृथ्वी के तेज से नितम्ब, सूर्य के तेज से पैरों की अंगुली, वसुओं के तेज

से हाथों की अंगुली, कुबेर के तेज से नासिका, प्रजापतियों के तेज से दन्तपंक्ति, अग्नि के तेज से नेत्र, सन्ध्याओं के तेज से भ्रू, एवं वायु के तेज से कर्ण इस भांति सब देवताओं के तेज से उस भगवती दुर्गा के सब अङ्ग बन गये ।

सबके तेज से उत्पन्न भगवती के रूप को देखकर महिषासुर के सताये हुये सब देवता बहुत प्रसन्न हुये । शिव, विष्णु आदि देवताओं ने अपने अपने आयुधों से उत्पन्नकर शूल चक्र आदि आयुध दिये और सब देवताओं ने भांति भांति के भूषण, वस्त्र, माला, चन्दन आदि दिये । भगवती भी उत्तम वस्त्र, भूषण, माला आदि से भूषित हो सब शस्त्र धारण कर अट्टहास और भयंकर शब्द करने लगी । उस शब्द से तीनों लोक कांप उठे । सिंह के ऊपर चढ़ी हुई भगवती की सब देवता, मुनि, गन्धर्व आदि स्तुति करने लगे । भगवती के गर्जन को सुनकर महिषासुर ने बड़ा क्रोध किया । अपनी सेना साथ ले उस शब्द के अनुसार वहां पहुँचा, जहां सब देवताओं से सेवित

जगदम्बा विराजमान थीं । महिषासुर ने देखा कि अनन्त भुजाओं से युक्त एक परमसुन्दरी स्त्री सब शस्त्र धारण किए हुए सिंह पर चढ़ी हुई है । जिसके तेज से सब जगत् व्याप्त हो रहा है । भगवती का यह रूप देखकर सब दैत्यों समेत महिषासुर युद्ध करने लगा । अस्त्र, शस्त्र, चक्र, गदा, खड्ग, बाण, मुशल आदि की वृष्टि होने लगी । हाथी, घोड़े, रथ आदि से युक्त महिषासुर युद्ध करने लगा । महिषासुर की सेना में कई करोड़ प्रधान दैत्य थे । उनमें एक २ के साथ इतनी सेना थी, जिसकी गिनती नहीं हो सकती थी । वे सब दैत्य एकबार ही भगवती पर शस्त्रों की वर्षा करने लगे, परन्तु भगवती अपने बाणों से उनके शस्त्रों को अनायास काट देती थी । भगवती के आश्रय से सब देवता भी निर्भय हो दैत्यों के साथ युद्ध करते थे ।

भगवती की शक्ति पाकर देवताओं ने महिषासुर की सब सेना का संहार कर दिया । तब महिषासुर क्रोध कर देवताओं को बाण से मारने

लगा । इन्द्र के दशहज़ार बाण, यमराज के पांचहज़ार, वरुण के आठहज़ार और कुबेर के छहहज़ार बाण मारे । सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वसु, वायु आदि देवताओं के शरीरों में भी महिषासुर ने बाण मारे । तब देवता भयभीत हो युद्ध से भगे और त्राहि २ कहते भगवती की शरण में आये । भगवती ने अपने गण भूत वेताल आदि को आज्ञा दी कि तुम महिषासुर की सेना को मारो । मैं महिषासुर के साथ युद्ध करती हूं । भगवती की यह आज्ञा पाते ही गणों ने महिषासुर की सेना का संहार किया । तब महानाद, सुचक्षु, महाहनु, महाखण्ड, महाभक्ष, महोदर, महोत्कट, पञ्चास्य, पादचूड़, बहुनेत्र, प्रबाहुक, एकाक्ष, एकपाद, बहुपाद, अपाद आदि अपने बड़े २ वीर मन्त्रियों समेत महिषासुर भगवती के साथ बड़े कोप से युद्ध करने लगा । सिंह पर चढ़ी हुई भगवती भी धनुष् का भयंकर शब्द कर बाणों की वर्षा करने लगी । दश लाख हाथी, एक करोड़ घोड़े, दश करोड़ रथ और एक अर्ब

पयादों से युक्त महाहनु नाम दैत्य को क्षणमात्र में भगवती ने मार गिराया। महिषासुर के और भी सब मन्त्री इतनी २ ही सेना से युक्त थे, परन्तु एक पहर में भगवती ने सब का संहार किया। यह सब देख देवताओं को बड़ा आश्चर्य हुआ।

छठा अध्याय समाप्त ।

सातवाँ अध्याय ।

महिषासुर के संहार का वर्णन ।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! इस प्रकार भगवती से किये हुये सेनासंहार को देखकर बड़े कोप से चण्डकोप नाम अपने मन्त्री से महिषासुर कहनेलगा, हे चण्डकोप ! इस दुष्टा स्त्री से तू युद्ध कर। अपने प्रभु की यह आज्ञा पाकर चण्डकोप भगवती को बाणों से मारने लगा, परन्तु उसके बाणों को भगवती लीला से ही काट देती थी। भगवती ने अपने बाणों से चण्डकोप के घोड़े, ध्वजा, धनुष्, रथ और सारथि इन सबको काट डाला। तब चण्डकोप

खड्ग और चर्म अर्थात् ढाल लेकर भगवती से युद्ध करने लगा। पहले एक खड्ग का प्रहार सिंह पर किया, पीछे भगवती की बाईं भुजा पर खड्ग चलाया, परन्तु भगवती की भुजा पर लगते ही उस खड्ग के हज़ारों टुकड़े होगये। तब त्रिशूल उठाकर भगवती ने चण्डकोप की छाती में मारा, जिससे वह गिरा और मर गया।

फिर हाथी पर चढ़ा हुआ चित्रभानु नाम दैत्य युद्ध करने आया और घण्टाओं से भूषित अतिभयंकर बर्छी उसने भगवती पर चलाई। परन्तु उस बर्छी को अपने हुंकारशब्द से निवारण करती हुई भगवती ने एक त्रिशूल का प्रहार चित्रभानु के हृदय में ऐसा मारा कि वह हाथी से गिरा और मर गया। उसके मरने पर और भी कई प्रधान दैत्य युद्ध करने आये। उनमें कराल को भगवती ने अपनी मुष्टि के प्रहार से गिराया, मदोन्मत्त को गदा से मारा, बाष्कलि को पट्टिश से संहार किया और अन्धक को चक्र से यमलोक को भेजा। इस भांति और

भी महिषासुर के मन्त्री त्रिशूल से मारे गए। तब महिषासुर महिष का रूप धारणकर भगवती के गणों को त्रास देने लगा। कई गणों को अपने मुख से, कइयों को सींग और खुरों से मारा और कितने ही गण अपनी श्वास के पवन से उड़ा दिये। इस प्रकार गणों का संहारकर भगवती के वाहन सिंह को मारने चला। उसको आते देख सिंह ने भी कोप कर नखों से उसको विदारण किया और भगवती ने भी महिष के मारने का विचार किया। भगवती ने उसको पाश से बांधा, परन्तु वह पाश से निकल गया और सिंह का रूप धारणकर गर्जने लगा। भगवती ने ज्यों ही उसका शिर काटना चाहा त्योंही वह खड्ग हाथ में लिये हुए पुरुष होगया। भगवती उस पुरुष को अपने तीक्ष्ण बाणों से विदारण करने लगी। तब वह बड़े २ दांतों से सुशोभित पर्वत के समान ऊंचा, एक मस्त हाथी बन गया और अपनी सूंड़ से सिंह को खींचने लगा। सिंह ने उसकी सूंड़ को अपने तीखे नखों

से भेदन किया। तब फिर वह महिषरूप धारण कर युद्ध करने लगा। भगवती ने मधुपान करके अट्टहास किया। महिषासुर भी अपने सींगों से बड़े २ पहाड़ उठाकर भगवती पर फेंकने लगा। उन पर्वतों को अपने बाणों से काटकर भगवती ने महिषासुर से कहा, रे मूढ़ ! मैं जबतक मधुपान करूं, तबतक तू गर्ज ले। मधुपान करके मैं तुझे यमलोक को भेजती हूं। तेरे मारे जाने पर सब देवता अपना २ अधिकार पावेंगे।

इतना कह जगदम्बा ने मधुपान कर एक मुक्का महिषासुर के ऐसा मारा कि वह व्याकुल होकर भगा। भगवती उसके पीछे लगी, परन्तु महिषासुर दक्षिण समुद्र के तट पर जाकर दशयोजन लम्बी-चौड़ी धर्मपुष्करिणी के जल में जगदम्बा के भय से गुप्त होगया। भगवती ने जब उसको वहां न देखा तब आकाशवाणी हुई, हे महादेवि ! तुम्हारे भय से वह दुष्ट दैत्य धर्मपुष्करिणी के जल में छिप गया है। इसको किसी उपाय से मारो यह आकाशवाणी सुन जगदम्बा

ने अपने वाहन को आज्ञा दी, हे मृगेन्द्र ! तू इस धर्मपुष्करिणी के सम्पूर्ण जल को पान करजा। यह आज्ञा पाते ही सिंह सब जल को पी गया और भयभीत हुआ महिषासुर उससे भाग निकला । तब भगवती ने अपना चरण महिष के मस्तक पर रख त्रिशूल से उसके कण्ठ को भेदन किया और खड्ग से उसका शिर काट दिया । इस भांति दुर्गा ने उस दैत्य को मारा ।

सब देवता, ऋषि, गन्धर्व, सिद्ध आदि भगवती की स्तुति करने लगे । भगवती ने देवताओं को अपने २ अधिकार दिये और दक्षिणसमुद्र के तट पर अपने नाम से एक नगर बसाया। वही देवीपुर हुआ । जगदम्बा की आज्ञा से धर्मपुष्करिणी को देवताओं ने अमृत से भर दिया और भगवती ने पुर को यह वर दिया कि इस नगर में रोग का भय न होगा । यहां के पशु हृष्ट पुष्ट रहेंगे । धर्मपुष्करिणी को भी वर दिया कि इसमें जो पुरुष स्नान करेंगे उनके सब मनोरथ सिद्ध होंगे । इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले हे मुनिवर्य ! देवी के द्वारा बसाए जाने के कारण उस नगर का नाम देवीपत्तन हुआ । गणेशजी का पूजन कर और तिलकस्वामी को प्रणाम कर शिवजी की आज्ञासे देवीपत्तन के समीप रामचन्द्रजी ने सेतुकी नवशिला अपने हाथ से रक्खी । फिर रामचन्द्रजी तो सिंहासन पर बैठे देखते रहे और वानरों ने सेतु बांधा । पर्वत, वृक्ष, पत्थर, काष्ठ, तृण आदि तो सब वानर लाये और नल ने सेतु बांधा । देवीपत्तन से लङ्कातक सौ योजन लम्बा और दशयोजन चौड़ा सेतु पांचदिन में पूरा हुआ । देवीपुर के निकट नवपाषाणों के समीप सब पाप निवृत्त होने के लिये स्नान करके पीछे चक्रतीर्थ में स्नान कर सेतु के अधिपति भगवान् का दर्शन करे । देवीपत्तन से सेतु का आरम्भ हुआ, इसलिये देवीपुर सेतुमूल कहाया । सेतु का पश्चिमाग्र दर्भशय्या और पूर्वाग्र देवीपत्तन है । ये दोनों स्थान सेतुमूल हैं । जिनके दर्शन से सब पाप निवृत्त होते हैं । सेतुमूल में स्नान कर के चक्रतीर्थ में स्नान करे, पीछे संकल्प कर सेतुबन्धन को जाय । देवीपुर,

दर्भशय्या और चक्रतीर्थ में स्नान करने से सब पातक दूर होते हैं और पुण्य की वृद्धि होती है। चक्रतीर्थ के स्मरण से भी सब पाप निवृत्त होते हैं। मनुष्य जन्म-मरण से छूटता है और मुक्ति भी अनायास से मिलती है। चक्रतीर्थ के तुल्य तीर्थ न हुआ न होगा। भूलोक में जितने गङ्गादि तीर्थ हैं वे चक्रतीर्थ की सोलहवीं कला की भी तुलना नहीं कर सकते। पहले नवपाषाण के समीप समुद्र में स्नान कर चक्रतीर्थ में जाकर तीर्थश्राद्ध करे और सब पाप निवृत्त होने के लिये सेतुनाथ भगवान् का सेवन करे। इसी भांति दर्भशय्या में भी पिण्डदान आदि करे। नल के बनाये सिंहासन को जिस पर श्रीरामचन्द्र जी बैठे थे, जो मनुष्य प्रणाम करते हैं, उनको नरक का भय नहीं होता। रामचन्द्रजी का ध्यान करता हुआ सेतु का दर्शन करे और ये मन्त्र पढ़े ॥

रघुवीरपदन्यासपवित्रीकृतपांशवे ॥ दशकण्ठशिरश्छेदहेतवे सेतवे नमः ॥ १ ॥ केतवे रामचन्द्रस्य मोक्षमार्गैकसेतवे ॥ सीताया मानसाम्भोजभानवे सेतवे नमः ॥ २ ॥

ये मन्त्र पढ़ सेतु को साष्टाङ्ग प्रणाम कर वेतालवरद नाम तीर्थ को आना चाहिये। इस अध्याय को जो पुरुष भक्ति से पढ़े अथवा श्रवण करे उसको स्वर्ग आदि दुर्लभ नहीं और मुक्ति भी हाथ पर ही रक्खी है ॥

सप्तम अध्याय समाप्त ।

आठवां अध्याय ।

वेतालवरदतीर्थ का माहात्म्य और दो विद्याधर कुमारों की अद्भुत कथा ।

शौनकादि ऋषि कहते हैं, हे सूतजी ! आपके वचनरूप अमृत का पान करते हुए हमको तृप्ति नहीं होती, इसलिये और भी अतिमधुर कथा आप वर्णन करें। आपने पहले कहा था कि चक्रतीर्थ के दक्षिणभाग में वेतालवरद नाम तीर्थ है। अब आप उस तीर्थ का प्रभाव और वेतालवरद नाम का कारण वर्णन कीजिये। मुनियों का यह प्रश्न सुन कर सूतजी कहने लगे, हे मुनिवर्य ! आपने जो अतिगुप्त बात

पूछी है उसका हम वर्णन करते हैं। इस कथा के श्रवण करने से पामर पुरुष भी आनन्द को प्राप्त होते हैं। पूर्वकाल में यह कथा कैलासपर्वत के बीच, एकान्त में शिवजी ने पार्वतीजी को सुनाई है। हम उसी अति अद्भुत कथा को वर्णन करते हैं।

पूर्वकाल में अपने आश्रम के बीच गालवमुनि तप करते थे। उनकी कान्तिमती नाम परमसुन्दरी कन्या उनकी सेवा करती। पूजन के लिये पुष्प, हवन के लिये समिधा वन से लाती और नित्य वेदी का मार्जन आदि करती। एक दिन कान्तिमती उत्तम पुष्प लेने के लिए दूर वन में गई। वहां से पुष्प लेकर आश्रम को चली आती थी। उसको सुदर्शन और सुकर्ण नाम दो विद्याधर कुमारों ने देखा जो विमान में बैठे आकाशमार्ग में चले जाते थे। रूप और यौवन से युक्त साक्षात् कामदेव की पत्नी रति के समान गालवमुनि की कन्या को देख कर काम से पीड़ित सुदर्शन उसके

साथ रति की इच्छा से विमान से उतर पड़ा। उस चन्द्रमुखी को देख कर प्रसन्न होता हुआ उसके समीप में जाकर बड़ी प्रीति से पूछने लगा, हे भद्रे! तू कौन है और किसकी पुत्री है? तेरा यह परमसुन्दर रूप मेरे मन को बहुत आह्लाद देता है और तुझे देख कामदेव भी मुझे सताता है। सुकण्ठ नाम विद्याधरराज का मैं सुदर्शन नाम पुत्र हूं। तू मेरे ऊपर कृपादृष्टि कर मैं तेरा दास हूं। तू भी मुझ सरीखे पति को पाकर उत्तम २ भोग भोगेगी। सुदर्शन का यह वाक्य सुन कान्तिमती कहने लगी।

हे महाभाग, विद्याधर कुमार! मैं गालवमुनि की कन्या कान्तिमती हूं। मेरा विवाह नहीं हुआ है। पिता की सेवा करती हूं। आज भी पुष्प लेने आई थी। एक प्रहर मुझे आये हो गया, इसलिये पिताजी मुझपर क्रोध करेंगे। अब मैं पुष्प लेकर पिता के समीप जाती हूं। कन्या पिता के अधीन होती है। स्वतन्त्र नहीं होती। यदि तुम मुझे चाहते हो, तो मेरे पिता

से मेरी याचना करो। सुदर्शन से इतना कहकर कान्तिमती अपने आश्रम को चली, परन्तु सुदर्शन काम के वश हो रहा था, अतः उसने दौड़कर कान्तिमती के केश पकड़ लिये। केश पकड़ते ही कान्तिमती ने बड़े करुणास्वर में पुकारा, हे पितः! शीघ्र मेरी रक्षा करो। यह दुष्ट विद्याधरकुमार बल से मुझे पकड़ता है। यह शब्द सुनते ही गन्धमादन पर्वत के वासी, सब मुनियों समेत गालवमुनि वहां दौड़े आये और देखा कि एक विद्याधरकुमार ने कान्तिमती को पकड़ रक्खा है और दूसरा उसके पास खड़ा है। यह देखते ही महायोगी गालवमुनि क्रोध से जल उठे शाप दिया, रे अधम, सुदर्शन! तूने यह निन्द्य काम किया है, इसलिये मनुष्य-योनि में जन्म लेकर इस पाप का फल भोग। थोड़े काल मनुष्य रहकर तू वेताल हो जायगा और मांस, रुधिर आदि बुरे पदार्थ खाता फिरेगा। राक्षस वेताल आदि ही पराई कन्या को हठ से पकड़ते हैं इसलिये तू भी मनुष्य होकर

वेताल हो जायगा। तेरा यह छोटा भाई सुकर्ण भी इस कुकर्म का साक्षी है इसलिये यह भी मनुष्य होगा। इस ने साक्षात् कुछ पाप नहीं किया केवल तेरा अनुमोदन ही किया है इस-लिये मनुष्य ही रहेगा, वेताल न होगा और विज्ञातिकौतुक नाम विद्याधर गुरु को जब देखेगा तभी शाप से मुक्त होजायगा। तूने यह महा-पापकर्म किया इसलिये मनुष्य होगा और उसी जन्म में वेताल होकर बहुत काल तक लोक में विचरेगा।

उन विद्याधरकुमारों को यह शाप देकर अपनी कन्या साथ ले गालवमुनि सब मुनियों-समेत आश्रम को गये। मुनि के जाने के अनन्तर अतिव्याकुल हो सुदर्शन और सुकर्ण ने विचारकर यह निश्चय किया कि यमुनातट-निवासी गोविन्दस्वामी नाम ब्राह्मण बहुत ही उत्तम हैं। उनका ही पुत्र होना चाहिये। मन में यह ठान कर दोनों ने गोविन्दस्वामी के घर जन्म लिया। गोविन्दस्वामी ने बड़े पुत्र का

नाम विजयदत्त और छोटे का नाम अशोकदत्त रक्खा। वे दोनों कुछ काल में तरुण हुए। इसी अवसर में बारह वर्ष तक वृष्टि न होने से अति-दुर्भिक्ष पड़ा। तब गोविन्दस्वामी अपने नगर को छोड़ स्त्रीपुत्रों को साथ ले कालक्षेप करने के लिये काशी को चला। कुछ दिनों में प्रयाग पहुँच कर अक्षयवट का दर्शन किया। गोविन्द स्वामी ने एक संन्यासी को देखा जो कपाल-माला पहिने था। गोविन्दस्वामी ने साक्षात् शिव के समान उसको देख कर प्रणाम किया।

संन्यासी ने भी आशीर्वाद देकर गोविन्द-स्वामी से कहा, हे ब्राह्मण! तेरे इस बड़े पुत्र विजयदत्त से तेरा वियोग होगा। इतना कह संन्यासी तो चले गये किन्तु गोविन्दस्वामी के चित्त में खेद हुआ। इतने में सूर्य अस्त हुआ, गोविन्दस्वामी ने सन्ध्यादि कर रात्रि बिताने के लिये एक पुराने शून्य देवालय में अपने स्त्री-पुत्रों समेत प्रवेश किया वे सब मार्ग के परिश्रम से थक रहे थे, इसलिये ब्राह्मणी और अशोकदत्त

तो निद्रावश होकर सोगये। विजयदत्त को मार्ग के खेद से शीत लगकर ज्वर चढ़ आया। गोविन्द-स्वामी ने विजयदत्त को बहुत से वस्त्र उढ़ाये और ऊपर से दबाया परन्तु उसका शीत न उतरा। विजयदत्त ने गोविन्दस्वामी से कहा, हे पितः! मुझे शीत बहुत पीड़ा दे रही है इसलिये कहीं से अग्नि लाओ। गोविन्दस्वामी अग्नि लेने गए परन्तु कहीं अग्नि न मिली, तब आकर पुत्र से कहा। इस अर्धरात्रि के समय सब सोते हैं। सबके द्वार बन्द हैं। मैंने बहुत यत्न किया परन्तु कहीं अग्नि नहीं मिलती। विजयदत्त ने फिर दीन वचनों में कहा, हे पितः! मुझे बहुत शीत लगता है। शीतल पवन चल रहा है, मुझे किसी भांति भी चैन नहीं पड़ता। आपने मिथ्या ही कह दिया कि कहीं अग्नि नहीं मिलती। देखो, सम्मुख कैसी प्रचण्ड अग्नि जल रही है, जिसकी ज्वाला आकाश तक उठती है। आप जाकर वहां से अग्नि ले आवें। विजयदत्त का यह वचन सुनकर गोविन्दस्वामी बोले, हे पुत्र! मैं कभी

मिथ्या नहीं बोलता हूँ । इस समय अग्नि कहीं नहीं मिलती । यह सामने श्मशान है, वहीं चिता जल रही है। वही अग्नि देख पड़ती है। इस अग्नि के सेवन से आयु का क्षय होता है । इसलिये इस अपवित्र और अमङ्गल अग्नि को मैं नहीं लाया । तुझे इस अग्नि का स्पर्श करना योग्य नहीं । विजयदत्त यह सुनकर फिर व्याकुल हो बोला, हे पितः ! चाहे यह चिता की अग्नि हो, चाहे यज्ञ की, आप शीघ्र लाइये, नहीं तो मेरे प्राण जाते हैं । पुत्र का यह वचन सुनकर स्नेहवश हो गोविन्दस्वामी श्मशान में अग्नि लेने चला । विजयदत्त भी उठकर पिता के पीछे २ चल दिया । वहाँ जाकर चिताग्नि से अपने शरीर को सेंका, उससे कुछ शीतबाधा निवृत्त हुई । तब विजयदत्त बोला, हे पितः ! चिता के बीच यह गोल२ कमल-सा क्या पदार्थ जल रहा है ? मुझे बताओ ? गोविन्दस्वामी ने कहा, हे पुत्र ! मज्जा से भरा हुआ यह मनुष्य का कपाल जल रहा है । यह सुन विजयदत्त ने एक लकड़ी से उसको फोड़

दिया । उसमें से मज्जा उछलकर विजयदत्त के मुख में गिरी । उसके मुख में गिरते ही वह अति भयंकर वेताल होगया और घोर शब्द करने लगा, जिससे आकाश और भूमि मानों फटी जा रही थी । चिता से कपाल को निकाल सब मज्जा चाट गया और अपने पिता को भी भक्षण करने दौड़ा । तब आकाशवाणी हुई, अरे तू यह साहस मत कर । तब वह अपने पिता को छोड़-कर आकाश में उड़ गया और वेतालों के समूह में जा मिला । वे वेताल उसको देख बोले, कपाल के फोड़ने से यह वेताल हुआ इसलिये इसका नाम कपालस्फोट है । उसका यह नाम रखकर सब वेताल उसको अपने राजा नरास्थिभूषण के पास ले गये । नरास्थिभूषण उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और कपालस्फोट को अपना सेना-पति बनाया । कुछ काल के अनन्तर चित्रसेन गन्धर्व से राजा नरास्थिभूषण का युद्ध हुआ उसमें नरास्थिभूषण मारा गया । तब सब वेतालों ने मिलकर कपालस्फोट को अपना राजा बनाया ।

इस भांति विद्याधरेन्द्र का पुत्र मुनिशाप से मनुष्य हुआ, मनुष्य से वेताल और वेताल से वेतालों का राजा बन गया और सुख से राज्य करने लगा ।

आठवाँ अध्याय समाप्त ।

नवाँ अध्याय ।

वेतालवरदतीर्थ की प्रशंसा और दोनों विद्याधर कुमारों का शापमोक्ष ।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिगण ! प्रभात होते ही अपनी स्त्री और पुत्रसमेत गोविन्दस्वामी विलाप करने लगा । उनको विलाप करते देख समुद्रदत्त नामक वैश्य दया कर उसे अपने घर को ले आया । गोविन्दस्वामी को बहुत आश्वासन देकर अपने धन की रक्षा का अधिकार उसे दिया। गोविन्दस्वामी भी अपने पुत्र विजयदत्त के फिर मिलने की आशा से वैश्य के घर में कालक्षेप करने लगा । गोविन्दस्वामी का पुत्र अशोकदत्त शास्त्र और शस्त्र-विद्या में बड़ा विचक्षण हुआ । अन्य विद्याओं में भी उसने इतना अभ्यास किया कि

उसके तुल्य और कोई विद्वान् भूमण्डल में न निकले । वह सब नगर में प्रसिद्ध होगया ।

इसी अवसर में काशी के राजा प्रतापमुकुट के समीप एक बड़ा बलवान् मल्ल देशान्तर से आया । उसके साथ काशी के किसी मल्लों ने लड़ना अङ्गीकार न किया । तब राजा ने गोविन्दस्वामी के पुत्र अशोकदत्त को बुलवाया । अशोकदत्त भी राजा की आज्ञा से सभा में आया । तब राजा ने कहा, हे अशोकदत्त ! तू सब बलवान् पुरुषों में अधिक बली है इसलिये इस दुर्जय मल्ल को जीत । यह दक्षिण देश के सब मल्लों का स्वामी है। यदि तू इसको जीतेगा तो जो मांगेगा वही मुझ से पावेगा। राजा का यह वचन सुनकर प्रसन्न हो अशोकदत्त उस दक्षिणी मल्ल के साथ युद्ध करने लगा । अशोकदत्तने उसको गिराकर ऐसा दबाया कि उसकी पुतली फिर गई और वह मर गया । यह दुष्कर कर्म देख राजा बहुत प्रसन्न हुआ और बहुत से धनग्रामआदि देकर अशोकदत्तको प्रसन्नकिया। राजा सदा उसको अपने समीप में रखने लगा ।

एक दिन सायंकाल के समय राजा अशोकदत्त को साथ लेकर एकान्त में विचरने गया। वहां अकस्मात् एक ओर से यह शब्द हुआ, हे राजन्! मुझे विना अपराध नगर के दण्डपाल ने मेरे शत्रु की प्रेरणा से मुझे शूली पर चढ़ा दिया। आज चार दिन हुए पूर्वजन्म के पाप से मेरे प्राण नहीं निकलते। इस समय मुझे तृषा बहुत पीड़ा देती है, आप जल पिलाओ। यह दीन वचन सुनकर राजा ने अशोकदत्त को आज्ञा दी कि तू इस निरपराध मनुष्य को जल पिला दे। राजा का यह वचन सुनकर जल का कलश भर उस श्मशान में अशोकदत्त गया जहां से वह शब्द सुना था। वहां जाकर देखा कि एक परमसुन्दरी स्त्री सब भूषणों से भूषित खड़ी है। उससे अशोकदत्त ने पूछा, हे भद्रे! तू कौन है? और इस भयंकर श्मशान में रात्रि के समय इस शूली पर चढ़ाये हुए पुरुष के नीचे क्यों खड़ी है? तब वह स्त्री बोली, हे महात्मन्! इस शूलीपर मेरे पति को राजा ने चढ़ा दिया। कृपण पुरुष जिस

भांति धन नहीं छोड़ता इसी भांति यह प्राण नहीं छोड़ता है। मैं इसके साथ सती होने के लिये यहां आई हूं। अब यह तृषा से पुकारता है परन्तु मैं शूली के ऊपर नहीं पहुँच सकती कि इसके मुख में जल डालूं। स्त्री का यह वचन सुनकर अशोकदत्त ने कहा हे मातः! तू मेरी पीठ पर चढ़कर इसको ठंडा जल पिला दे। इतना कह अशोकदत्त शूली के नीचे झुक गया और वह नारी भी झटपट उसके ऊपर चढ़ गई। थोड़े काल में अशोकदत्त के ऊपर रुधिर गिरा, तब उसने ऊपर को दृष्टि की तो देखा कि वह स्त्री उस पुरुष के मांस को खाती है। अशोकदत्त ने उस स्त्री का पैर पकड़ा परन्तु वह पैर को छुड़ा कर आकाश को उड़ गई। एक जड़ाऊ नूपुर अर्थात् पाजेब अशोकदत्त के हाथ में रह गया। उस नूपुर को लेकर अशोकदत्त राजा के समीप आया और सम्पूर्ण वृत्तान्त राजा को सुनाकर वह नूपुर दिया।

राजा अशोकदत्त का धैर्य देखकर बहुत

प्रसन्न हुआ और उस वीर को अपनी मदनलेखा नाम परम सुन्दरी कन्या ब्याह दी। अशोकदत्त भी आनन्द से रहने लगा। एक दिन राजा उस दिव्य नूपुर को देखकर बोला कि ऐसा दूसरा नूपुर कहां से मिले। राजा का यह वचन सुनकर अशोकदत्त ने मन में विचार किया कि श्मशान में यह नूपुर मिला था। अब वह स्त्री फिर कहां मिले कि दूसरा नूपुर भी प्राप्त हो इस भांति अनेक प्रकार के विचारकर अशोकदत्त ने निश्चय किया कि श्मशान में जाकर महामांसका विक्रय करूं। तब सब भूत प्रेत पिशाच आदि मन्त्र के बल से आजायँगे। उनमें वह राक्षसी भी अवश्य आवेगी। तब बल से उसका दूसरा नूपुर भी ले लूंगा। हज़ारों भूत प्रेत भी मेरा कुछ नहीं करसकते। यह मन में ठान महामांस अर्थात् मनुष्यमांस ले रात्रि के समय श्मशान में गया और मन्त्र पढ़ यह पुकारने लगा, मैं महामांस बेचता हूं, जिसकी इच्छा हो, वह ले। यह शब्द सुनते ही अति हर्षित हो चारों ओर से किलकिलाते हुए

भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस, कंकाल, वेताल आकर इकट्ठे हुए।

इतने में ही महामांस की इच्छा से बहुतसी राक्षसकन्याओं से युक्त वह राक्षसी भी वहाँ आ पहुँची। अशोकदत्त ने भी उसको पहिंचाना। उस राक्षसी ने पूछा कि महामांस का क्या मोल होगा? तब अशोकदत्तने कहा कि दूसरा नूपुर। राक्षसी बोली कि मैं तेरे धैर्य पर बहुत प्रसन्न हूं, इसलिये दूसरा नूपुर और अपनी कन्या भी तुझे देती हूं। महामांस की मुझे कुछ भी आकांक्षा नहीं। इतना कह उस विद्युत्केशी राक्षसी ने रूपयौवन से युक्त अपनी विद्युत्प्रभा नामक कन्या अशोकदत्त को विवाह दी और वह नूपुर देकर एक सुवर्ण का कमल भी दिया। नूपुर, सुवर्णकमल और विद्युत्प्रभा को साथ ले अपनी सासु विद्युत्केशी से बिदा हो अशोकदत्त राजा के समीप पहुँचा और यह नूपुर राजा को दिया। राजा भी दूसरा नूपुर पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और अशोकदत्त की प्रशंसा करने लगा।

एक दिन अशोकदत्त ने अपनी प्रिया विद्युत्प्रभा से पूछा, हे प्राणप्रिये ! यह सुवर्णकमल तेरी माता ने कहां से पाया ? मुझे ऐसे कमलों की और भी इच्छा है । यदि तू बतावे तो मैं ले आऊं। तब विद्युत्प्रभा ने कहा, हे प्रिय ! कपालस्फोट नामक वेतालों का राजा है । उसके सरोवर में ऐसे कमल होते हैं । मेरी माता एक दिन जलक्रीड़ा करने उस सरोवर में गई थी । तब एक पुष्प तोड़ लाई थी। अपनी प्रिया का यह वचन सुनकर अशोकदत्त ने कहा, मुझे उस सरोवर के तट पर पहुँचा दे । तब विद्युत्प्रभा अशोकदत्त को ले उड़ी और क्षण भर में वहां पहुँचा दिया । अशोकदत्त जब सरोवर में घुसकर सुवर्णकमल तोड़ने लगा, तब उस सरोवर के रक्षक अशोकदत्त को मारने दौड़े। परन्तु उस वीर ने उन सबको मार दिया । तब कपालस्फोट स्वयमेव युद्ध करने निकला और अशोकदत्त से युद्ध करने लगा । अशोकदत्त अपने खड्ग से कपालस्फोट के दो टुकड़े करना ही चाहता था, इतने

में विद्याधर गुरु विज्ञप्तिकौतुक विमान में बैठे हुए वहां आ निकले, और पुकार कर कहा, हे अशोकदत्त ! साहस मत कर । यह वचन सुन अशोकदत्त ने ऊपर को दृष्टि की तो देखा कि अतिप्रभावान् विद्याधर गुरु विमान में बैठे हैं । उनको देखते ही अशोकदत्त शाप से मुक्त हुआ और मनुष्य-देह छोड़ दिव्यदेह होगया। तब विद्याधर गुरु ने अशोकदत्त को अपने पहिले रूप में देखकर कहा, हे सुकर्ण ! यह तेरा भाई गालवमुनि के शाप से वेताल हुआ है । इसने गालवमुनि की कन्या को स्पर्श किया था और तूने इस पाप का अनुमोदन किया था। इसलिये तुझे भी गालव मुनि ने शाप दिया । तेरा शाप मेरे दर्शन तक था । इस तेरे भाई के शाप का अन्त गालवमुनि ने कुछ भी नहीं बतलाया अब तू शाप से मुक्त हुआ इसलिये स्वर्ग को चल और उत्तमभोगों को भोग।

गुरु का यह वचन सुन सुकर्ण ने कहा, हे महाराज ! बड़े भाई को इस दुर्दशा में छोड़कर मुझे स्वर्ग

में जाना उचित नहीं । आप कोई ऐसा उपाय बतावें, जिससे यह भी शाप से मुक्त हो । यह सुन विज्ञप्तिकौतुक ने कहा कि इसे शाप से निवृत्त होना अति कठिन है । परन्तु एक गुप्त बात हम कहते हैं, जो ब्रह्माजी ने सनत्कुमार आदि से कही थी । दक्षिणसमुद्र के तट पर चक्रतीर्थ के समीप एक तीर्थ है । जिसके दर्शनमात्र से ही सब पाप निवृत्त हो जाते हैं उसमें स्नान करने से जो फल होता है उसका तो कौन वर्णन कर सके । उस तीर्थ में जाकर तेरा भाई स्नान करे तो वेतालपने से मुक्त हो और दिव्य देह को धारण कर स्वर्ग को जाय । सुकर्ण यह वचन सुन अपने भ्राता कपालस्फोट को साथ ले दक्षिण समुद्र के तटवर्त्ती उस तीर्थ पर पहुँचा जिसे विज्ञप्तिकौतुक ने बताया था । वहां जाकर सुकर्ण ने अपने भाई से कहा, हे भ्रातः! तू इस तीर्थ में स्नानकर जिससे यह गालवमुनि का शाप निवृत्त हो । इतने में पवन चला उससे तीर्थ के जलकण उड़कर कपालस्फोट की देह पर गिरे ।

उन जलकणों के गिरते ही वेतालरूप छोड़कर ब्राह्मणपुत्र विजयदत्त होगया । फिर उसने तीर्थ में स्नान किया, तब मनुष्यदेह छोड़ दिव्यदेह होगया । दोनों भाई उत्तम विमानपर चढ़ दिव्य स्त्रियों-सहित उस तीर्थ की प्रशंसा करते हुए अपने गुरु विज्ञप्तिकौतुक के संग स्वर्ग को गये । उस दिन से उस तीर्थ का नाम वेतालवरद हुआ । चक्रतीर्थ के दक्षिणभाग में स्थित वेतालवरद नामक तीर्थ में जो स्नान करेंगे वे जीवन्मुक्त होंगे । इस तीर्थ के तुल्य और तीर्थ न हुआ है न होगा । इसमें स्नान करने से वेतालपना छूटा । यहां संकल्पकर स्नान करे और नियमपूर्वक पिण्डदान पितरों के निमित्त करे । इतना कह सूतजी बोले, हे मुनीश्वर! हमने वेतालवरदतीर्थ के नाम का कारण और माहात्म्य वर्णन किया । जो पुरुष इस अध्याय को पढ़े अथवा भक्ति से श्रवण करे वह मुक्त होता है ।

नवाँ अध्याय समाप्त ।

दसवाँ अध्याय ।

गन्धमादनपर्वत का माहात्म्य, एक शूद्र और एक मुनि की कथा और पापनाशनतीर्थ का माहात्म्य ।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! वेतालवरद तीर्थ में स्नान कर धीरे धीरे गन्धमादन पर्वत तक जाना चाहिए। गन्धमादनपर्वत को ब्रह्मलोक का मार्ग विश्वकर्मा ने बनाया है। लाखों सरोवर, नदी, समुद्र, महापुण्यवन, आश्रम, पुण्यक्षेत्र, अरण्य, वेद, वशिष्ठ आदि मुनि, सिद्ध, चारण, किन्नर, लक्ष्मी और धरणीसहित विष्णुभगवान्, सावित्री और सरस्वतीसहित ब्रह्माजी, गणपति, कार्त्तिकेय, इन्द्र आदि देवता, सूर्य आदि ग्रह, अष्टवसु, पितर, लोकपाल सब उस पर्वत में निवास करते हैं और दर्शन करनेवालों के महापातक हरते हैं। इसी पर्वत में शिव पार्वती विहार करते हैं। किन्नर, गन्धर्व, विद्याधर आदि इसी पर्वत में अपनी कान्ताओं के साथ क्रीड़ा करते हैं। गन्धमादन के दर्शन करते ही उत्तम बुद्धि और सौख्य प्राप्त होता है। उसके ऊपर निवास करनेवाले

सिद्ध, चारण, गन्धर्व आदि सदा सदाशिवजी का पूजन करते हैं। गन्धमादन का पवन शरीर में लगते ही करोड़ों ब्रह्महत्या आदि महापातक नष्ट हो जाते हैं। पहले यह पर्वत समुद्र के मध्य में होने से मनुष्यों को अगम्य था। केवल देवता और ऋषिही इसमें रहते थे। श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से नल ने सेतु बांधा। उसके मध्य में यह पर्वत आगया। तब से मनुष्य जाने लगे। गन्धमादनपर्वत के समीप में जाकर प्रार्थना करे और ये मन्त्र पढ़े।

क्षमाधर महापुण्य सर्वदेवनमस्कृत॥ विष्ण्वादयोऽपि यं देवाः सेवन्ते श्रद्धया सह ॥ १ ॥ तं भवन्तमहं पद्भ्यामाक्रमामि नगोत्तम ॥ क्षमस्व पादघातं मे दयया पापचेतसः ॥ २ ॥ त्वन्मूर्द्धनि कृतावासं शङ्करं दर्शयस्व मे ॥

इन मन्त्रों से प्रार्थना कर धीरे धीरे गन्धमादन पर्वत पर जाकर समुद्र में स्नानकर गन्धमादन में पिण्डदान करे। सरसों के तुल्य भी पितरों के निमित्त यदि पिण्ड दिया जाय तो एक युगपर्यन्त पितर तृप्त रहते हैं। जो शमीवृक्ष के पत्र

के तुल्य पिण्ड दे तो उसके पितर नरक से स्वर्ग को जायँ। जो पहिले ही स्वर्ग में हों तो मुक्ति पावें।

गन्धमादन के ऊपर, लोक में प्रसिद्ध पापविनाशन नाम तीर्थ है। जिसके स्मरण करने से ही मनुष्य जन्म-मरण से छूट जाता है। उस तीर्थ में जाकर भक्ति से स्नान करे तो मुक्ति पावे। इतनी कथा सुन शौनकआदि मुनीश्वरों ने पूछा, हे सूतजी! आप पापविनाशनतीर्थ का माहात्म्य विस्तार से वर्णन करें। व्यासजी के अनुग्रह से आप सर्वज्ञ हैं। मुनियों का यह वचन सुनकर सूतजी कहने लगे, हे मुनिवर्य! हिमालय पर्वत के ऊपर ब्रह्माजी के आश्रम के बीच जो कथा हुई, उसका हम वर्णन करते हैं। हिमालय पर्वत के ऊपर अति मनोहर एक आश्रम है जो अनेक वृक्ष, लता, गुल्म, मृग, पक्षी, हाथी आदि से भरा है। सिद्ध, चारण, व्रती, ऋषि, तपस्वी, ब्राह्मण, दीक्षित, ब्रह्मचारी, वेदपाठी, वानप्रस्थ, संन्यासी आदि से नित्य सेवित है।

बालखिल्य मरीचि आदि मुनि जिस आश्रम में निवास करते हैं।

एक समय बड़ा साहसी दृढ़मति नामक एक शूद्र उन ब्राह्मणों के समीप आया। वहाँ बड़े २ तेजस्वी और तपस्वी ब्राह्मणों को देखकर उसने साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। ब्राह्मणों ने उसका सत्कार किया। ब्राह्मणों को देखकर उसकी भी इच्छा तप करने की हुई। वह कुलपति (उन सब ऋषियों में मुख्य ऋषि) के समीप आकर प्रार्थना की, हे महाराज! मैं शूद्र हूँ और आपकी सेवा में रहकर तप करना चाहता हूँ। अब मैं आपकी शरण में प्राप्त हुआ हूँ, इसलिये आप मुझे भी यज्ञ की दीक्षा दीजिए। दृढ़मति का यह वचन सुनकर कुलपति ने कहा कि शूद्र को दीक्षा नहीं दी जा सकती। जो तेरी तप करने की इच्छा हो तो ब्राह्मणों की शुश्रूषा कर। शूद्र को कभी उपदेश न करना चाहिए। शूद्र को उपदेश देने से उपदेष्टा को बड़ा दोष होता है। शूद्र को कभी न पढ़ावे और शूद्र से याचना भी न करे।

शास्त्र, व्याकरण, काव्य, नाटक, अलंकार, पुराण, इतिहास आदि शूद्र को कभी न पढ़ावे। जो ब्राह्मण शूद्र को पढ़ावे, उसको चाण्डाल के तुल्य समझकर सब ब्राह्मण मिल कर अपने ग्राम से निकाल देवें और अक्षरयुक्त शूद्र का भी त्याग करें। इसलिये हे दृढ़मति ! तू श्रद्धा से ब्राह्मणों की सेवा कर। इसी में तेरा कल्याण है। मनु आदिकों ने ब्राह्मण की सेवा करना शूद्र का मुख्य कर्म कहा है, इसलिये तुझे अपने जाति-धर्म का त्याग न करना चाहिए।

मुनि का यह वचन सुनकर शूद्र चिन्तन करने लगा। अब मुझे क्या करना चाहिए। मेरी श्रद्धा तो तप करने में पहिले से ही है, इसलिये अब वही उपाय करना चाहिए जिससे मुझे ज्ञान प्राप्त हो। मन में यह ठान कर उस आश्रम से दूर जाकर उसने एक झोपड़ी बनाई। उसमें एक देवमन्दिर बनाया और एक तालाब खोद-कर उसके तट पर पुष्पवाटिका लगाई। इस भाँति आश्रम बनाकर श्रद्धा से तप करने लगा। वह

अभिषेक, उपवास, बलि, हवन, देवपूजन आदि नित्य करता, फलाहार करता, जितेन्द्रिय रहता और पुष्प, पत्र, फल, मूल आदि से नित्य अतिथियों का पूजन करता। इस प्रकार तप करते २ बहुत काल व्यतीत हुआ। एक बार एक बड़े तपस्वी, गर्गकुल में उत्पन्न, सुमति नामक मुनि उसके आश्रम में आये। दृढ़मति ने भी मुनि का स्वागत कर भली भाँति उनका पूजन किया। फल मूल आदि भोजन कराकर अनेक प्रकार की प्रख्याति-कथा कहकर मुनि को प्रसन्न किया। मुनि भी सन्तुष्ट होकर दृढ़मति को आशीर्वाद देते हुए अपने आश्रम को गये। उस दिन से सुमति मुनि प्रतिदिन दृढ़मति के आश्रम में आने लगे। दृढ़-मति भी उनका बहुत सत्कार और सेवा करता। इस भाँति उस शूद्र के साथ सुमति का बहुत स्नेह हो गया। जो शूद्र कहता, उसको मुनि भी अङ्गीकार करते।

एक दिन दृढ़मति ने सुमति मुनि से कहा कि आप मुझे हव्यकव्य-विधान के सब मन्त्र उपदेश

करें, जिससे मैं देवता और पितरों को सन्तुष्ट करूँ । महालयश्राद्ध, अष्टकाश्राद्ध आदि का विधान और भी जो वैदिक कृत्य हो। वह सब आप मुझे सिखावें । दृढ़मति का यह वचन सुनकर सुमति मुनि ने सब मन्त्र और विधान उसको सिखाये और आप उससे श्राद्ध करवाया। सुमति मुनि शूद्र से बिदा होकर प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रम को गये। दृढ़मति से नित्य मिलते। वह भी उनकी सेवा करता। सुमति को शूद्र का संसर्ग देख और मुनियों ने त्याग दिया। अपना आयुष्य भोगकर सुमति मुनि मृत्युवश हुए। तब उनको यमराज के दूतों ने ले जाकर नरक में डाल दिया। करोड़ों कल्प नरक में पड़े रहे, पीछे स्थावर योनि अर्थात् वृक्ष आदि हुए। फिर क्रम से गर्दभ, ग्रामशूकर, श्वान, काक, चाण्डाल, शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय आदि योनियों में जन्म लेकर अनन्तर ब्राह्मण के घर में जन्म पाया। पिता ने उस बालक का आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत किया और सब वैदिक आचार सिखाया।

एक दिन वह बालक वन में गया था। वहाँ उसको ब्रह्मराक्षस का आवेश हो गया। वहाँ से रोता, हँसता, विलाप करता, गाता, गिरता, भ्रमता और हाहाशब्द करता घर में आया और सब वैदिक कर्म उसने छोड़ दिया। पिता भी पुत्र की यह दशा देखकर अति दुःखी हुआ और उसको संग लेकर अगस्त्य मुनि की शरण में गया। वहाँ जाकर अगस्त्यजी को प्रणाम कर ब्राह्मण ने प्रार्थना की, हे महाराज ! मेरे इस पुत्र में ब्रह्मराक्षस का आवेश हो गया है, इसलिये क्षणमात्र भी इसको सुख नहीं। पितरों का ऋण निवृत्त करने के लिये मेरे कोई दूसरा पुत्र नहीं। अब आप कृपा कर कोई उपाय बतावें। आपके समान तीनों लोकों में कोई तपस्वी नहीं और सब ऋषि आपको शिवभक्तों में मुख्य गिनते हैं। आपके विना कोई इसकी रक्षा करनेवाला नहीं, इसलिये आप इस अनाथ पर और मुझ पर अनुग्रह करें। महात्मा पुरुष दयालु होते हैं। सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! ब्राह्मण का यह वचन सुनकर

अगस्त्यजी ने ध्यान किया और बहुत काल तक ध्यान करके बोले, हे ब्राह्मण! कई जन्म पाहिले यह तेरा पुत्र सुमति नामक ब्राह्मण था। इसने शूद्र को सब वैदिक कर्म उपदेश किये। उस पाप के फल से करोड़ों वर्ष तक नरकवास भोग-कर, स्थावर आदि अनेक दुष्ट योनियों में जन्म लेता हुआ अब तुम्हारा पुत्र हुआ। अब भी पूर्व जन्म के पाप से यमराज के भेजे हुए ब्रह्म-राक्षस ने इसको आ घेरा। अब हम इसकी निवृत्ति का उपाय कहते हैं, सावधान होकर श्रवण करो।

दक्षिण समुद्र में देवताओं से सेवित सेतुरूप से स्थित, गन्धमादन नाम पर्वत है। उसके ऊपर पापविनाशन नाम तीर्थ है। उस तीर्थ में स्नान करने से भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस और बड़े २ रोग नष्ट होते हैं। हे ब्राह्मण! तू अपने पुत्र को वहाँ स्नान करा। प्रति दिन स्नान कराने से ब्रह्मराक्षस निवृत्त हो जायगा। इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है। इसलिये तुम विलम्ब मत करो, शीघ्र ही जाकर इस पुत्र

को स्नान कराओ। अगस्त्यजी का यह वचन सुन, उनको प्रणाम कर वह गन्धमादन पर्वत को चला। वहाँ कुछ दिनों में पहुँचकर अपने पुत्र को पापविनाशन तीर्थ में तीन दिन संकल्प-पूर्वक स्नान कराया और ब्राह्मण ने आप भी स्नान किया। स्नान करते ही वह ब्राह्मणपुत्र आरोग्य और दिव्य रूप से युक्त हो गया। बहुत काल तक संसारसुख भोग कर अन्त में मुक्ति को प्राप्त हुआ। ब्राह्मण भी तीर्थस्नान के फल से अपने आयुष्य के अन्त में मुक्त हुआ। जिस शूद्र को वैदिक कर्म का सुमति ने उपदेश किया था, वह भी बहुत काल तक नरक भोग कर अनेक बुरे जन्म भोगता गन्धमादन पर्वत में गीध हुआ।

एक दिन वह गीध भी पापनाशन तीर्थ में जल पीने आया। वहाँ उसने जल पिया और देह पर भी जल के छींटे लगाये। उस जल के स्पर्श होते ही दिव्यदेह पुरुष हो गया। दिव्य वस्त्र, भूषण, माला आदि से भूषित हो उत्तम विमान में बैठ, सुन्दरी स्त्रियों से सेवित, छत्र,

चामर आदि से शोभित हो, स्वर्ग को गया। हे मुनिवर्य! पापविनाशन तीर्थ का ऐसा प्रभाव है, स्वर्ग, मोक्ष, पुण्य आदि सब पदार्थ मिलते हैं और पापों का नाश होता है। उस तीर्थ में स्नान करने से कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं। ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देवता सदा उसका सेवन करते हैं। पापों का नाश करने से उस तीर्थ का नाम पापनाशन पड़ा। कल्याण की इच्छावाले पुरुष वहाँ अवश्य ही स्नान करें। हे मुनिवर्य! यह पापविनाशन तीर्थ का परम गुप्त माहात्म्य संक्षेप से कहा गया है। जिस तीर्थ में स्नान करने से अति दुराचारी शूद्र और ब्राह्मण भी मुक्त हुए, उस की महिमा कहाँ तक वर्णन करें।

दशवाँ अध्याय समाप्त।

ग्यारहवाँ अध्याय।

सीतासरोवर का माहात्म्य और कपालाभरणनामक राक्षसराज की कथा।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिगण! पापनाशन तीर्थ में स्नान कर फिर, सीतासरोवर में जाना

चाहिए। संसार में गङ्गा आदि जितने तीर्थ हैं, सब सीतासरोवर में निवास करते हैं। काशी आदि क्षेत्र भी अपने २ पाप से निवृत्त होने के लिये सदा उस तीर्थ का सेवन करते रहते हैं। सब जीवों के पातक हरने के लिये शिवजी भी वहां निवास करते हैं। इसी तीर्थ में स्नान करने से इन्द्र को ब्रह्महत्या ने छोड़ा। सूतजी का यह वचन सुन कर मुनियों ने पूछा कि इन्द्र ने क्यों कर ब्रह्महत्या की और उस तीर्थ में स्नान किस भाँति किया। यह आप वर्णन करें। तब सूतजी कहने लगे, हे मुनिवर्य! पूर्व काल में कपालाभरण नामक एक बड़ा पराक्रमी राक्षस हुआ। वह ब्रह्माजी के वर से सब देवताओं से अवध्य था अथात् देवता उसको नहीं मार सकते थे। उस राक्षस का मन्त्री शवभक्ष नामक था। वैजयन्तनगर उसकी राजधानी थी और सौ अक्षौहिणी सेना उस राक्षस की थी। अपने नगर में आनन्द से कपालाभरण निवास करता था।

एक दिन कपालाभरण ने अपने मन्त्री शव-

भक्ष को बुलाकर कहा, हे प्रधान! हमारी इच्छा है कि इन्द्र को जीतकर स्वर्ग में अपनी सेनासमेत निवास करें। अपने प्रभु का यह वचन सुनकर मन्त्री ने भी कहा कि बहुत उत्तम बात है। तब कपालाभरण दुर्मेधा नामक अपने पुत्र को राज्य देकर बहुत सी सेना लेकर अमरावती नगरी को जीतने चला। समुद्रों को सुखाता, पर्वतों को चूर्ण करता, घोड़े, हाथी, रथ, पयादों के शब्द से दिग्गजों को भी बधिर करता देवताओं के साथ युद्ध करने के लिये अमरावती के समीप जा पहुँचा। देवता भी सेना का कलकल सुन नगर के बाहर निकले और राक्षसों के साथ युद्ध होने लगा। ऐसा युद्ध हुआ कि न किसी ने पहिले देखा था और न सुना था। देवता राक्षसों को मारने लगे और राक्षस देवताओं का परस्पर द्वन्द्व युद्ध होने लगा। कपालभरण इन्द्र के साथ, शवभक्ष यमराज के साथ, कौशिक वरुण के साथ और रुधिराक्ष कुबेर के साथ युद्ध करने लगा। मांसप्रिय, मद्यसेवी, क्रूरदृष्टि और भयावह ये

चार कपालाभरण के छोटे भाई अश्विनीकुमार, वायु और अग्नि के साथ युद्ध करने लगे। यमराज ने एक दण्ड ऐसा मारा कि शवभक्ष के प्राण मुक्त हुए और उसके साथ तीस अक्षौहिणी सेना थी, वह भी यमराज ने मार डाली। वरुण ने भाले से कौशिक का शिर काट लिया। रुधिराक्ष को कुबेर ने मार गिराया। कपालाभरण के चारों भाई अश्विनीकुमार, वायु, अग्नि ने मारे और इन्द्र ने कपालाभरण की सौ अक्षौहिणी सेना का क्षणमात्र में संहार किया। कपालाभरण अपनी सेना को नष्ट हुई देख, क्रोधकर इन्द्र की ओर दौड़ा और इन्द्र से कहा कि, खड़ा रह, इतना कह पाँच बाण इन्द्र के मस्तक में मारे। परन्तु उन बाणों को इन्द्र ने काट दिया। तब इन्द्र के ऊपर कपालाभरण ने त्रिशूल फेंका, उसको इन्द्र ने अपनी बर्छी से काट दिया। तब क्रोधकर सौ हाथ लम्बी और पाँच हज़ार मन भारी अति भयंकर लोह की गदा उठाकर कपालाभरण ने इन्द्र की छाती में मारी। उसके लगते

ही इन्द्र मूर्च्छित हो गए। तब बृहस्पति ने मृत-संजीविनी विद्या जपकर इन्द्र को चैतन्य किया। तब इन्द्र ऐरावत हस्ती पर चढ़कर फिर कपालाभरण के सम्मुख आए और उसके ऊपर वज्र का प्रहार किया। वह भी वज्र लगते ही रथ-सहित चूर्ण हो गया। उस राक्षस के मरते ही सब जगत् में आनन्द हुआ, परन्तु वहाँ से ही उत्पन्न होकर एक घोर ब्रह्महत्या इन्द्र के पीछे लगी।

इतनी कथा सुनकर मुनिवरों ने पूछा, हे सूतजी! वह राक्षस ब्राह्मण तो था ही नहीं फिर उसके मारने से इन्द्र को हत्या क्यों लगी? तब सूतजी कहने लगे कि हे मुनिगण! अतिगुप्त बात का हम वर्णन करते हैं, आप सावधान हो श्रवण करें। पूर्व काल में विन्ध्याचल पर्वत के बीच में त्रिविक्रम नामक एक राक्षस रहता था। उसकी परम सुन्दरी और सब उत्तम लक्षणों से युक्त सुशीला नाम भार्या थी। एक दिन सुशीला वन में विचरती थी। वहाँ ही शुचि नामक एक मुनि तप करते थे। उन्होंने सुशीला को देखा,

देखते ही काम के वश हुए और कहने लगे, हे सुन्दरि! तू किसकी भार्या है और इस भयंकर वन में अकेली क्यों आई है? तू मुझे थकी सी देख पड़ती है, इसलिये आज तू मेरे उटज अर्थात् झोपड़ी में सुख से निवास कर। मुनि का यह वचन सुन, सुशीला ने कहा, हे महाराज! मैं त्रिविक्रम नाम राक्षस की भार्या हूँ और इस वन में पुष्प तोड़ने आई हूँ। मुझे पति ने यह भी आज्ञा दी है कि शुचि मुनि को प्रसन्न करके उनसे पुत्र उत्पन्न करावे। इसलिये आप कृपाकर मुझमें पुत्र उत्पन्न कीजिए। सुशीला का यह वचन सुनकर प्रसन्न हो मुनि बोले, हे सुशीले! तुझे देख मुझे भी बहुत प्रीति हुई, इसलिये मेरा मनोरथ तू शीघ्र ही पूरा कर। इतना कह मुनि और सुशीला विहार करने लगे। तीन दिन मुनि उसके समीप रहे, चौथे दिन उससे कहा, हे प्रिये! तेरे गर्भ में पुत्र है। वह चिरकाल राज्य करेगा, उसका नाम कपालाभरण रखना। वह हज़ार वर्ष तप करके ब्रह्माजी से वर पावेगा और इन्द्र

के विना किसी देवता का उसको भय न होगा। इतना कह मुनि तो काशी को गये और कुछ काल के अनन्तर सुशीला के पुत्र हुआ। वही कपालाभरण था, जिसको इन्द्र ने मारा। शुचि मुनि के वीर्य से कपालाभरण उत्पन्न हुआ, इसलिये उसके मरने से इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी। इन्द्र भी उस हत्या से पीड़ित सब लोकों में दौड़ते फिरे, परन्तु कहीं चैन नहीं मिला। तब ब्रह्मलोक में गये और ब्रह्माजी से प्रार्थना की, हे महाराज! यह ब्रह्महत्या मुझे बहुत दुःख देती है। इसका आप कोई उपाय बताइए। इन्द्र का यह वचन सुनकर ब्रह्माजी कहने लगे कि हे देवराज! गन्धमादन पर्वत में सीताकुण्ड है। वहाँ जाकर उस तीर्थ में स्नान करो, यज्ञ करो। तब तुमको यह हत्या छोड़ेगी। सीतासरोवर मुक्ति का देनेवाला है। उसमें स्नान करने से सब पातक, उपपातक, दुःख, दारिद्र्य आदि दूर होते हैं। ब्रह्माजी का यह वचन सुनकर इन्द्र सीतासरोवर पर पहुँचा। वहाँ स्नान कर यज्ञ

किया। तब ब्रह्महत्या निवृत्त हुई और सुखी होकर इन्द्र स्वर्ग का राज्य करने लगे।

इतनी कथा सुनकर सूतजी बोले, हे मुनिगण! ऐसा प्रभाव सीतासरोवर का है। रामचन्द्रजी का सन्देह निवृत्त करने के लिये सीता ने अग्नि में प्रवेश किया और अग्नि से निकल अपने नाम का यह तीर्थ बनाया। सीताजी ने उसमें स्नान किया, इसी से उसका नाम सीतासरोवर हुआ। उस तीर्थ में जो मनुष्य स्नान करे, उसके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं। उस तीर्थ के जल से आचमन कर अनेक प्रकार के दान देवे। बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ करे, तो अवश्य ही मुक्ति पावे। हे मुनिगण! सीतासरोवर का यह प्रभाव हमने वर्णन किया। इसको जो पढ़े अथवा सुने, वह उत्तम भोग भोगकर अन्त समय में सद्गति पाता है।

ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।

बारहवाँ अध्याय।

मङ्गलतीर्थ का माहात्म्य और मनोजव राजा का इतिहास।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिगण! सीताकुण्ड में

स्नान कर मङ्गल तीर्थ को जाना चाहिए। उस तीर्थ में लक्ष्मी निवास करती है। इन्द्रादि देवता अलक्ष्मी (दरिद्रता) के नाश के लिये नित्य उस तीर्थ में स्नान करते हैं। हे मुनिवर्य ! हम एक इतिहास कहते हैं, उसको आप प्रीति से श्रवण करो। पूर्व काल में चन्द्रवंश के बीच मनोजव नाम एक राजा था। वह राजा सदा वेद पढ़ता, यज्ञ करता, ब्राह्मण भोजन कराता, वेद के अर्थ का चिन्तन करता, नीति-शास्त्र का विचार करता और सब शत्रुओं को जीत कर धर्म से प्रजा की रक्षा करता था। इस प्रकार धर्म-राज्य करते २ राजा के चित्त में अहंकार उत्पन्न हुआ।

हे मुनिवर ! जहाँ अहंकार होता है, वहां काम, क्रोध, लोभ, मद, हिंसा, असूया आदि सब दोष रहते हैं और इन सबके होने से पुरुष सम्पत्ति और सन्तान-सहित नष्ट होजाता है। राजा के चित्त में अहंकार उत्पन्न होते ही ईर्ष्या और लोभ भी उत्पन्न हुए। राजा ने विचार किया, ये ब्राह्मण कुछ कर नहीं देते, इनसे भी

दण्ड लेना चाहिये। यह मन में निश्चय कर ब्राह्मणों के धन धान्य हरने लगा। शिव, विष्णु आदि के मन्दिरों में जो धन था वह सब ले लिया। ब्राह्मणों की और देवालयों की भूमि छीन ली। इस प्रकार अन्याय करने पर उस राजा के नगर को एक समय रण देश के राजा गोलभ ने अपनी चतुरङ्गिणी सेना से आ घेरा। उसके साथ परम अहंकारी मनोजव ने ६ महीने पर्यन्त युद्ध किया, परन्तु अन्त में हारकर भागा और राज्य छोड़कर अपने पुत्र तथा स्त्रियों को साथ ले वन को गया। इसभाँति मनोजव को निकालकर गोलभ राज्य करने लगा। मनोजव भी भूखा-प्यासा बड़े गह्वर वन में जा पहुँचा। वहाँ सिंह, व्याघ्र आदि जीव गर्जते थे, हाथी चिंघाड़ते थे, महिष, वराह आदि दुष्ट जीव चारों ओर फिरते थे। उस वन में मनोजव राजा के छोटे-से पुत्र ने कहा, हे पितः ! मुझे भोजन दो भूख लगी है। यही बात अपनी माता से भी कही। पुत्र का यह वचन सुनकर राजा रानी बहुत दुःखी हुए।

राजा ने अपनी सुमित्रा नाम रानी से कहा, हे सुमित्रे! भूख से मेरे प्राण जाते हैं, प्यास से कण्ठ सूखता है और यह बालक जो भोजन न पावेगा, तो मर ही जायगा। मुझ-से मन्दभाग्य को विधाता ने क्यों उत्पन्न किया? कौन मुझे इस विपत्ति से बचावेगा। शिव, विष्णु, सूर्य, अग्नि आदि देवताओं का मैंने पूजन नहीं किया, देव, ब्राह्मणों की जीविका और धन मैंने हरा। इन सब पापों से ही मैं राज्य से भ्रष्ट होकर वन में निकला। इतने पर भी क्षुधा-तृषा से कुटुम्ब व्याकुल हो रहा है। अब मैं इस बालक को अन्न कहां से लाकर दूं। शिव आदि देवताओं का मैंने पूजन नहीं किया, न हवन किया, न तीर्थयात्रा की, माता-पिता का कभी पार्वण अथवा एकोद्दिष्ट श्राद्ध नहीं किया और कभी बहुत से ब्राह्मणों को भोजन नहीं कराया। इन पापों से मुझे यह घोर दुःख प्राप्त हुआ। चैत्रमास के चित्रा नक्षत्र में चित्रगुप्त की प्रसन्नता के लिये अनेक प्रकार के पाक, केला, कटहर आदि मीठे फल, छतुरी, दण्ड, खड़ाऊं,

जूता, ताम्बूल, पुष्प, चन्दन आदि लेपन कभी ब्राह्मणों को न दिये। उसी पाप से यह दुःख मुझ पर पड़ा। मैंने मार्ग में पीपल, बड़, आम्र, इमली, नीम, कैथा, आमला, नारिकेल आदि कोई वृक्ष भी नहीं लगवाये जिनकी छाया में कोई पथिक बैठे। उसी पाप से यह दुःख मुझे मिला। शिवालय आदि में मार्जन नहीं किया, न कुवाँ, बावली, तालाब आदि खुदवाये, न तुलसी अथवा पुष्पवाटिका लगाई, न कोई देवालय बनवाया, उसी पाप का यह फल है। महालय पक्ष में मैंने कभी पितरों के निमित्त पार्वणश्राद्ध, अष्टकाश्राद्ध नित्यश्राद्ध, और नैमित्तिकश्राद्ध न किये इसीसे यह क्लेश भोगता हूं। बहुत दक्षिणा-वाले कभी यज्ञ नहीं किये, एकादशी आदि व्रत नहीं किये, धनुर्मास में शिव, विष्णु आदि देव-ताओं का प्रभात ही पूजन कर नैवेद्य नहीं लगाया, उसी पाप से आज मैं वन में भटकता हूं। शिव, विष्णु आदि नामों का मैंने कभी उच्चारण नहीं किया, जाबालप्रोक्त मन्त्रों से कभी विभूति

नहीं धारण की और रुद्राक्ष की माला भी नहीं धारण की, शिवपञ्चाक्षर मन्त्र का जप और रुद्राध्याय का पाठ मैंने कभी नहीं किया, इसी पाप से मेरे ऊपर यह विपत्ति पड़ी । पुरुषसूक्त और अष्टाक्षरमन्त्र मैंने नहीं जपा और भी कोई धर्मकृत्य नहीं किए । इसी से वन में दुःख भोगता फिरता हूं ।

इस भाँति विलाप करता हुआ राजा मूर्च्छित होकर भूमिपर गिरपड़ा। पति को गिरा देखकर सुमित्रा भी उसको आलिङ्गनकर विलाप करने लगी, हे चन्द्रवंश के भूषण महाराज ! मुझे इस वन में छोड़ कहां चले ? मैं अनाथ हूं, जो आपकी मृत्यु होगई हो तो मैं भी आपके साथ सती होजाऊं ? मैं विधवा होकर क्षणमात्र भी नहीं जी सकती । माता-पिता की यह दशा देखकर उनका पुत्र चन्द्रकान्त भी विलाप करनेलगा । इसी अवसर में रुद्राक्ष धारे, सब अङ्गों में विभूति लगाये, भस्म का त्रिपुण्ड् मस्तक में दिये, जटा धारे, श्वेत यज्ञोपवीत पहिने, मृगछाला ओढ़े

पराशर मुनि वहाँ आ निकले । सुमित्रा ने उनके चरणों में प्रणाम किया और अपने बालक पुत्र से भी प्रणाम करवाया । पराशर मुनि ने आशीर्वाद देकर कहा, हे भद्रे ! विलाप मत कर और मुझे यह बता कि तू कौन है ? यह भूमि पर कौन पड़ा है और यह बालक तेरा कौन लगता है ?

पराशर मुनि का यह वचन सुनकर सुमित्रा बोली, हे महाराज ! यह चन्द्रवंश का भूषण बड़ा पराक्रमी मनोजव नाम राजा है । मैं सुमित्रा नाम इसकी रानी हूं और यह बालक चन्द्रकान्त नाम हमारा पुत्र है । इस राजा को इसके शत्रु गोलभ ने जीतकर राज्य से निकाल दिया । तब राज्यभ्रष्ट हो हमने इस घोर वन में प्रवेश किया । यहाँ क्षुधा से पीड़ित इस बालक ने भोजन माँगा परन्तु भोजन नहीं था, यह दुःख देख राजा मूर्च्छित होगया । सुमित्रा का यह दीन वचन सुनकर शक्ति मुनि के पुत्र परमदयालु पराशर मुनि बोले, हे पतिव्रते ! कुछ भय मत कर ।

शीघ्र ही तुम्हारी यह विपत्ति दूर हो जायगी। तुम्हारा पति भी जी उठेगा। इतना कह पराशर-मुनि ने राजा को अपने हाथ से स्पर्श किया और शिवजी का ध्यानकर मृत्युञ्जय मन्त्र पढ़ा। राजा की मूर्च्छा खुल गई और उठकर मुनि को प्रणाम कर कहने लगा, हे महाराज! आपके चरणों की कृपा से मेरी मूर्च्छा निवृत्त हुई और सब पाप भी कट गये। पापी पुरुषों को आपका दर्शन नहीं हो सकता। मुझे शत्रुओं ने राज्य से निकाल दिया। आप मुझ पर कृपादृष्टि करें जिससे मेरे सब दुःख दूर हों। राजा का यह वचन सुन कर पराशर मुनि कहने लगे, हे राजन्! फिर राज्य-प्राप्ति के लिये एक उपाय हम कहते हैं, सावधान होकर सुनो। सेतुबन्ध के बीच गन्धमादनपर्वत में मङ्गलतीर्थ है। उस तीर्थ में सदा रामचन्द्र और सीता सन्निहित रहते हैं। वहाँ स्नान करने से अलक्ष्मी (दरिद्रता) का नाश होता है, इस-लिये हे राजन्! तू अभी अपने पुत्र और रानी-समेत वहां जाकर भक्ति से स्नान कर और तीर्थ-

श्राद्ध आदि सब कर्म कर। उस तीर्थ के प्रभाव से तुझे फिर राज्य मिलेगा। अलक्ष्मी दूर होगी और शत्रुओं को जीतेगा। इसलिये तू शीघ्रही गन्धमादन को चल और तेरे कल्याण के अर्थ हम भी साथ चलेंगे।

इतना कह पराशर मुनि सकुटुम्ब राजा को साथ ले सेतुबन्ध को चले और वन, पर्वत आदि उल्लङ्घन करते, कुछ दिनों में मङ्गलतीर्थ के समीप जा पहुँचे। वहाँ जाकर संकल्प कर विधिपूर्वक पराशर मुनि ने तीर्थ में स्नान किया और राजा, रानी और उस बालक को भी स्नान कराया। राजा ने श्राद्ध किया, फिर तीन महीने तक नित्य स्नान करते रहे। तीन महीने के अनन्तर पराशर मुनि ने राजा को रामचन्द्रजी का एकाक्षर-मन्त्र उपदेश किया। राजा भी मन्त्र पाकर मुनि की बताई हुई विधि के अनुसार मङ्गलतीर्थ के तट पर बैठकर अनुष्ठान करने लगा। चालीस दिन म अनुष्ठान पूरा हुआ, तब उस तीर्थ से एक बड़ा दृढ़ धनुष् बाण रखने के दो तूणीर; "जिनमें

बाण कभी निबड़ें नहीं" सुवर्ण की मूठ की खड्ग, ढाल, गदा, मुशल, बड़ा शब्द करनेवाला शंख, सुवर्ण का कवच, घोड़े, सारथि और पताका-समेत बहुत उत्तम रथ, हार, केयूर, कंकण, मुकुट आदि भूषण सुवर्ण-कमलों की वैजयन्ती माला और हजारों दिव्य वस्त्र राजा के आगे निकल आये। उनको देखकर राजा ने पराशर मुनि से कहा, तब मुनि ने तीर्थ का जल लेकर राजा का अभिषेक किया। अभिषेक के अनन्तर राजा दिव्य भूषण-वस्त्र पहनकर कवच और मुकुट धारण कर सब शस्त्रों को बाँधकर रथ में बैठा।

उस समय राजा का तेज ऐसा था, जिस भाँति ग्रीष्म ऋतु में मध्याह्न के सूर्य का हो। पराशर मुनि ने राजा को सांग और सरहस्य ब्रह्मास्त्र का उपदेश किया और आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी जय हो। राजा भी मुनि की आज्ञा पाकर अपनी रानी और पुत्र को अपने रथ में बैठाकर मुनि को प्रणाम और प्रदक्षिणा कर विजय के लिये चला। अपने नगर के समीप

जाकर दिव्यशंख बजाया। शंखका घोरशब्द सुनते ही राजा गोलभ सेनासमेत युद्धके लिये निकला। तीनदिन राजा मनोजव और गोलभका युद्ध हुआ। चौथे दिन मनोजव ने ब्रह्मास्त्र चलाया जिससे सेना-समेत गोलभ राजा भस्म हुआ और मनोजव नगर में जाकर सिंहासन पर बैठा और धर्म-राज्य करने लगा। उसी दिन से ईर्ष्या और अहंकार को त्याग दिया। धर्म में तत्पर हो प्रजा का पालन करने लगा। हजार वर्ष तक राज्य कर अन्त में विरक्त होकर पुत्र को राज्य दे, आप तप करने के लिये गन्धमादन पर्वत में मङ्गल-तीर्थ पर गया। वहाँ जाकर हृदय में श्रीसदाशिव का ध्यान करता हुआ तप करने लगा। बहुत कालतक तप करके अन्त में देह त्याग तीर्थ के प्रभाव से राजा शिवलोक को गया। रानी सुमित्रा भी उसके शरीर के साथ सती होकर अपने पति के समीप शिवलोक में पहुँची।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! मङ्गलतीर्थ का यह प्रभाव है। मनोजव राजा जिस तीर्थ

के प्रभाव से शत्रुओं को जीतकर अन्त में शिवलोक को गया। इसलिये सबको इस तीर्थ में स्नान करना चाहिये। हे मुनिवर! यह तीर्थ भुक्ति और मुक्ति का देनेवाला है और पापों को दग्ध करने के लिये अग्नि है, इसलिये आपको भी इस तीर्थ का सेवन करना चाहिए।

बारहवाँ अध्याय समाप्त।

तेरहवाँ अध्याय।

एकान्तरामनाथ का और अमृतवापी का माहात्म्य और अगस्त्य मुनि के भ्राता की कथा।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! मङ्गलतीर्थ में स्नान कर, एकान्तरामनाथनामक क्षेत्रको जाना चाहिए। वहाँ हनुमान् आदि वानरों से सेवित, सीता-सहित श्रीरामचन्द्र लोकों के कल्याण के लिये सदा सन्निहित रहते हैं। उसी क्षेत्र में अमृतवापिका है। जिसमें स्नान करनेवाले मनुष्य शिवजी के अनुग्रह से अजर और अमर हो जाते हैं। उस वापी में स्नान करनेवालों को मोक्ष देने के लिये श्रीसदाशिव वहाँ सदा निवास करते हैं।

इतना सुन मुनिवरों ने पूछा, हे सूतजी! इस वापी का नाम अमृतवापी क्योंकर पड़ा और इसका क्या प्रभाव है? आप वर्णन करें। हे व्यासशिष्य, सूतजी! आपका वचनरूप अमृत पान करते करते हमको तृप्ति नहीं होती। मुनियों का यह वचन सुनकर सूतजी कहनेलगे, हे मुनिवर! इस अमृतवापी का प्रभाव और इसके नाम का कारण हम वर्णन करते हैं, आप श्रवण कीजिये। पूर्वकाल में सिद्ध, चारण, गन्धर्व आदि देवताओं से सेवित, सिंह, व्याघ्र, वराह, महिष, हाथी आदि जीवों से युक्त, तमाल, ताल, हिन्ताल, शाल, चम्पक, अशोक आदि वृक्षों से शोभित; हंस, चक्रवाक, कोकिल, दात्यूह आदिक पक्षियों के शब्दों से मनोहर; पद्म, कुमुद, नीलकमल आदि से भरे हुए सरोवरों से रमणीय हिमालयपर्वत में अपने आश्रम के बीच सत्यवादी, जितेन्द्रिय अगस्त्यमुनि का भाई तप करता

था। वह वनके फलफूलों से तीनकाल शिवपूजन करता। जो अतिथि आता, उसको कन्दमूल आदि भोजन से तृप्त करता। नित्य सन्ध्यावन्दन गायत्री आदि मन्त्रों का जप, अग्निहोत्र आदि कर्म करता। प्रभातही स्नानकर वेदपाठ करता। मध्याह्नमें अतिथि-पूजाकर पुराण बाँचता। नित्य पञ्चमहायज्ञ करता। प्रतिवर्ष पितरों का श्राद्ध करता और निरन्तर शिवजी का ध्यान करता। इस प्रकार उत्तम तप करते करते हजारवर्ष बीत गये परन्तु शिवजी के दर्शन न हुए। तब वह अगस्त्यमुनि का भ्राता पञ्चाग्नि के बीच, बाएँ पैरकी कनिष्ठा अंगुली के ऊपर खड़ा होकर सूर्य में दृष्टि लगाए, दोनों भुजाएँ ऊपर को उठाकर शिवजी का हृदय में ध्यान करता हुआ उग्र तप करने लगा। इस भाँति उसका अति कठिन तप देख कर शिवजी प्रसन्न हो प्रत्यक्ष हुए। मुनि भी वृष के ऊपर चढ़े श्रीसदाशिव को देख प्रणाम कर भक्ति से स्तुति करने लगे।

मुनिरुवाच ॥ नमस्ते पार्वतीनाथ नीलकण्ठ महेश्वर ॥

शिव रुद्र महादेव नमस्ते शम्भवे विभो ॥ १ ॥ श्रीकण्ठो-मापते शूलिन्भगनेत्रहराव्यय ॥ गङ्गाधर विरूपाक्ष नमस्ते रुद्रमन्यवे ॥ २ ॥ अन्धकारे कामशत्रो देवदेव जगत्पते ॥ स्वामिन् पशुपते शर्व नमस्ते शतधन्विने ॥ ३ ॥ दक्षयज्ञविनाशाय स्तायूनां पतये नमः ॥ निचेरवे नमस्तुभ्यं पुष्टानां पतये नमः ॥ ४ ॥ भूयो भूयो नमस्तुभ्यं महादेव कृपालय ॥ दुस्तराद्भवसिन्धोर्मां तारयस्व त्रिलोचन ॥ ५ ॥

यह स्तुति सुन प्रसन्न हो श्रीशिवजी बोले, हे मुने! तेरे तप से हम बहुत प्रसन्न हुए। इसलिये मुक्ति के अर्थ एक बहुत सुगम उपाय हम तुझको उपदेश करते हैं।

गन्धमादन पर्वत में मङ्गल तीर्थ के समीप एक तीर्थ है उसमें स्नान कर तो अवश्य ही मुक्ति पावेगा। इससे सीधा उपाय मोक्ष के लिये और नहीं है। उस तीर्थ का सम्पूर्ण प्रभाव हम भी वर्णन नहीं कर सकते। इस बात में तू कुछ सन्देह मत कर और जाकर उस तीर्थ में स्नान कर। स्नान करने से अवश्य ही मुक्ति पावेगा। इतना कह शिवजी अन्तर्धान हुए और मुनि भी शिवजी की आज्ञा पाकर गन्धमादन पर्वत में एकान्तरामनाथ नाम

क्षत्र में पहुँचे। उस तीर्थ को ढूँढ़ा और उसमें स्नान करने लगे। तीन वर्ष पर्यन्त नियमपूर्वक मुनि ने स्नान किया। चौथे वर्ष में समाधि करके प्राणायाम से अपने कपाल को भेदन कर मुनि ने प्राण त्यागे और तीर्थ के प्रभाव से मुक्ति पाई। अगस्त्य के भ्राता की वहाँ मुक्ति हुई, इसी से उस तीर्थ का नाम अमृतवापी हुआ (अमृत मोक्ष को कहते हैं)। इस तीर्थ में जो मनुष्य तीन वर्ष तक स्नान करें वे निःसन्देह मुक्ति पाते हैं।

इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले कि हे मुनिवर! अमृतवापी के नाम का कारण और प्रभाव हमने वर्णन किया। अब आप क्या श्रवण किया चाहते हैं, वह कहें। तब शौनक आदि मुनि बोले, हे सूतजी! उस क्षेत्र का नाम एकान्तरामनाथ क्यों हुआ, यह आप वर्णन करें। हमको श्रवण करने की बहुत इच्छा है। तब सूतजी कहने लगे कि हे मुनिगण! पूर्वकाल में लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण, हनुमान् आदि के साथ श्रीरामचन्द्र रावण के वध का और सीता

को लाने का विचार करते थे। सब वानर सेतु बाँधने में लग रहे थे, परन्तु समुद्र की तरङ्गों का ऐसा घोर शब्द होता था कि एक को दूसरे का वचन नहीं सुनाई देता था। तब रामचन्द्रजी ने क्रोधकर भृकुटी चढ़ाई और समुद्र को गर्जने से रोका और एकान्त में बैठकर रावण के वध का विचार अपने मन्त्रियों के साथ किया। उसी दिन से उस क्षेत्र का नाम एकान्तरामनाथ हुआ और उसी दिन से उस क्षेत्र के समीप समुद्र के जल में शब्द नहीं होता, एवं तरङ्गें नहीं उठतीं। जो पुरुष एकान्तरामनाथ-क्षेत्र में आकर अमृतवापी में स्नान करते हैं, वे अवश्य मुक्ति पाते हैं। अद्वैतज्ञान से शून्य, समाधि और वैराग्य से रहित, यज्ञ अनुष्ठान आदि से वर्जित भी पुरुष यदि अमृतवापी में स्नान करे, तो अवश्य ही मुक्ति पावे।

तेरहवाँ अध्याय समाप्त।

चौदहवाँ अध्याय।

ब्रह्मकुण्ड का माहात्म्य और ब्रह्मा विष्णु के परस्पर कलह होने की कथा।

सूतजी कहते हैं कि हे मुनिवर! अमृतवापी में स्नान कर एकान्त राघव के दर्शन करे, पीछे ब्रह्मकुण्ड में स्नान करने के लिये जाना चाहिए। गन्धमादन पर्वत के बीच ब्रह्महत्या आदि सब पाप और दारिद्र्य का नाश करनेवाला ब्रह्मकुण्ड तीर्थ है। जो मनुष्य ब्रह्मकुण्ड में स्नान करें, उनको और तीर्थ, यज्ञ, तप, दान आदि से कुछ प्रयोजन नहीं है। ब्रह्मकुण्ड में स्नान करनेवाले मनुष्य वैकुण्ठ को जाते हैं। ब्रह्मकुण्ड से निकली हुई विभूति को जो धारण करता है, उसके समीप ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी सदा निवास करते हैं। उस विभूतिको जो मस्तक में त्रिपुण्ड्र धारे, मुक्ति उसके हाथ पर ही धरी है। जो उस विभूति से सारे देह में उद्धूलन करे, उसके पुण्य का शिवजी भी नहीं वर्णन कर सकते। उस विभूति को जो नहीं धारण करते हैं, वे रौरव नरक में प्रलय

पर्यन्त पड़े रहते हैं। जो उस भस्म से उद्धूलन अथवा त्रिपुण्ड्र नहीं करते, वे कभी सुखी नहीं होते। जो उस विभूति की निन्दा करे, उसको वर्णसंकर जानना चाहिए। जो ब्रह्मकुण्ड की विभूति को और विभूति के तुल्य कहे अथवा उस विभूति को छोड़कर और विभूति को धारे, उसकी उत्पत्ति में भी संकर जानिये। जो मनुष्य ब्रह्मकुण्ड का भस्म ब्राह्मण को देवे, उस को सम्पूर्ण भूमिदान का फल होता है। इस बात में कभी सन्देह मत करना। हम तीन बार शपथ खाकर कहते हैं और भुजा उठाकर सत्य कहते हैं।

हे मुनिवर! ब्रह्मकुण्ड के भस्म को अवश्य धारण करो। पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने शिवजी का शाप निवृत्त करने के लिये गन्धमादनपर्वत में बड़ी दक्षिणावाले अनेक यज्ञ किये। तब शिवजी के शाप से निवृत्त हुये। उन यज्ञों का यह भस्म है। जो पुरुष इस तीर्थ में स्नान करते हैं वे अवश्य शिवलोक में निवास करते हैं। इतनी कथा सुनकर शौनक आदि ऋषियों ने पूछा, हे सूतजी! चौ-

दह भुवन रचनेवाले ब्रह्माजी को शिवजी ने किस अपराध पर शाप दिया और क्या शाप दिया। आप कृपाकर यह वर्णन करें। तब सूतजी कहने लगे, हे मुनिवर! एक समय ब्रह्माजी और विष्णुजी का परस्पर विवाद हुआ। ब्रह्माजी कहते थे, हम जगत् के कर्ता हैं, इसलिये हमहीं सबसे बड़े हैं और विष्णुजी कहते थे कि हम सबसे बड़े हैं। इसी अवसर में उनका अहंकार हरने के लिये बीच में एक लिङ्ग प्रकट हुआ। उस ज्योतिर्मय लिङ्ग को देखकर ब्रह्माजी और विष्णुजी चकित हो परस्पर कहने लगे, यह अनादि, अनन्त, करोड़ों सूर्यों के तुल्य प्रकाशमान, लिङ्ग देख पड़ता है। हम दोनों में से जो इसके आदि अन्त का निश्चय करे, वही सबसे बड़ा और लोक कर्ता गिना जावे।

ब्रह्माजी ने कहा, हे विष्णुजी! हम लिङ्ग का अग्रभाग देखने के लिये ऊपर को जाते हैं और आप इसके अन्त का निश्चय करने के लिये नीचे को जावो। यह निश्चय कर ब्रह्माजी हंस

का रूप धर कर ऊपर को उड़े और वाराहरूप धारण कर विष्णुजी नीचे को चले। कई हज़ार वर्ष तक विष्णुभगवान् नीचे को गये, परन्तु लिङ्ग का अन्त न पाया। तब लौट आये और सब देवताओं से कहा, कि हम को इस लिङ्ग का कहीं अन्त न मिला। इतने में ब्रह्माजी भी आ पहुँचे और सब देवताओं के आगे असत्य बोले कि हम इस लिङ्ग का अग्रभाग देख आये हैं। ब्रह्माजी का यह वचन सुनकर, हँसतेहुये शिवजी ने कहा, हे ब्रह्माजी! तुमने हमारे सम्मुख झूठ कहा है, इसलिये जगत् में कोई तुम्हारी पूजा न करेगा। विष्णुजी से कहा, हे विष्णुजी! आपने कपट नहीं किया, सत्य कह दिया, इसलिये हमारे तुल्य आपका भी सब जगत् में पूजन होगा।

ब्रह्माजी शिवजी का वचन सुनकर बहुत दुःखी हो बोले, हे नाथ! हमसे अपराध बन पड़ा, आप क्षमा करें। जगत्प्रभु को अपने सेवकों का अपराध क्षमा करना चाहिये। तब शिवजी ने

कहा, हे ब्रह्माजी ! हमारा वचन मिथ्या तो नहीं हो सकता, परन्तु तुम गन्धमादनपर्वत पर जाकर यज्ञ करो । जिस से हमारे शाप का दोष तुम से निवृत्त हो जायगा और श्रौत, स्मार्त कर्मों में तुम्हारी पूजा भी होगी । प्रतिमा में तुम्हारा पूजन न होगा । इतना कह शिवजी तो अन्तर्धान होगये और ब्रह्माजी गन्धमादनपर्वत को गये । वहां जाकर इन्द्रादि देवताओं के सम्मुख शिवजी की प्रसन्नता के लिये अट्ठासी हजार वर्ष पर्यन्त ब्रह्माजी ने निरन्तर पौण्डरीक आदि यज्ञ किये । तब शिवजी प्रत्यक्ष हुए और प्रसन्न हो ब्रह्माजी को वर दिया, हे ब्रह्माजी ! तुम्हारा दोष निवृत्त हुआ । अब श्रौत, स्मार्त कर्मों में तुम्हारा पूजन हुआ करेगा और तुम्हारा यह यज्ञ करने का स्थान जगत् में ब्रह्मकुण्ड के नाम से प्रसिद्ध होगा । जो इस ब्रह्म कुण्ड में एक बार भी स्नान करेगा उसके लिये मुक्ति का द्वार खुल जायगा । जो इस कुण्ड के भस्म को धारण करेगा, वह अवश्य ही मायारूप कपाट

खोलकर मुक्ति के द्वार में प्रवेश करेगा । जो इस भस्म को भक्ति से धारण करेगा, वह अपने माता-पिता का पुत्र न होगा । ब्रह्मकुण्ड के स्नान से करोड़ों ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्ण की चोरी, गुरु-स्त्री-गमन आदि महापातक क्षणमात्र में नष्ट हो जायँगे । महापातक करनेवालों के संसर्ग से जो पातक लगे होंगे, वे भी निवृत्त होंगे । इस भस्म के धारण करने से भूत, प्रेत, पिशाच आदि समीप में नहीं आवेंगे ।

इतना कह शिवजी अन्तर्धान हुये । उस दिन से ब्रह्मकुण्ड का प्रभाव जानकर मुनि, देवता, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर आदि निरन्तर वहां निवास करने लगे । ब्रह्माजी भी यज्ञों को समाप्त कर अपना मनोरथ सफलकर सत्यलोक को गये । उस दिन से और भी देवता, ऋषि आदि वहां यज्ञ करने लगे । सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर ! यज्ञ करने की इच्छा हो तो ब्रह्मकुण्ड पर ही करना चाहिये । सब देवता ऋषि आदि से सेवित सब पाप हरनेवाला, मोक्ष-

प्रद और सब मनोरथ सिद्ध करनेवाला ब्रह्मकुण्ड है ।

चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।

पन्द्रहवाँ अध्याय ।

हनुमत्कुण्ड का माहात्म्य और धर्मसख राजा की कथा ।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर ! ब्रह्मकुण्ड में स्नानकर मनुष्य हनुमत्कुण्ड को जावें । रावण को मारकर जब रामचन्द्रजी लौटे और गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे, तब अपने नाम से हनुमान्जी ने उत्तम तीर्थ बनाया । उस तीर्थ को साक्षात् रुद्र सेवन करते हैं । उस तीर्थ के तुल्य दूसरा तीर्थ न हुआ न होगा । जिसमें स्नान करने से शिवलोक की प्राप्ति होती है । जिस तीर्थ के बनने से सब नरक खाली होगये । उस तीर्थ के प्रभाव को शिवजी ही जानते हैं । धर्मसख नाम राजा ने भक्तिपूर्वक उस तीर्थ में स्नानकर, दीर्घायु और प्रतापी सौ पुत्र पाये ।

शौनक आदि ऋषियों ने पूछा, हे सूतजी ! धर्मसख राजा ने हनुमत्कुण्ड के प्रभाव से सौ

पुत्र किस प्रकार पाये । आप उसका चरित्र वर्णन करें । तब सूतजी कहने लगे, हे मुनिवर ! संक्षेप से हम धर्मसख का चरित्र वर्णन करते हैं, आप प्रीति से श्रवण करो । केकयवंश में बड़ा प्रतापी शत्रुओं को जीतनेवाला, प्रजा के पालन करने में तत्पर, धर्मसख नाम एक बड़ा धर्मात्मा राजा हुआ । उसके सौ रानियाँ थीं । परन्तु पुत्र एक में भी नहीं उत्पन्न हुआ । राजा भी पुत्र के लिये सदा यत्न किया करता । अश्वमेध आदि अनेक यज्ञ उसने किये । तुलापुरुष आदि महादान दिये । अभ्यागतों को सदा उत्तम २ भोजन देता, विधिपूर्वक श्राद्ध करता, सन्तान देनेवाले मन्त्रों का जप करता । इस भांति पुत्र के लिये अनेक प्रकार के धर्म, दान आदि करते २ राजा वृद्ध होगया । तब वृद्धावस्था में बड़ी रानी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ । उसका नाम सुचन्द्र रक्खा । राजा की सब रानी उस बालक को बड़े प्रेम से पालने लगीं । राजा, प्रजा, राजमाता, रानी, मन्त्री

आदि उस बालक को देख परम आनन्द को प्राप्त होते ।

एक दिन वह बालक पालने में झूलता था। उस समय उसके पैर में बीछू ने काटा । काटते ही वह राजकुमार चिल्लाया । उसके रोने से सब रानी रोदन करने लगीं और अन्तःपुर में कोलाहल मच गया । सभा में बैठे हुये राजा ने रोदन का शब्द सुन घबड़ा कर कञ्चुकी को भेजा। कञ्चुकी ने अन्तःपुर के द्वार पर जाकर दरवानों से पूछा कि भीतर सब स्त्री क्यों रोती हैं ? इसका कारण बतावो । इसीलिये मुझे महाराज ने यहां भेजा है । उसका यह वचन सुनकर दरवान भीतर गये और सब वृत्तान्त पूछकर कञ्चुकी से आ कहा। कञ्चुकी ने सभा में आकर राजा से कहा । राजा भी पुरोहित और मन्त्री समेत अन्तःपुर में गया । बीछू का मन्त्र जाननेवालों से उस बालक की चिकित्सा कराई गई । बालक अच्छा हुआ । राजा ने वैद्य और मन्त्रियों को बहुतसा धन दे विदा किया और सभा में आकर सब

ऋत्विक् और पुरोहितों को बुलाकर यह कहा कि एक पुत्र होना बड़े दुःख का कारण है । इससे तो पुत्र न होना ही अच्छा है हे ब्राह्मणो ! मैंने सन्तान के अर्थ सौ विवाह किये। अब वृद्धावस्था में एक पुत्र हुआ । अब हम सबके प्राण इसमें रहते हैं । जो कदाचित् यह बालक मरजाय, तो हमारी सब रानी और हम भी नाश को प्राप्त हों, इसलिये हे ब्राह्मणो ! ऐसा कोई उपाय बतावो । जिसमें मेरे बहुत पुत्र हों सौ रानियों में एक २ पुत्र हो ऐसा यत्न करो । तुम जो उपाय कठिन, सुगम, छोटा, बड़ा शास्त्र को देखकर बतावोगे, वह सब मैं करूंगा ।

राजा का यह वचन सुनकर सब ब्राह्मणों ने विचार कर कहा हे महाराज ! एक उपाय है, जिससे आपकी सब रानियों में पुत्र हों । दक्षिण समुद्र के बीच, सेतु के मध्य में, सब पाप हरनेवाला, देवता, ऋषि, गन्धर्व, सिद्ध, चारण आदि से सेवित, गन्धमादन नाम एक पर्वत है । उस पर्वत पर हनुमत्कुण्ड नाम एक तीर्थ

है। जिसमें स्नान करने से सब दुःख दारिद्र्य कट जाते हैं। नरक का भय नहीं रहता और स्वर्ग की प्राप्ति होती है। उस कुण्ड में जो स्त्री स्नान करे, उसके अवश्य ही पुत्र उत्पन्न होता है। इसलिये आप भी वहां जाकर हनुमत्कुण्ड के तीर पर पुत्रेष्टि करें। आपके सौ पुत्र अवश्य होंगे।

ब्राह्मणों का यह वचन सुनकर उन सबको साथ ले अपनी सब रानी और मन्त्रियों समेत राजा धर्मसख गन्धमादनपर्वत पर गया। वहां जाकर हनुमत्कुण्ड के तीर पर डेरा किया और नित्य स्नान करने लगा। जब चैत्रमास आया, तब यज्ञ का आरम्भ किया। ऋत्विक् और पुरोहित सब यज्ञ का काम करने लगे। जब यज्ञ समाप्त हुआ, तब हवन का शेष पुरोहित ने सब रानियों को खिलाया। राजा ने हनुमत्कुण्ड में यज्ञान्त स्नान किया और ऋत्विजों को बहुत से ग्राम और रत्न दक्षिणा में दिये। इस भांति यज्ञ कर राजा धर्मसख अपने परिवार समेत राजधानी को आया। दश महीने के अनन्तर सब

रानियों में एक २ पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने बड़े हर्ष से स्नान कर जातकर्म किया और गो, भूमि, तिल, सुवर्ण आदि ब्राह्मणों को दिये। बड़ी रानी में दो पुत्र हो गये। एक पहिले था, दूसरा सब रानियों के साथ हुआ। इस भांति एकसौ एक पुत्र राजा धर्मसख के वृद्धि को प्राप्त होने लगे। जब ये राज्यभार के योग्य हुये, तब उनको सब राज्य बांट अपनी रानियों को संग ले राजा गन्धमादन पर्वत में तप करने गया।

वहां जाकर हनुमत्कुण्ड के तीर पर तप करने लगा। बहुत कालतक तप और शिवजी का ध्यान करते २ राजा मृत्युवश हो कैलास को गया और सब रानी उसके साथ सती हुईं। सुचन्द्र नाम बड़े पुत्र ने उन सब के श्राद्ध आदि किये। इस भांति राजा तो सद्गति को प्राप्त हुआ और सुचन्द्र आदि राजपुत्र धर्म से राज्य करने लगे। हे मुनिवर! हनुमत्कुण्ड का प्रभाव और राजा धर्मसख का चारित्र हमने वर्णन किया। सब मनोरथ सिद्ध होने के लिये हनुमत्कुण्ड में स्नान

करना चाहिये । जो पुरुष इस अध्याय को भक्ति से पढ़ता वा सुनता है, वह इस लोक में सब सुख भोगकर परलोक में देवताओं के साथ विहार करता है ।

पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।

सोलहवाँ अध्याय ।

अगस्त्यतीर्थ का माहात्म्य और कक्षीवान् मुनि का अद्भुत इतिहास ।

सतजी कहते हैं, हे मुनिवर ! हनुमत्कुण्ड में स्नानकर अगस्त्य तीर्थ को जाना चाहिये । यह तीर्थ साक्षात् अगस्त्यजी ने बनाया है । पूर्वकाल में सुमेरुपर्वत और विन्ध्यपर्वत का परस्पर विवाद हुआ । तब विन्ध्याचल दिन २ बढ़ने लगा । इतना बढ़ा कि सब जीवों का श्वास रुक गया । तब व्याकुल हो सब देवता कैलास में गये और शिवजी के आगे सब बात कही । महादेवजी ने भी सप्तऋषियों को बुलाया । उनमें वशिष्ठआदि ऋषियों को तो हिमालय के घर

पार्वतीजी के सम्बन्ध के लिये भेजा और अगस्त्य जी को आज्ञा दी कि तुम जाकर विन्ध्याचल का निग्रह करो ।

अगस्त्यजी ने प्रार्थना की, हे महाराज ! हम आपके विवाहवेष का दर्शन किया चाहते हैं । श्रीमहादेवजी ने कहा कि तुम जाकर विन्ध्य का निग्रह करो । हम तुमको वेदारण्य में विवाह के ही वेष से दर्शन देंगे । यह आज्ञा पाते ही अगस्त्यजी विन्ध्याचल में गये और उस पर्वत को अपने पैर से दबाया । वह भूमि के समान हो गया । फिर अगस्त्यजी वहां से चले और दक्षिण दिशा में बिचरते हुये गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे । वहां अपने नाम से तीर्थ बनाया । जिसमें अगस्त्यजी अपनी भार्या लोपामुद्रा सहित आजतक भी निवास करते हैं ।

उस तीर्थ में स्नान करे और उसका जल पीवे तो फिर जन्म न हो । जगत् में उस तीर्थ के समान कोई तीर्थ नहीं । वह तीर्थ भुक्ति और मुक्ति का देनेवाला है । दीर्घतपामुनि के पुत्र

कक्षीवान् ने उस तीर्थ के प्रभाव से स्वनय की परमसुन्दरी कन्या से विवाह किया। हे मुनिवर! सब पापों के हरनेवाली कक्षीवान् की कथा हम कहते हैं, आप प्रीति से सुनो। दीर्घतपा नाम बड़ा तपस्वी एक मुनि था। उसके कक्षीवान् नाम पुत्र हुआ। दीर्घतपा ने अपने पुत्र का यज्ञोपवीत किया। यज्ञोपवीत के अनन्तर कक्षीवान् अपने गुरुकुल में जाकर उत्तङ्कमुनि से वेद पढ़ने लगा। चारों वेद, वेद के अङ्ग, छह शास्त्र, इतिहास, पुराण, उपनिषद् आदि सब साठ वर्ष में पढ़े और गुरु को दक्षिणा देकर कक्षीवान् जब अपने घर को चला, तब हाथ जोड़कर गुरु से प्रार्थना की, आप मुझे घर जाने की आज्ञा दीजिये और मुझपर कृपादृष्टि रखिये।

कक्षीवान् का यह वचन सुनकर उत्तङ्कमुनि बोले, हे पुत्र! सुख से घर को जा और विवाह कर। तेरे विवाह के लिये एक उपाय मैं कहता हूँ, वह तू सुन। दक्षिणसमुद्र के तीर पर अगस्त्य मुनि का बनाया सब मनोरथों को सिद्ध करने-

वाला एक तीर्थ है। वहाँ जाकर नियम से तीन वर्ष निवासकर, चौथावर्ष लगते ही उस तीर्थ से चारदन्तों से युक्त श्वेतवर्ण का एक बहुत बड़ा हाथी निकलेगा। उस हाथी पर चढ़कर राजा स्वनय की पुरी को जाना। राजा स्वनय भी तुझे इन्द्र की भांति चतुर्दन्त हाथी पर चढ़े देखकर अपनी कन्या के लिये निश्चित हो जायगा। उस राजा की कन्या ने यह प्रतिज्ञा कर रक्खी है कि श्वेतवर्ण के चतुर्दन्त हाथी पर चढ़कर जो यहां आवेगा, वही मेरा भर्त्ता होगा। अपनी कन्या की यह प्रतिज्ञा सुनकर राजा को बड़ी चिन्ता हुई।

इसी अवसर में नारदमुनि वहां आये। राजा ने उनका पूजन किया और सिंहासन पर बैठाकर यह प्रार्थना की, हे महाराज! मेरी कन्या ने यह प्रतिज्ञा की है कि श्वेतवर्ण चतुर्दन्त हाथी पर जो चढ़कर आवेगा, वही मेरा पति होगा। कन्या की यह प्रतिज्ञा सुनकर मुझे बड़ी चिन्ता हुई कि ऐसा हाथी इन्द्र विना दूसरे के पास

नहीं है और इस कन्या ने मूर्खपने से प्रतिज्ञा कर ली । जबतक इस कन्या का विवाह न होगा, मुझे चैन नहीं ।

राजा का यह वचन सुनकर नारदजी ने कहा, हे राजन्! चिन्ता मत करो । थोड़े ही काल में कक्षीवान् नाम ब्राह्मण ऐसे हाथी पर चढ़कर आवेगा । वही तुम्हारा जामाता होगा । इतना कह नारदमुनि देवलोक को गये । उस दिन से राजा स्वनय दिन रात अपनी कन्या के लिये वर की राह देखता है । इसलिये हे कक्षी-वान्! तू अगस्त्यतीर्थ को जा । वहां तेरा कल्याण होगा । उत्तङ्कमुनि की यह आज्ञा पाकर कक्षी-वान् गन्धमादनपर्वत को चला । कुछ दिन में अगस्त्यतीर्थ पर पहुँचा । एक दिन तीर्थोपवास किया । दूसरे दिन से नियमपूर्वक स्नान करने लगा । रात्रि को भी तीर्थ के तट पर ही सोता । इस प्रकार एक दिन न्यून तीन वर्ष पूरे हुये । उस दिन भी कक्षीवान् सायंसन्ध्या कर उसी तीर्थ के तट पर सोया । जब एक प्रहर रात्रि

शेष रही, तब अकस्मात् घोर शब्द हुआ और बड़ा कोलाहल मचा । उस शब्द को सुनकर कक्षीवान् की निद्रा खुलगई और उसने देखा कि मधुरा का राजा स्वनय अपनी सेना लिये मृगया खेलने के लिये वहां आया है । अनेक सिंह, व्याघ्र, शूकर, मृग, हाथी आदि जीवों को मारता हुआ राजा स्वनय अगस्त्य तीर्थ के तट पर आ पहुँचा और वहां डेरा किया । इतने में प्रभात हुआ ।

कक्षीवान् ने शौच आदि कर तीर्थ में स्नान किया और सन्ध्यावन्दन कर मन्त्र का जप करने लगा । इसी अवसर में कैलासपर्वत के तुल्य ऊँचा और श्वेतवर्ण चतुर्दन्त एक हाथी निकला और कक्षीवान् के समीप आया । कक्षी-वान् ने भी देखकर पहिचान लिया कि मेरे गुरु ने यही हाथी बताया था । कक्षीवान् स्नान कर, तीर्थ को प्रणाम कर उस हाथी पर चढ़ बैठा और राजा स्वनय के डेरे में पहुँचा । राजा ने भी हाथी से पहिचाना कि यही कक्षीवान् है । राजा उठकर कक्षीवान् के समीप आया और

पूछा, हे ब्राह्मण ! तू किसका पुत्र है? तेरा क्या नाम है ? और इस हाथी पर चढ़कर कहां जाता है ? राजा का यह वचन सुनकर कक्षीवान् बोला, मैं दीर्घतपा का पुत्र कक्षीवान् हूँ और इस चतुर्दन्त हाथी पर चढ़कर स्वनय राजा की कन्या से विवाह करने जाता हूँ ।

कक्षीवान् का यह वचन सुनकर राजा अति-मुदित हो कहने लगा, हे कक्षीवान् ! मैं ही राजा स्वनय हूँ । जिसकी कन्या से तू विवाह किया चाहता है । तेरे दर्शन से मैं कृतार्थ हूँ । हे बाल-ब्रह्मचारिन् ! तुझे स्वागत हो । तू मेरी कन्या को ग्रहण कर और उसके सहित गृहस्थधर्म का सेवन कर । राजा का यह वचन सुनकर कक्षी-वान् बोला, हे राजन् ! मेरा पिता दीर्घतपामुनि वेदारण्य में तप करता है । उसके समीप एक ब्राह्मण आप भेज देवें । जो यह वृत्तान्त मेरे पिता से कह आवे । राजा ने अपने पुरोहित सुदर्शन को दीर्घतपा के समीप में जाने की आज्ञा दी । सुदर्शन भी आज्ञा पाते ही बहुत से हाथी, घोड़े

और सेना साथ ले, राजा की भांति चला और कुछ दिन में वेदारण्य के बीच पहुँचा । वहां देखा कि पर्णशाला के भीतर समाधि लगाये दीर्घतपामुनि बैठे हैं । उनको प्रणाम किया । मुनि ने नेत्र खोले, तब राजपुरोहित ने पूछा, हे मुनीश्वर ! आप प्रसन्न हैं और आपका तप निर्विघ्न होता है ? यह कुशल-प्रश्न सुन, मुनि ने कहा, हे सुदर्शन ! ईश्वर के अनुग्रह से सब प्रकार कुशल है । तुम तो प्रसन्न हो ? आप तो राजा स्वनय के पुरोहित सुदर्शन हो । राजा को छोड़कर बहुत सी सेना साथ ले इस वन में किस निमित्त आये ? मुनि का यह वचन सुनकर नम्र हो सुदर्शन ने प्रार्थना की ।

आपकी कृपादृष्टि से मैं बहुत प्रसन्न हूं और राजा स्वनय ने आपके प्रति साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणामपूर्वक यह प्रार्थना की है कि आपका पुत्र कक्षीवान् गन्धमादनपर्वत में अगस्त्यतीर्थ पर रहता है । वह तप, धर्म, कुल और रूप से उत्तम है । वेद-शास्त्र भली भाँति जानता है ।

उसको मैं अपनी कन्या मनोरमा देना चाहता हूं। मृगया खेलने के लिये मैं गन्धमादनपर्वत पर आया और अब आपके पुत्र के समीप हूं। आपका पुत्र यह कहता है कि पिता की आज्ञा के विना मैं विवाह नहीं करता। इसलिये सुदर्शन को आपके पास भेजता हूं। आप कृपाकर अपने पुत्र को विवाह करने की आज्ञा दीजिये। इतना कह सुदर्शन बोला, हे महाराज! यह राजा का सन्देश है, सो आपसे कहा। अब आप जो आज्ञा देवें वह किया जाय।

सूतजी कहते हैं कि हे मुनिवर! इतना कह सुदर्शन चुप हो गया। तब दीर्घतपा मुनि बोले, हे सुदर्शन! राजा की इच्छा हमको अङ्गीकार है। हम भी गन्धमादनपर्वत को चलेंगे। इतना कह वेदारण्य के स्वामी को प्रणाम कर दीर्घतपा मुनि भी सुदर्शन के साथ चले और छह दिन में अगस्त्यतीर्थ पर आ पहुँचे। कक्षीवान् ने अपने पिता के चरणों में प्रणाम किया। पिता ने भी उसको अपनी गोदी में बैठा कर स्नेह से आलि-

ङ्गन किया और उसके मस्तक को सूंघकर पूछा, हे पुत्र! तूने सब वेद और शास्त्र किस भांति पढ़े? तब कक्षीवान् ने सब वृत्तान्त अपने पितासे कहा।

सोलहवाँ अध्याय समाप्त।

सत्रहवाँ अध्याय।

राजा स्वनय की कन्या से कक्षीवान् के विवाह का वर्णन।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर! कक्षीवान् ने अपने पिता से यह वृत्तान्त कहा कि जब मैं सब शास्त्र और वेद पढ़ चुका, तब मेरे गुरु उत्तङ्क ने मुझे यहां भेजा। मैं भी यहां आकर राजा स्वनय की कन्या से विवाह करने के अर्थ गुरु की आज्ञानुसार इस अगस्त्यतीर्थ का सेवन करने लगा। तीन वर्ष के अनन्तर राजा स्वनय यहां ही आ गया और उसने मुझसे यह कहा, हे ब्राह्मण! मैं अपनी कन्या तुझे देता हूं। उसी ने आपको बुलाने के लिये अपने पुरोहित सुदर्शन को भेजा। इतना कह, कक्षीवान् चुप रहा। सुदर्शन भी राजा के पास गया और कहा कि दीर्घतपा मुनि आ पहुँचे हैं।

राजा भी मुनि का आगमन सुनते ही अपने तम्बू के बाहर निकल आया और अगस्त्यतीर्थ पर जाकर दीर्घतपामुनि के चरणों में प्रणाम किया, दीर्घतपामुनि ने भी उठकर राजा को आशीर्वाद दिया। इसी अवसर में एक लाख शिष्य साथ लिये उत्तङ्कमुनि भी अगस्त्यतीर्थ में स्नान करने के लिये आये। उत्तङ्क को देखकर कक्षीवान् उठा और उनके चरणों में प्रणाम किया। उत्तङ्क ने अपने शिष्य कक्षीवान् को आशीर्वाद दिया। दीर्घतपा और उत्तङ्क भी परस्पर मिले और आसन पर बैठकर प्रीति से भाँति २ की कथा कहने लगे। राजा ने भी उत्तङ्कमुनि को प्रणाम किया। राजा स्वनय ने दीर्घतपामुनि से प्रार्थना की, हे महाराज! विवाह का निश्चय कीजिये। तब मुनि ने कहा कि कल ही बहुत उत्तम मुहूर्त्त है। इसलिये इस उत्तम क्षेत्र में कल ही विवाह होना चाहिये। तुम कन्या को और अपनी रानियों को यहाँ ही बुला लो।

मुनि का यह वचन सुनकर उसी समय राजा ने

सेवकों को सब अन्तःपुर को लाने की आज्ञा दी। वे भी आज्ञा पाते ही उत्तम घोड़ों पर चढ़ मधुरापुरी में पहुँचे और सब अन्तःपुर को लेकर शीघ्र ही गन्धमादनपर्वत में आ पहुँचे। दूसरे दिन दीर्घतपामुनि ने पुत्र के गोदान आदि संस्कार विधिपूर्वक किये। कक्षीवान् अपने पिता और गुरुसमेत चतुर्दन्त हाथी पर चढ़ा और विवाह के लिये तोरण वन्दनमाला आदि से भूषित राजा के द्वार पर गया और हज़ारों ब्राह्मण स्वस्तिवाचन पढ़ते हुये इसके साथ गये। कक्षीवान् को राजकन्या ने देखा और बहुत प्रसन्न हुई और कहा कि मेरी प्रतिज्ञा सत्य हुई। कक्षीवान् जब राजद्वार पर पहुँचा, तब राजा अपने मन्त्री और पुरोहित को साथ ले सम्मुख आया। भूषण-वस्त्रों से अलंकृत उत्तम ५ कन्याओं ने सोने-चांदी के पात्रों से कक्षीवान् का नीराजन अर्थात् आरती की। फिर सबके सब राजमन्दिर के भीतर गये।

राजा स्वनय ने उत्तङ्क और दीर्घतपा का

पाद्य अर्घ्य आदि से पूजन किया । सब लोग एक बहुत उत्तम मण्डप में बैठे । राजकन्या को सब भूषण-वस्त्रों से अलंकृत कर वहां लाये । राजकन्या ने आकर सब सभा के बीच अपने हाथ से चम्पे के पुष्पों की माला कक्षीवान् के गले में पहनाई । फिर उत्तङ्कमुनि ने वेदी पर अग्नि स्थापन कर उसके सब संस्कार किये और वधूवर से लाजा होम कराया । दोनों का पाणिग्रहण कराया । सब वैदिककर्म उत्तङ्कमुनि ने कराये । सब ब्राह्मणों ने वधू और वर को आशीर्वाद दिये । राजा स्वनय ने दीर्घतपा, उत्तङ्क आदि वर के पक्ष के और अपने पक्ष के सब मनुष्यों को भोजन कराया । तीन लाख ब्राह्मणों को षट्रस भोजन कराकर दक्षिणा, ताम्बूल आदि दे प्रसन्न किया । इस कारण विवाह हो जाने के अनन्तर उत्तङ्कमुनि अपने आश्रम को गये और सब ब्राह्मण अपने अपने देशों को गये ।

वह चतुर्दन्त हाथी अगस्त्यकुण्ड में प्रवेश कर-

गया । दीर्घतपामुनि ने अपने पुत्र और वधूसमेत अगस्त्यतीर्थ में स्नान किया और तीर्थ की बहुत प्रशंसा की । फिर दीर्घतपामुनि ने अपने आश्रम में जाने के लिये राजा से पूछा । राजा ने अपनी कन्या को पांच सौ ग्राम, एक लाख मुहरें, एक हज़ार दासी, दश हज़ार उत्तम २ पोशाकें, सौ पेटी भूषणों की, एक हज़ार रत्नों के हार और बहुत से हाथी, घोड़े, रथ आदि दे बिदा किया । दीर्घतपामुनि राजा से बिदा हो, सब सामग्री-समेत अपने पुत्र और पुत्रवधू को साथ ले वेदारण्य को चले । कुछ दिन में वहां पहुँचे और सुखपूर्वक सब निवास करने लगे । राजा भी अगस्त्यतीर्थ में स्नानकर अपनी सेना साथ ले अपनी राजधानी को गया ।

इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले, हे मुनिवर्य ! अगस्त्यतीर्थ के प्रभाव से कक्षीवान् का ऐसा उत्तम विवाह हुआ जो और का होना दुर्लभ है । हे मुनिवर ! यह इतिहास वेदसिद्ध है और धन, यश, आयुष्, सौभाग्य आदि का देनेवाला

है, इसलिये सबको पढ़ना चाहिये। इस इतिहास को जो पुरुष भक्तिसे पढ़ते अथवा श्रवण करते हैं, उनको कभी दारिद्र्य नहीं होता और बहुत काल तक संसार के सुख भोगकर उत्तम गति पाते हैं।

सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।

अठारहवाँ अध्याय ।

रामतीर्थ का माहात्म्य, सुतीक्ष्णमुनि की कथा और राजा युधिष्ठिर का इतिहास ।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर! अगस्त्यकुण्ड में स्नानकर सब पापों से निवृत्त होने के लिये रामकुण्ड को जाना चाहिए। रघुनाथसरोवर के तीर पर अल्प दक्षिणा का यज्ञ भी करे, तो वह भी सम्पूर्ण फल देता है। जप, होम, वेदपाठ आदि वहां करे, तो बहुत फल होता है। एक मुट्ठी अन्न भी वहां ब्राह्मण को दे, तो अनन्त फल होता है। हे मुनिवर! रामकुण्ड का एक इतिहास हम वर्णन करते हैं। जिसके सुनने से महापातक भी निवृत्त होते हैं।

अगस्त्यमुनि के शिष्य रामचन्द्रजी के परम

भक्त, सुतीक्ष्णमुनि ने उस सरोवर के तीर बहुत काल तक तप किया। नित्य उस सरोवर में स्नानकर रामषडक्षर महामन्त्र का पांच सहस्र जप करते और भिक्षा के अन्न का भोजन करते। इस भांति तप करते २ सुतीक्ष्णमुनि को बहुत काल बीता। एकदिन सीताराम का हृदयमें ध्यानकर भक्तिसे सुतीक्ष्णमुनि स्तुति करने लगे।

सुतीक्ष्ण उवाच ।

नमस्ते जानकीनाथ नमस्ते हनुमत्प्रिय ।
नमस्ते कौशिकमुनेर्यागरक्षणदीक्षित ॥ १ ॥
नमस्ते कौशलेयाय विश्वामित्रप्रियाय च ।
नमस्ते हरकोदण्डभञ्जकामरसेवित ॥ २ ॥
मारीचान्तक राजेन्द्र ताडकाप्राणनाशन ।
कबन्धारे हरे तुभ्यं नमो दशरथात्मज ॥ ३ ॥
जामदग्न्यजिते तुभ्यं खरविध्वंसिने नमः ।
नमः सुग्रीवनाथाय नमो बालिहराय ते ॥ ४ ॥
विभीषणभयक्लेशहारिणे मलहारिणे ।
अहल्यादुःखसंहर्त्रे नमस्ते भरताग्रज ॥ ५ ॥
अम्भोधिगर्वसंहर्त्रे तस्मै सेतुकृते नमः ।
तारकब्रह्मणे तुभ्यं लक्ष्मणाग्रज ते नमः ॥ ६ ॥

रक्षःसंहारिणे तुभ्यं नमो रावणमर्दिने।
कोदण्डधारिणे तुभ्यं सर्वरक्षाविधायिने ॥ ७ ॥

यह स्तुति सुतीक्ष्णमुनि नित्य पढ़ते और रामसरोवर में स्नानकर षडक्षरमन्त्र का जप करते। इस प्रकार तप करते २ रामचन्द्रजी में दृढ़भक्ति हो गई और दिव्य ज्ञानभी उत्पन्न हुआ। विना पढ़े सब वेदशास्त्र आ गये। विना सुने पदार्थ को जान लेना, दूसरे शरीर में प्रवेश करना, आकाश में गमन करना, सब कलाओं को जानना, सब लोकों में चले जाना, देवताओं के साथ सम्भाषण करना, अतीन्द्रिय पदार्थों को भी जानना, पिपीलिका आदि सब जीवों की भाषा समझना, कैलास, वैकुण्ठ, ब्रह्मलोक आदि में जाना और चौदह भुवनों में अपनी इच्छा से विचरना इत्यादि अनेक सिद्धि सुतीक्ष्णमुनि को प्राप्त हुईं "जो योगियों को भी दुर्लभ हैं।"

हे मुनिवर! यह सब रामतीर्थ का प्रभाव है। उस तीर्थ में स्नान करने से सब पापों का नाश होता है। सब सिद्धि और भोग मोक्ष

मिलते हैं। अपमृत्यु और नरक का भय निवृत्त होता है। रामचन्द्र में दृढ़भक्ति होती है। इस तीर्थ के तट पर एक शिवलिङ्ग है। रामतीर्थ में स्नानकर उस लिङ्ग का दर्शन करे, तो मोक्ष भी दुर्लभ नहीं और पदार्थों की तो क्या कथा है? राजा युधिष्ठिर इस तीर्थ में स्नान कर शिवलिङ्ग के दर्शनकर असत्यभाषण के महादोष से तत्क्षण छूट गए थे।

शौनक आदि ऋषियों ने पूछा, हे सूतजी! युधिष्ठिर ने धर्मपुत्र होकर क्यों असत्य कहा और फिर उस दोष से क्योंकर छूटे, यह आप वर्णन करें। तब सूतजी कहने लगे, हे मुनिवर! जिस कारण युधिष्ठिर ने असत्य कहा और रामतीर्थ के प्रभाव से जिस भांति वे पापनिवृत्त हुए। हम वर्णन करते हैं। युधिष्ठिर आदि पांच पुत्र पाण्डु के और दुर्योधन आदि सौ पुत्र धृतराष्ट्र के थे। इनका राज्य के लिए परस्पर बड़ा वैर बढ़ा। तब अठारह अक्षौहिणी सेना ले कुरुक्षेत्र में आकर ये युद्ध करने लगे। दश दिन भीष्म-

पितामह ने युद्ध किया । पांच दिन धृष्टद्युम्न का और द्रोणाचार्य का घोर संग्राम हुआ । द्रोणाचार्य ने अनेक प्रकार के अस्त्र और शस्त्रों से पाण्डवों की सेना को पीडा दी । धृष्टद्युम्न ने भी अपने बाणों से द्रोण की सेना को भेदन किया । तब द्रोणाचार्य ने ऐसी बाणों की वर्षा की कि पाण्डवों की सेना भयभीत हो चारों ओर भगी । तब क्रोधकर द्रोणाचार्य से अर्जुन युद्ध करने लगा । उन दोनों गुरुशिष्यों का युद्ध देखने के लिये देवता विमानों में बैठ २ कर आये । जिनसे आकाश भर गया । ऐसा युद्ध हुआ कि जिसकी कोई उपमा नहीं दे सकते । द्रोणाचार्य ने अर्जुन के पराक्रम की बहुत प्रशंसा की ।

द्रोणाचार्य अपने प्रिय शिष्य अर्जुन को छोड़कर पांचालों से युद्ध करने लगे । द्रोणाचार्य ने क्षणमात्र में पांचालों की अस्सी हजार चतुरङ्गिणी सेना मार दी । तब क्रोधकर धृष्टद्युम्न युद्ध करने लगा, परन्तु द्रोणाचार्य के बाणों के सम्मुख ठहर न सका और युद्ध छोड़ भगा । उसको

भीमसेन ने आश्वासन देकर अपने रथ में बैठाया और द्रोणाचार्य से कहा, जो तुम सरीखे दुष्ट ब्राह्मण ब्रह्मकर्म छोड़कर और अस्त्रविद्या सीखकर युद्ध न करते तो इतने क्षत्रियों का क्यों नाश होता । ब्राह्मणों का परमधर्म अहिंसा है । हिंसा से अपने कुटुम्ब का पालन व्याध करते हैं । तू एक पुत्र के लिये इतने राजाओं को युद्ध में मारता है, परन्तु वह तेरा पुत्र युद्ध में मारा गया, तो भी तुझे लज्जा और शोक नहीं होता ।

भीमसेन का यह वचन सुनकर द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर से पूछा, तब युधिष्ठिर ने भी यही कहा कि आपका पुत्र मारा गया । युधिष्ठिर का वचन सत्य मानकर द्रोणाचार्य ने शस्त्र त्याग दिये और योग की रीति से प्राणत्याग करने के लिये समाधि करने लगे । यह अवसर पाकर धृष्टद्युम्न खड्ग लेकर द्रोणाचार्य का शिर काटने दौड़ा । सब पाण्डव उसको इस कर्म से रोकते थे, इतने में ही द्रोणाचार्य के मस्तक से एक ज्योति निकलकर आकाश की ओर चली गई । यह चम-

त्कार कृपाचार्य, श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन आदि सबोंने देखा। इसप्रकार द्रोणाचार्य के प्राणत्याग करनेपर धृष्टद्युम्नने मृतशरीरका शिर काटालिया। द्रोणाचार्य के मरने पर उनकी सब सेना भय से भागी और धृष्टद्युम्न पाण्डव आदि बहुत प्रसन्न हुये। तब द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने दुर्योधन से पूछा कि हमारी सेना क्यों भगीजारही है? द्रोणाचार्य का मरण दुर्योधन तो अपने मुख से नहीं कह सका, परन्तु कृपाचार्य को कहने के लिए संकेत किया। तब कृपाचार्य बोले, हे अश्वत्थामा! तुम्हारा पिता युद्ध में ब्रह्मास्त्र से पाण्डवों की सेना को दग्ध करनेलगा, तब श्रीकृष्णचन्द्र ने पाण्डवों से कहा कि द्रोणाचार्य के जीतने का एकही उपायहै। जो कोई प्रामाणिक मनुष्य यह कहदे कि तुम्हारा पुत्र अश्वत्थामा युद्ध में मारा गया, तो द्रोणाचार्य शस्त्र त्यागकर युद्धसे निवृत्त हों नहीं तो यह सब सेना का संहार कर डालेंगे। इसलिये यह वचन धर्मपुत्र युधिष्ठिर कहें। यही उपाय द्रोणाचार्य के जीतनेका है। धमसे किसी

भांति द्रोण को नहीं जीत सकते। शत्रु को अधर्म से भी जीतना चाहिये।

श्रीकृष्णचन्द्र का यह वचन सुनकर पहले भीमसेन ने कहा कि हे द्रोण! तेरा पुत्र मारा गया। भीम के वचन पर द्रोणाचार्य को निश्चय न हुआ तब युधिष्ठिर से पूछा, हे धर्मपुत्र! तू सत्य कह कि अश्वत्थामा मारा गया, व जीता है? गुरु का यह वचन सुनकर युधिष्ठिर का चित्त चंचल हुआ कि मैं क्या कहूं? इसी अवसर में भीमसेन ने अश्वत्थामानाम एक हाथी को युधिष्ठिर के सम्मुख मारा था, उसी के उद्देश से युधिष्ठिर ने कहा, हां अश्वत्थामा को भीम ने मार दिया। युधिष्ठिर का यह वचन सुनकर शस्त्र छोड़, तेरा पिता युद्ध से निवृत्त हुआ। पीछे युधिष्ठिर ने यह भी कह दिया कि अश्वत्थामा एक हाथी था। परन्तु तुम्हारे पिता की यह प्रतिज्ञा थी कि अस्त्र को त्यागकर फिर अस्त्र ग्रहण न करेंगे। इसलिये फिर अस्त्र को ग्रहण न किया। धृष्टद्युम्न को अपनी मृत्यु जानकर तुम्हारे पिता

प्राण त्यागने के लिये रथ में ही समाधि करने लगे, तब मस्तक को भेदनकर ज्योतिरूप उनके प्राण निकलकर ऊपर को चले गये। अनन्तर धृष्टद्युम्न ने जाकर तुम्हारे पिता के केश पकड़कर खड्ग से शिर काट लिया। पाण्डव आदि तो उसको इस दुष्कर्म से रोकते थे परन्तु उसने एक की न मानी।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! कृपाचार्य से अपने पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर अश्वत्थामा रोदन करने लगा। बहुत देर तक विलाप कर क्रोध से जलता हुआ यह वाक्य बोला, जिसने झूठ बोलकर मेरे पिता से शस्त्र त्याग कराया उसको और जिसने मेरे पिता का शिर काटा उसको और सब पाण्डवों को शीघ्र ही मारूंगा। श्रीकृष्ण आदि सब मेरा पराक्रम देखें। हे मुनिवर! यह अतिघोर प्रतिज्ञा उसी समय अश्वत्थामा ने की। इतने में सायंकाल हुआ। दोनों ओर के राजा युद्ध बन्दकर अपने २ डेरे को गये। इस प्रकार अठारह दिन महाभारत का

युद्ध हुआ। उसमें भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, दुर्योधन आदि बड़े २ वीर मारे गये। अन्त में राजा युधिष्ठिर ने सबका क्रियाकर्म किया। फिर धौम्य आदि मुनियोंसहित पाण्डव हस्तिनापुर में आये और राजा धृतराष्ट्र को प्रणाम किया। धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर अपने २ मन्दिरों में प्रवेश किया।

कुछ दिन के अनन्तर नगर के लोग और धौम्य आदि मुनीश्वरों ने युधिष्ठिर का राज्याभिषेक करना चाहा, तब आकाशवाणी हुई कि हे धर्मपुत्र, युधिष्ठिर! तू राज्याभिषेक मत करा, तू राज्य के योग्य नहीं है। तूने छल से अपने गुरु द्रोणाचार्य को मारा है, इसलिये तुझे बड़ा पाप लगा है। जब तक प्रायश्चित्त न करेगा, राज्य के योग्य न होगा। अब तू प्रायश्चित्त कर। यह आकाशवाणी सुनकर युधिष्ठिर बहुत व्याकुल हुआ और कहने लगा, देखो, मैंने राज्यलोभ से कैसा घोर पाप किया है। मैं बड़ा दुष्ट, क्रूर और साहसी हूं। अब मैं कौन दान, यज्ञ,

प्रायश्चित्त आदि कर्म करूं, जिससे यह पातक निवृत्त हो। जिस समय राजा युधिष्ठिर इस प्रकार चिन्ता कर रहा था, उसी समय श्रीवेदव्यासजी वहां आये। राजा युधिष्ठिर ने उठकर उनको प्रणाम किया और आसन पर बिठलाकर पाद्य अर्घ्य आदि से उनका पूजन कर अपने दुःख का सब वृत्तान्त उनको सुनाया, जो आकाशवाणी ने कहा था। व्यासजी धर्मराज का वाक्य सुन, बहुत काल तक ध्यान कर कहने लगे, हे युधिष्ठिर! शोक मत कर। इस पाप की शान्ति के लिये हम एक उपाय कहते हैं, वह करो।

दक्षिण समुद्र में गन्धमादनपर्वत के बीच रामसरोवरनाम एक अति उत्तम तीर्थ है, जिसके दर्शनमात्र से सब पातक निवृत्त हो जाते हैं। सूर्य के आगे अन्धकार के समान रामतीर्थ का दर्शन करते ही ब्रह्महत्या निवृत्त हो जाती है, इसलिये हे धर्मपुत्र! तुम जाकर उस तीर्थ में स्नान करो, तब पाप निवृत्त होगा और राज्य की योग्यता होगी। उस तीर्थ के तट पर गौ, भूमि,

तिल, सुवर्ण, चांदी, वस्त्र, भोजन आदि का दान करो, तब अवश्य सब पापों से छूटोगे।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! व्यासजी का यह वचन सुनकर अपने पुरोहित धौम्यमुनि को और भीमसेन आदि अपने भाइयों को साथ ले राजव्यवहार सहदेव को सौंप राजा युधिष्ठिर पैदल ही रामतीर्थ को चले। कुछ दिन में वहां पहुँचकर विधिपूर्वक तीर्थ में स्नान किया और तीर्थश्राद्ध कर व्यासजीने जो दान बताये थे, सब किये। इसी प्रकार एक महीने तक निराहार रहकर नित्य तीर्थ में स्नान किया और धन का लोभ छोड़ राजा युधिष्ठिर ने बड़े २ दान रामतीर्थ के तट पर किये। एक मास के अनन्तर आकाशवाणी हुई। हे राजा, युधिष्ठिर! तुम्हारे सब पाप नष्ट हो गए। छल से असत्य बोलकर आचार्य के मारने से जो पाप हुआ था, वह भी निवृत्त हुआ। अब अपनी राजधानी में राज्याभिषेक कराकर धर्म से प्रजा का पालन करो। इतना कहकर आकाशवाणी बन्द हुई। राजा

युधिष्ठिर भी प्रसन्नता के साथ आकाशवाणी को प्रणाम कर अपने भाइयों समेत वहां से यात्रा करके कुछ दिनों में हस्तिनापुर पहुँच गए । वहां सब नगर के लोग और मुनीश्वरों ने राजा युधिष्ठिर का अभिषेक किया और राजा युधिष्ठिर धर्म से राज्य करने लगे ।

हे मुनिवर्य ! इस भांति रामतीर्थ के प्रभाव से राजा युधिष्ठिर निष्पाप और राज्य के योग्य हुये । सब पापों को नष्ट करनेवाले रामतीर्थ का यह थोड़ा सा प्रभाव हमने वर्णन किया । जो पुरुष इस अध्याय को पढ़ेगा अथवा सुनेगा, वह निष्पाप होकर कैलास को जायगा और जन्म-मरण के भय से छूटेगा ।

अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।

उन्नीसवाँ अध्याय ।

लक्ष्मणतीर्थ का माहात्म्य और बलदेवजी की कथा।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! तारकब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी के तीर्थ में स्नानकर लक्ष्मणतीर्थ को जाना चाहिए । लक्ष्मणतीर्थ में स्नान करने

से मनुष्य निष्पाप हो मुक्ति पाता है । लक्ष्मणतीर्थ में स्नान करने से दारिद्र्य निवृत्त होता है और आयुष्मान्, गुणवान्, विद्वान् और धार्मिक पुत्र उत्पन्न होता है । जो पुरुष उस तीर्थ के तट पर बैठकर मन्त्र जपता है, वह विना पढ़े सब वेद और शास्त्र का ज्ञाता हो जाता है । उस तीर्थ के तट पर लक्ष्मण ने शिवलिङ्ग स्थापन किया है । तीर्थ में स्नानकर लिङ्ग का दर्शन करने से मनुष्य रोग, दारिद्र्य और संसार के क्लेशों से छूट जाता है । श्रीकृष्णचन्द्र के बड़े भ्राता बलदेवजी लक्ष्मण-तीर्थ में स्नानकर और लक्ष्मणेश्वर का सेवनकर ब्रह्महत्या से छूटे थे। यह सुनकर मुनिवरों ने पूछा, हे सूतजी ! बलदेवजी ने ब्रह्महत्या क्योंकर की और फिर उससे किस प्रकार छूटे, यह आप वर्णन करें ।

सूतजी कहने लगे कि हे मुनिवर्य ! पूर्व काल में कौरव-पाण्डवों के युद्ध के समय शेष के अवतार बलदेवजी ने विचार किया, जो हम कौरवों के पक्ष में रहें तो पाण्डव कोप करेंगे

और जो पाण्डवों की ओर रहें तो दुर्योधन बुरा मानेगा, इसलिये यहाँ रहना उचित नहीं। इस बात का निश्चय कर तीर्थयात्रा के उद्देश से बलदेवजी चल पड़े। पहले प्रभासतीर्थ में जाकर विधिपूर्वक स्नान किया। देवता, ऋषि, पितरों का तर्पण कर ब्राह्मणों को दान दिया। अनन्तर सरस्वती नदी के किनारे २ पश्चिम की ओर चले। मार्ग में पृथूदक, बिन्दुसर, मुक्तिदतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ आदि तीर्थों में एवं गङ्गा, यमुना, सिन्धु, शतद्रू आदि नदियों में स्नान, दान आदि कर्म करते हुए बलदेवजी कुछ काल में नैमिषारण्य तीर्थ पर पहुँचे। उनको आते देखकर नैमिषारण्य के सब तपस्वी आसनों से उठे और बड़े आदर से बलदेवजी को आसन पर बिठाया। कन्दमूल आदि से सब ऋषियों ने उनका पूजन किया, परन्तु व्यासजी के शिष्य सूतजी ऊंचे आसन पर बैठे थे। उन्होंने बलदेवजी के लिए न कोई शिष्टाचार प्रदर्शन किया और न प्रणाम ही किया। यह देखकर बलदेवजी को बड़ा

क्रोध आया। उन्होंने विचारा, देखो, सभी मुनियों ने तो हमारा सत्कार किया, पर यह सूत आसन से भी न उठा; यह मन में विचार कर बलदेवजी बोले, यह निन्द्यजाति सूत मुनियों के बीच ऊंचे सिंहासन पर बैठा है, यह बहुत अनुचित बात है। इसने हमारा अनादर किया, न तो आसन से उठा और न प्रणाम किया। व्यासजी से पुराण, इतिहास, धर्मशास्त्र आदि पढ़कर इसको इतना अहंकार है कि, हम को देखकर प्रणाम न किया और आसन भी नहीं छोड़ा। व्यासजी के शिष्य पैल वैशम्पायन आदि ब्राह्मण ऐसा अनुचित कर्म कभी नहीं करते। इसलिये इस दुष्ट को हम मारेंगे। हमारा जन्म दुष्टों को दण्ड देने के लिये है। हमारे हाथ से मृत्यु पाकर यह दुष्ट भी शुद्ध होजायगा।

इतना कह बलदेवजी ने कुश के अग्रभाग से सूत का शिर काट लिया। यह देखकर मुनियों ने हाहाकार किया और बलदेवजी से कहा, आपने बड़ा अधर्म किया। हम सबने मिलकर

इसको यह ऊंचा आसन दिया है और अक्षय आयुर्दाय भी इसको दिया था। यह जानकर भी आपने ब्रह्महत्या की। आप जगत् के प्रभु हैं, इसलिये आपका कोई नियामक नहीं, परन्तु आपही विचारकर इस ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त कीजिये। मुनियों का यह वचन सुनकर बलदेवजी बोले, हे मुनिवर्य! लोकमर्यादा के लिये हम प्रायश्चित्त करेंगे। वास्तव में तो हम पापभागी नहीं हैं। अब आप सब हमको प्रायश्चित्त बतावें। आपने इसको अक्षय आयुर्दाय दिया है, इसलिये हम इसको अपनी योगमाया से जिला सकते हैं। मुनियों ने कहा, हे बलदेवजी! आपका शस्त्र और हमारा वर दोनों ही सफल रहें, ऐसा काम कीजिये। बलदेवजी ने कहा, हे मुनिवर्य! वेद में पुत्र को आत्मा के तुल्य लिखा है, इसलिये इस सूत से दीर्घायु और बुद्धिमान् पुत्र होगा, वही आपको पुराण सुनावेगा।

इतना कह फिर बलदेवजी ने कहा हे मुनिवर्य! और जो कुछ आप चाहते हैं, कहें। हम अभी

आपका अभीष्ट सिद्ध करेंगे। हमने यह पाप अज्ञान से किया, इसका आप प्रायश्चित्त बतावें। मुनि कहने लगे, हे बलदेवजी! इल्वलदैत्य का पुत्र बल्वल है, वह सदा हमारे यज्ञ को दूषित करताहै उसहमारे कण्टक दुष्ट दैत्यको आप मार डालें, यही हमारा बड़ा सत्कार है। वह दैत्य हमारे यज्ञ में अस्थि, विष्ठा, मूत्र, रुधिर, मांस, मद्य आदि बरसाता है। इसके सिवाय इस भारतवर्ष में जितने तीर्थ हैं, उनमें आप एक वर्ष तक स्नान करें, तब आप शुद्ध होजायँगे। सूतजी कहते हैं कि हे मुनिवर्य! इस कथन के समय में ही बड़ा प्रचण्ड पवन चला और यज्ञशाला में विष्ठा, मूत्र आदि की वृष्टि होने लगी और बल्वलदैत्य त्रिशूल हाथ में लिये हुए यज्ञशाला के समीप बलदेवजी को देख पड़ा। बलदेवजी ने दग्ध हुए पर्वत के तुल्य उस दैत्य को, जिसके ताम्र के रङ्ग की बड़ी दाढ़ी और बड़ी २ दाढ़ें हैं, और पर्वत की कन्दरा का सा जिसका अतिभयंकर मुख है देखा। बलदेवजी ने

उसी समय अपने हल और मूसल का स्मरण किया । स्मरण करते ही दोनों आयुध आगये । बलदेवजी ने हल से उस दैत्य को खींचा और मूसल से उसके मस्तक को चूर्ण किया । बल्वल के भूमि पर गिरते ही सब मुनिवर बलदेवजी की स्तुति करने लगे । सब मुनियों ने बलदेवजी का तीर्थजल से अभिषेक किया । कमलों की वैजयन्तीमाला, सुन्दर श्वेतवस्त्र और भूषण बलदेवजी को भेंट किये । बलदेवजी ने वे सब धारण किये और मुनियों से बिदा हो तीर्थयात्रा को चले ।

एक वर्षतक सब तीर्थों में बलदेवजी ने स्नान किया और अपने नगर को चले । चलने के समय पीछे एक कृष्णवर्ण की छाया देखी, जो घोर शब्द करती चली आती थी और यह आकाशवाणी भी सुनी हे बलदेवजी ! एक वर्षतक आपने तीर्थयात्रा की परन्तु ब्रह्महत्या नष्ट न हुई । यह आकाशवाणी सुनकर और उस भयंकर छाया को देखकर बलदेवजी बड़े खिन्न हुये और सोचने लगे, देखो एक वर्षतक हमने प्रायश्चित्त किया,

तो भी ब्रह्महत्या नष्ट न हुई, अब क्या करें । अनन्तर नैमिषारण्य में जाकर बलदेवजी ने सब वृत्तान्त मुनियों से कहा, तब मुनि बोले हे बलदेवजी ! जो आपकी ब्रह्महत्या नष्ट नहीं हुई तो आप दक्षिणसमुद्र के बीच गन्धमादन पर्वत में जाकर और लक्ष्मणतीर्थ में स्नानकर लक्ष्मणेश्वर शिव का पूजन करें, तब यह हत्या अवश्य नष्ट होजायगी ।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर ! मुनियों का वचन सुनकर बलदेवजी लक्ष्मणतीर्थ पर पहुँचे । वहां तीर्थ में स्नानकर गौ, भूमि, अन्न, सुवर्ण आदि सब वस्तु दानकर ब्राह्मणों को दी और लक्ष्मणेश्वर का पूजन किया । तब आकाशवाणी हुई, हे बलदेवजी ! अब तुम्हारी सम्पूर्ण ब्रह्महत्या नष्ट हुई, सुख से अपनी पुरी को जावो । यह आकाशवाणी सुनकर बलदेवजी ने उस तीर्थ की बहुत प्रशंसा की और धनुष्कोटि आदि सब तीर्थों में स्नानकर एवं रामनाथ का दर्शन कर प्रसन्नता से द्वारका को आये । हे मुनिवर्य !

ब्रह्महत्या आदि पातकों को नष्ट करनेवाले लक्ष्मणसरोवर का हमने यह माहात्म्य वर्णन किया। जो पुरुष भक्तिसे इस अध्याय को पढ़ेंगे अथवा सुनेंगे, वे अवश्य मुक्ति पाएँगे।

उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।

बीसवाँ अध्याय।

जटातीर्थ का माहात्म्य और शुकदेवजी की कथा।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! ब्रह्महत्या आदि पापों से निवृत्त करनेवाले लक्ष्मणतीर्थ में स्नान करके चित्त की शुद्धि के लिये जटातीर्थ पर जाना चाहिये। जन्म, मरण, रोग आदि से पीडित जीवों के अज्ञान-नाश के लिये जटातीर्थ से उत्तम और कोई तीर्थ नहीं है। कितने ही पुरुष ज्ञान की प्राप्ति के लिये वेदान्त पढ़ते हैं, परन्तु उसका अनुभव होना कठिन है। वेदान्त-रूप समुद्र है, उसमें पूर्वपक्ष ग्राह और उत्तर-पक्ष बड़े २ मत्स्य हैं। उस समुद्र में पड़कर मूढ़ पुरुष मोह को प्राप्त होते हैं। चित्त की शुद्धि के लिये वेदान्त पढ़ते हैं, परन्तु चित्त की शुद्धि

नहीं होती और लोगों से कलह करते फिरते हैं।

हे मुनिवर्य ! वेदान्त पढ़नेसे श्रमही बढ़ता है, चित्त की शुद्धि नहीं होती, इसलिये हम वेदान्तशास्त्र को उत्तम नहीं समझते हैं। जो विना परिश्रम चित्त की शुद्धि चाहो तो जटातीर्थ का सेवन करो। यह हम सबको कहते हैं। पूर्वकाल में सबके उपकार के लिए साक्षात् सदाशिव ने गन्धमादनपर्वत में इस अज्ञाननाशक तीर्थ को बनाया है। रावण को मारकर श्रीरामचन्द्रजीने इस तीर्थमें जटा धोई थी अतः इस तीर्थका नाम जटातीर्थ हुआ। साठहज़ार वर्षतक गङ्गास्नान, सिंह की बृहस्पति में गोदावरी में स्नान और हज़ारबार सिंह की बृहस्पति में गोमती में स्नान करने से जितना पुण्य होता है उतना पुण्य जटातीर्थ के दर्शनमात्र से होजाता है। जटातीर्थ में स्नान करनेवाले मनुष्यों का अन्तःकरण शुद्ध होजाता है और अज्ञान निवृत्त होता है। अज्ञान नाश होने से ज्ञान प्राप्त होकर मुक्ति मिलती है और अखण्ड सच्चिदानन्दरूप प्राप्त होता है।

इस विषय में एक प्राचीन इतिहास भी है ।

पूर्वकाल में सब शास्त्र और वेद के जाननेवाले महाज्ञानी श्रीवेदव्यासजी से शुकदेवजी ने पूछा हे पितः ! आप ऐसा उपाय बतावें, जिससे अज्ञान निवृत्त होकर ज्ञान प्राप्त हो और मोक्ष मिले, मैंने आपसे वेदान्त, इतिहास, पुराण आदि सब पढ़े परन्तु अन्तःकरणकी शुद्धि न हुई । अब ऐसा उपाय बतावें, जिससे चित्त शुद्ध हो, अपने पुत्र शुकदेव का यह वचन सुनकर वेदव्यासजी कहनेलगे, हे पुत्र ! हम अतिगुप्त बातकहते हैं, जिससे अविद्याग्रन्थिका भेदन होकर ज्ञानकी प्राप्ति होसकती है ।

दक्षिणसमुद्र के बीच रामसेतु के मध्य में गन्धमादनपर्वत है । उसके बीच पाप हरनेवाला जटातीर्थ है । जहां श्रीरामचन्द्रजी ने जटा धोई थी । श्रीरामचन्द्रजी ने उसी तीर्थ को यह वर दिया था, कि जो पुरुष इस तीर्थ में स्नान करेगा, उसका अन्तःकरण शुद्ध होजायगा । दान, यज्ञ, जप, तप, उपवास आदि विना किये जटातीर्थ में स्नानमात्र से अन्तःकरण शुद्ध होजाता है ।

उस तीर्थ में स्नान करने से सब विपत्तियां दूर होती हैं और पुण्यलोक की प्राप्ति होती है । इस तीर्थ से उत्तम जप, तप, नियम आदि कोई भी नहीं है । धन, यश, आयुष्, मङ्गल, पुण्य, पवित्रता, ज्ञान आदि सब पदार्थ जटातीर्थ में स्नान करने से मिलते हैं ।

भृगु ने अपने पिता वरुण से अन्तःकरण की शुद्धि का उपाय पूछा, तब वरुण ने भृगु से यही कहा कि गन्धमादनपर्वत के बीच जटातीर्थ में स्नान करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है । तब भृगु ने जाकर जटातीर्थ में स्नान किया, जिससे भृगु की बुद्धि शुद्ध होगई, दिव्य अद्वैत ज्ञान उत्पन्न हुआ और सच्चिदानन्द अखण्ड चैतन्यस्वरूप भृगु होगया । शिवजी के अंश दुर्वासामुनि ने जटातीर्थ में स्नान कर उत्तम ज्ञान पाया । विष्णु के अवतार दत्तात्रेयमुनि ने भी जटातीर्थ में स्नान कर ब्रह्मज्ञान पाया । जो अज्ञान का नाश करना चाहे, वह जटातीर्थ में स्नान करे । हे पुत्र, शुकदेव ! तू भी अन्तःकरण की शुद्धि के

लिये जटातीर्थ में जाकर स्नान कर । पिता का यह वचन सुनकर शुकदेवजी रामसेतु को चले । वहां जाकर शुकदेवजी ने संकल्पपूर्वक जटातीर्थ में स्नान किया । अनन्तर उनका अन्तःकरण शुद्ध होकर आत्मज्ञान प्राप्त हुआ । जो मनशुद्धि की इच्छा रखता हो वह जटातीर्थ में स्नान करे । कल्पवृक्ष के तुल्य जटातीर्थ के होते हुए भी अज्ञानी पुरुष और तीर्थों को ढूंढ़ते फिरते हैं । जटातीर्थ में स्नान करने से भुक्ति और मुक्ति दोनों मिलती हैं ।

वेदपाठ, यज्ञ, तप, व्रत, दान, उपवास आदि के द्वारा कष्ट से मन शुद्ध होता है और जटातीर्थ में स्नानमात्र से होजाता है । जटा-तीर्थ का माहात्म्य हम नहीं वर्णन कर सकते । ब्रह्मा, विष्णु, शिवजी जटातीर्थ के माहात्म्य को भलीभांति जानते हैं । जटातीर्थ के तुल्य कोई तीर्थ न हुआ और न होगा । जटातीर्थ के तीर पर श्राद्ध करने से गयाश्राद्ध के तुल्य फल होता है । जटातीर्थ में स्नान करने से पाप, नरक और

दारिद्र्य का भय नहीं होता । सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! जटातीर्थ का यह माहात्म्य हमने थोड़ा सा कहा है, जिस तीर्थ के प्रभाव से शुकदेवजी ने ज्ञान पाया है । जो इस अध्याय को पढ़ता अथवा सुनता है वह सब पापों से छूट कर विष्णुलोक को जाता है ।

बीसवाँ अध्याय समाप्त ।

इक्कीसवाँ अध्याय ।

लक्ष्मीतीर्थ का माहात्म्य और पाण्डवों को सम्पत्ति प्राप्त होने का वर्णन ।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! जटातीर्थ में स्नान कर शुद्धचित्त हो लक्ष्मीतीर्थ को जाना चाहिए । जिस मनोरथ से लक्ष्मीतीर्थ में स्नान करे, वही मनोरथ सिद्ध होता है । दुःख दारिद्र्य हरनेवाला और धन, धान्य, सुख, सम्पत्ति आदि देनेवाला लक्ष्मीतीर्थ है । श्रीकृष्ण भगवान् की प्रेरणा से धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ से आकर लक्ष्मीतीर्थ में स्नान किया, तब बड़ा ऐश्वर्य पाया ।

शौनक आदि ऋषियों ने पूछा, हे सूतजी! राजा युधिष्ठिर ने जिस भांति ऐश्वर्य पाया, वह आप वर्णन करें। तब सूतजी बोले, हे मुनिवर्य! धृतराष्ट्र की आज्ञा से पाण्डव इन्द्रप्रस्थ में रहते थे। एक समय उनके मिलने के लिये द्वारका से श्रीकृष्णचन्द्र आये। पाण्डव भी श्रीकृष्णचन्द्र को देखकर परमहर्षित हुये और उनको बड़े आदर से अपने महल में रक्खा। एक दिन राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णचन्द्र का पूजनकर पूछा, हे श्रीकृष्णचन्द्र! जिस कर्म से बड़ा ऐश्वर्य प्राप्त हो वह आप हमको बतावें। तब श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे हे महाराज! गन्धमादन पर्वत में एक लक्ष्मीतीर्थ है, उसमें स्नान करने से ऐश्वर्य प्राप्त होता है, धन धान्य बढ़ता है, शत्रुओं का नाश होता है। आप भी उस तीर्थ में स्नान करें। उस तीर्थ में स्नान करके देवताओं ने परम ऐश्वर्य पाया और दैत्यों को मारा। उस तीर्थ में स्नान करने से राज्य धन और धर्म शीघ्र ही प्राप्त होते

हैं। तप, दान, यज्ञ और ब्राह्मणों के आशीर्वाद से जिस प्रकार ऐश्वर्य की वृद्धि होती है, उसी प्रकार लक्ष्मीतीर्थ में स्नान से भी होती है। सब विघ्न, पाप और रोग लक्ष्मीतीर्थ में स्नान करने से दूर होते हैं और परम कल्याण प्राप्त होता है। इस तीर्थ में स्नान करने से नलकूबर ने सब अप्सराओं में मुख्य रम्भा अप्सरा पाई। कुवेर लक्ष्मीतीर्थ में स्नान कर महापद्म आदि नव निधियों के स्वामी हुये, इसलिये हे महाराज! आप भी अपने भाइयों सहित लक्ष्मीतीर्थ में स्नान करें, तो सब शत्रुवों को जीत कर बड़ी लक्ष्मी पावेंगे, इसमें कुछ सन्देह न कीजिये।

श्रीकृष्णचन्द्र का यह वचन सुनकर अपने भाइयों को ले राजा युधिष्ठिर गन्धमादनपर्वत को चले। वहां लक्ष्मीतीर्थ पर पहुँच सब ने स्नान किया। इसी भांति नित्य एक मास तक स्नान करते रहे और गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण आदि दान नित्य ब्राह्मणों को देते रहे। फिर इन्द्रप्रस्थ को आये। इन्द्रप्रस्थ में पहुँच कर

राजा युधिष्ठिर ने राजसूययज्ञ करने की इच्छा की। तब श्रीकृष्णचन्द्र को बुलाने के लिए दूत भेजा। श्रीकृष्णचन्द्र भी दूत के पहुँचतेही सत्यभामासमेत रथ में बैठ कर इन्द्रप्रस्थ में पहुँचे। पाण्डवों ने बड़ा उत्सव किया और युधिष्ठिर ने राजसूययज्ञ करने का मनोरथ श्रीकृष्णजी से कहा। श्रीकृष्णजी ने भी स्वीकार किया और यह कहा, हे महाराज! आपसे हम यथार्थ बात कहते हैं। जो बहुत से हाथी घोड़े, और सेना का अधिपति हो, वही राजा इस यज्ञ को कर सकता है। साधारण राजा इस यज्ञ के अधिकारी नहीं। पहले आप सब दिशाओं के राजाओं को जीतें और उनसे कर लें, उसी धन से आप यह यज्ञ करें। इसलिये यज्ञ से पहले आप दिग्विजय कीजिये।

श्रीकृष्णचन्द्र का यह वचन सुनकर राजा युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुये और अपने भाइयों को बुलाकर कहा, हे भाइयो! मैं राजसूययज्ञ करना चाहता हूँ, इसलिये तुम चारों बहुतसी

सेना साथ लेकर चारों दिशाओं को जीतो और जीतकर जो धन तुम लावोगे, उसी से यज्ञ होगा। राजा युधिष्ठिर की यह आज्ञा पाकर भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव बहुतसी सेना साथ ले दिग्विजय को चले। थोड़े ही काल में सब राजाओं को जीतकर और अपने वश में कर बहुत सा धन ले अपने नगर में पहुँचे। सौ भार सुवर्ण भीमसेन, एक हज़ार भार सुवर्ण अर्जुन, सौ भार सुवर्ण नकुल और विभीषण के दिये सुवर्ण के चौदह ताल और दक्षिण देश के राजाओं को जीत बहुत सा धन सहदेव भी लाया। कई करोड़ का धन श्रीकृष्ण भगवान् ने युधिष्ठिर को दिया। सब भ्राताओं के लाए धन से और श्रीकृष्णचन्द्र से दिए हुए असंख्य धन के द्वारा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णचन्द्र के आश्रय में राजसूययज्ञ किया। उस यज्ञ में युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को यथेष्ट धन, अन्न, गौ, भूमि, भूषण, वस्त्र आदि दिये। जितना धन याचकों ने मांगा उससे दूना पाया। जितना धन युधिष्ठिर ने यज्ञमें

बांटा उसकी इयत्ता (गणना) कोटिवर्ष में भी नहीं कर सकते। एक २ अर्थी को दिया हुआ धन देखकर लोग यही जानते थे कि राजा ने अपना सर्वस्व इसी को दे दिया। जब राजा का खजाना देखते, जिसमें सुवर्ण और रत्नों के ढेर लगे थे, तब यह जानते कि अर्थी को बहुत थोड़ा दिया गया। इस भांति राजसूययज्ञ कर राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों समेत धर्मराज्य करने लगे।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! लक्ष्मीतीर्थ के प्रभाव से राजा युधिष्ठिर ने यह सम्पत्ति पाई। यह तीर्थ स्नान करनेवालों के सब पातक दूर कर धन, धान्य और ऐश्वर्य देता है। इस तीर्थ में स्नान करने से ऋण और दारिद्र्य नहीं रहता। नरक और दुःख भी समीप नहीं आते। इसमें स्नान करने से स्वर्ग और मोक्ष भी मिलता है और उत्तम स्त्री-पुत्र भी प्राप्त होते हैं। इस तीर्थ के तुल्य कोई तीर्थ हुआ नहीं और होगा भी नहीं। यह लक्ष्मीतीर्थ का माहात्म्य हमने कहा है। इसके पढ़ने से अथवा सुनने से धन धान्य

मिलता है, दुःस्वप्न का फल नष्ट होता है और सब मनोरथ सिद्ध होते हैं।

इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त।

बाईसवाँ अध्याय।

अग्नितीर्थ का माहात्म्य और दुष्पण्यनाम एक वैश्यपुत्र की अद्भुत कथा।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! सब ऐश्वर्य देनेवाले लक्ष्मीतीर्थ में स्नान कर अग्नितीर्थ को जाना चाहिये। अग्नितीर्थ सब तीर्थों में उत्तम अभीष्ट सिद्धि देनेवाला और सब पातकों का हरनेवाला है। मनुष्य को अपने पाप निवृत्त करने के लिये उसमें स्नान करना चाहिये। शौनक आदि ऋषि पूछते हैं, हे सूतजी ! उस तीर्थ का नाम अग्नितीर्थ क्यों हुआ। और वह तीर्थ कहां है ? यह आप वर्णन करें। हमारी श्रवण करने की बहुत इच्छा है। मुनियों का यह प्रश्न सुनकर सूतजी बोले, हे मुनिवर्य ! आपने बहुत उत्तम बात पूछी, हम वर्णन करते हैं।

पूर्वकाल में सकुटुम्ब रावण को मारकर और

लङ्का का राज्य विभीषण को देकर सीता और लक्ष्मण सहित सिद्ध, चारण, गन्धर्व आदि से सेवित एवं मुनियों से स्तुति किए जाते हुए श्रीरामचन्द्रजी तीर्थ-दर्शन की इच्छा से और जानकी की शुद्धि के लिये सेतुमार्ग द्वारा गन्धमादनपर्वत पर पहुँचे। वहां लक्ष्मीतीर्थ के तटपर स्थिर होकर सब देवता, ऋषि और पितरों के समीप अग्नि का आवाहन किया। आवाहन करते ही पीतवर्ण, रक्तनेत्र, पीतवस्त्र पहिने धनुष् हाथ में लिये, अपनी सात जिह्वाओं से दशों दिशाओं को चाटता हुआ अग्नि समुद्र से निकला और रामचन्द्रजी के समीप आकर यह वचन कहने लगा, हे रामचन्द्रजी! जानकी के पातिव्रत धर्म के प्रभाव से आपने रावण को मारा। इसमें कुछ संदेह नहीं। यह जानकी साक्षात् जगत् की माता लक्ष्मी है। जब २ आप अवतार लेते हैं, तब २ यह भी आपके पीछे अवतार धारण करती है। आप जब परशुराम हुए तब यह धरणी हुई, अब जानकी है, आगे रुक्मिणी होगी

और भी सब अवतारों में आपके साथ रहेगी। आप साक्षात् विष्णु हैं, अब मेरे वचन से आप इसको ग्रहण करें।

अग्नि का यह वचन सुनकर देवता, ऋषि, विद्याधर, गन्धर्व, मनुष्य, नाग आदि सब जानकी और रामचन्द्रजी की प्रशंसा करने लगे। रामचन्द्रजी ने भी अग्नि के वचन से सीता को ग्रहण किया। रामचन्द्रजी के आवाहन करने से जहां अग्नि प्रकट हुआ वहीं अग्नितीर्थ हुआ। अग्नितीर्थमें स्नानकरे और उपवास करके ब्राह्मणों को भोजन करावे। वस्त्र, भूषण, भूमि आदि उनको दान करके देवे और उत्तम कन्या को वस्त्र, भूषण आदि से अलंकृत कर दान करे तो अवश्य ही विष्णुलोक पावे। अग्नितीर्थ के तट पर अन्नदान का बहुत फल है। अग्नितीर्थ के तुल्य पाप-नाशक तीर्थ न हुआ, न होगा। एक बड़ा पातकी अग्नितीर्थ में स्नान कर घोर पिशाचपने से छूटा।

पूर्वकाल में पशुमान् नामका एक वैश्य पाटलि-

पुत्र (पटना) नगर में रहता था। वह सदा धर्म में तत्पर रहता और ब्राह्मणों की सेवा करता, खेती करता, गौ रखता और बाज़ार में सुवर्ण, चाँदी बेचता था। उस वैश्य के तीन स्त्रियाँ थीं। उनमें बड़ी के सुपण्य, पण्यवान् और चारुपण्य ये तीन पुत्र थे। बिचली के सुकोश और बहुकोश ये दो पुत्र थे। तीसरी स्त्री के महापण्य, महाकोश और दुष्पण्य ये तीन पुत्र हुए। इस प्रकार पशुमान् वैश्य के तीन पत्नियों में आठ पुत्र थे। वे सब बाल-अवस्था में अपनी २ क्रीड़ा से माता-पिता को आनन्द देते थे। पाँच २ वर्ष के जब वे बालक हुए, तो पशुमान् ने सबको खेती, व्यापार, गोरक्षा आदि कर्मों में लगाया। उनमें सात पुत्र तो अपने पिता की आज्ञा के अनुसार चलते थे, अतः सुवर्ण आदि के व्यापार में बहुत प्रवीण होगये। परन्तु सबसे छोटा दुष्पण्य पिता की आज्ञा के अनुकूल न चलकर कुमार्ग में प्रवृत्त हुआ। जिन बालकों के साथ खेलता उनको भी पीड़ा देता था।

पिता उसका दुष्ट व्यवहार देखकर भी उसको कुछ नहीं कहता था। वह यह सोचता था कि बालक है और मूर्ख है आपही समझ जायगा।

क्रम से वे आठो वैश्यपुत्र तरुण-अवस्था को प्राप्त हुए। तब दुष्पण्य यह काम करने लगा कि नगर में जिसका बालक मिलता, उसी को उठाकर गुपचुप कुएँ में अथवा तालाब में फेंक आता और उसके कुकर्म को कोई नहीं जानता था। उन बालकों के माता-पिता बहुत ढूँढ़ते, परन्तु बालकों का कहीं पता नहीं लगता था। जब कोई बालक तालाब आदि में मरा हुआ मिलता, तो उसके मां-बाप रो पीटकर रह जाते थे। इस भाँति दुष्पण्य नित्य ही बालकों को मारता था। कुछ दिनों में नगर शून्य होने लगा। यह बात जब राजा ने सुनी, तब कोतवाल को बुलाकर आज्ञा दी कि पता लगाओ, बालकों को कौन मारता है? कोतवाल ने राजा की आज्ञा पाकर बहुत यत्न किया, परन्तु कुछ पता न लगा और बालक भी नित्य ही मारे

जाते थे। कोतवाल ने राजा से प्रार्थना की, हे महाराज! मैंने बहुत यत्न किया, परन्तु उस दुष्ट का पता नहीं मिलता। यह सुनकर राजा अति व्याकुल हुआ। नगर के लोग नित्य-ही राजा के द्वार पर आकर पुकारते थे। एक दिन कमल तोड़ने के बहाने से पाँच बालकों को साथ लेकर दुष्पण्य एक तालाब पर गया। वहाँ इधर-उधर देखा कि कोई मनुष्य नहीं है, उन चिल्लाते हुए बालकों को उठा २ कर दुष्पण्य ने तालाब में फेंक दिया और उनको मरे हुए जानकर अपने घर को चला आया। दैव-योग से वे बालक डूबे नहीं। दो-चार ग़ोते खाकर किनारे आलगे। घर का मार्ग नहीं जानते थे, इसलिये तालाब के किनारे रोते हुए फिरने लगे। इतने में उनके मां-बाप भी ढूँढ़ते २ और बालकों के नामों से पुकारते वहाँ आये। बालकों ने अपने नाम सुन और माता-पिता की बोली पहिचान कर शब्द किया, तब उनके माता-पिता उनके समीप पहुँचे और उनको

जीते हुए देख परम हर्ष को प्राप्त हुए। उन्होंने बालकों से वृत्तांत पूछा कि तुम यहाँ क्योंकर आये? तब उन्होंने दुष्पण्य का सब कुकर्म कहा। वे सब बालकों समेत राजा के पास गये और सब वृत्तांत राजा से कहा।

राजा ने पशुमान् को बुलाकर कहा, हे पशुमान्! दुष्पण्य-नामक तेरे पुत्र ने हमारा नगर शून्य कर दिया। देख, ये पाँच बालक भी उसने तालाब में डुबो दिये थे, परन्तु ईश्वर की इच्छा से बच गये। तू धर्मात्मा है इसलिये हम तुझसे ही पूछते हैं कि अब क्या करना चाहिये? राजा का यह वचन सुनकर पशुमान् बोला, हे महाराज! जिस दुष्ट ने नगर के सब बालक मार डाले, उसका अवश्य ही वध करना चाहिये, इसमें कुछ भी विचार की बात नहीं है। वह मेरा पुत्र नहीं, शत्रु है। आप शीघ्र ही उस दुरात्मा का वध करें। पशुमान् का यह वचन सुनकर नगर के सब मनुष्यों ने पशुमान् की बहुत प्रशंसा की और सबों ने मिलकर राजा से यह प्रार्थना की,

हे महाराज! आप उस दुष्ट का वध न करें, नगर से उसको निकाल दें। नगरवासियों का यह वचन सुनकर दुष्पण्य को बुलाकर राजा ने कहा, हे दुष्ट! शीघ्र तू हमारे नगर से निकल जा। जो अब तू यहाँ रहेगा, तो तेरा वध किया जायगा। यह कहकर राजा ने उसको नगर से निकाल दिया। वह भी वहाँ से निकलकर वन में गया, जहाँ बहुत से मुनि आश्रमों में रहते थे। वहाँ भी दुष्पण्य ने एक मुनि-बालक को जल में डुबो दिया, तब और बालकों ने जो वहाँ खेलते थे, उस बालक के पिता से जाकर कहा। वह उग्रश्रवा नाम मुनि सुनते ही दौड़ा आया और देखा कि बालक जल के ऊपर मरा हुआ तैरता है। यह देखकर और योगबल से दुष्पण्य का सब कर्म जान कर उसको शाप दिया कि रे दुष्ट! तूने मेरे पुत्र को जलमें डुबोकर मारा है, इसलिये तू भी जलमें डूबकर मरेगा और मरकर पिशाच होगा।

यह शाप सुनकर उदास हो, दुष्पण्य दूसरे वन में चला गया, जहाँ बहुत से सिंह, व्याघ्र

आदि दुष्ट जीव रहते थे। उसके वन में प्रवेश करते ही प्रचण्ड पवन चला। वृक्ष टूट २ कर गिरने लगे और अति घोर वृष्टि होने लगी। तब दुष्पण्य अति दुःखी हुआ और इधर उधर देखने लगा। उसने देखा कि एक हाथी मरा और सूखा हुआ पड़ा है। वह प्राण बचाने के लिये हाथी के मुख में घुसकर उसके पेट में जा बैठा। वृष्टि बहुत हुई और एक जल का प्रवाह उधर बहकर आया। उसमें वह मरा हाथी भी बह चला और जल से भर गया। क्षणमात्र में दुष्पण्यसमेत समुद्र में जा पहुँचा। परन्तु दुष्पण्य के प्राण इतने में ही जाते रहे। वह पिशाच हो गया और क्षुधा-तृषा से पीड़ित होता हुआ एक वन में रहने लगा। इस प्रकार दुःख भोगते २ करोड़ों वर्ष उसको बीत गये। देश २ और वन २ में भटकता फिरता, परन्तु कहीं सुख नहीं मिलता था।

एक दिन दण्डकारण्य में अगस्त्य मुनि के आश्रम के समीप पहुँचा और पुकारने लगा, हे तपस्वियो! आप दयालु हैं, मेरे ऊपर भी दया

करें। मैं अति दुःखी हूं। मैं पूर्व जन्म में पाटलिपुत्र-निवासी पशुमान् नाम वैश्य का दुष्पण्य नाम पुत्र था। मैंने बहुत से बालक मार डाले, तब राजा ने मुझे अपने देश से निकाल दिया। मैं एक वन में आया। वहां आकर मैंने उग्रश्रवामुनि का पुत्र जल में डुबो दिया। मुनि ने मुझे शाप दिया कि तेरी भी जल में मृत्यु होगी और बहुत काल तक तू पिशाच बनकर दुःख भोगेगा। मुनि के शाप से पिशाच हुये मुझे कई करोड़ वर्ष हो गये। शून्य वनों में दुःख भोगता फिरता हूं। क्षुधा और तृषा से मेरे प्राण जाते हैं। आप मेरी रक्षा करें और ऐसा यत्न बतावें, जिससे पिशाच-योनि छूट जाय। उसका यह वचन सब मुनियों ने जाकर अगस्त्यजी से कहा और प्रार्थना की, हे महाराज! आप इस दीन पिशाच का उद्धार कीजिये, आप समर्थ हैं। मुनियों की यह प्रार्थना सुनकर परमदयालु अगस्त्यमुनि ने अपने प्रिय शिष्य सुतीक्ष्ण को बुलाकर कहा, हे सुतीक्ष्ण! गन्धमादन पर्वत में अग्नितीर्थ है। वहां जाकर

संकल्पपूर्वक इसका पिशाचत्व छूटने के लिये तू स्नान कर। तब यह इस योनि से छूटकर दिव्य देह को प्राप्त करेगा। उस तीर्थ के बिना इसका उद्धार किसी प्रकार नहीं हो सकता है इसलिये हे सुतीक्ष्ण! तू इस दीन पिशाच की रक्षा कर।

गुरु की यह आज्ञा पाकर सुतीक्ष्णमुनि अग्नि तीर्थ पर पहुँचे और पिशाच के निमित्त संकल्प कर स्नान किया। इस प्रकार तीर्थ में तीन दिन स्नानकर, रामनाथ के दर्शनकर और अग्नितीर्थ का जल लेकर सुतीक्ष्णमुनि अपने आश्रम में आये। उस पिशाचपर तीर्थ का जल छिड़का। तीर्थ के जल का स्पर्श होते ही वह दिव्य देह हो गया। वह अगस्त्य सुतीक्ष्ण और उस आश्रम में रहने-वाले सब मुनियों को बारम्बार प्रणामकर और दिव्य विमान में बैठकर उत्तम नारियों से सेवित स्वर्ग को चला गया। हे मुनिवर्य! अग्नितीर्थ के प्रभाव से दुष्पण्य सा पापी पिशाचयोनि से छूटकर स्वर्ग को गया। अग्नितीर्थ का यह प्रभाव हमने वर्णन किया है। जो व्यक्ति इस अध्याय

को भक्ति से पढ़ेगा वा सुनेगा, वह बहुत दिन तक संसारसुख भोगकर, अन्त में सब पापों से छूटकर सद्गति पावेगा ।

बाईसवाँ अध्याय समाप्त ।

तेईसवाँ अध्याय ।

चक्रतीर्थ की प्रशंसा, देवताओं के यज्ञ करने का वर्णन और सूर्य भगवान् को सुवर्ण के हस्तप्राप्त होने का इतिहास ।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! सब पाप हरनेवाले अग्नितीर्थ में स्नान करके शुद्धचित्त हो। चक्रतीर्थ को जाना चाहिए। जिस मनोरथ से चक्रतीर्थ में स्नान करे, वही मनोरथ सिद्ध हो जाता है। पूर्व काल में अहिर्बुध्न्य नाम ऋषि गन्धमादन-पर्वत में सुदर्शन की उपासना करते थे। उनको आकर राक्षस पीड़ा देने लगे। तब सुदर्शनचक्र ने आकर सब राक्षसों का संहार किया और अहिर्बुध्न्यमुनि की प्रार्थना से तीर्थ में निवास किया। जिसके तट पर अहिर्बुध्न्यमुनि तप करते थे, उस तीर्थ का नाम चक्रतीर्थ पड़ा। उस तीर्थ में स्नान करने से भूत, प्रेत आदि की पीड़ा निवृत्त हो जाती

है। पूर्व काल में सूर्य भगवान् ने इस तीर्थ में स्नान किया, तब उनके कटे हुये हाथ पहले की भांति हो गये और सुवर्ण के हो गये ।

यह सुनकर ऋषियों ने पूछा कि सूर्य भगवान् के हाथ क्योंकर कटे और फिर किस भांति सुवर्ण के हाथ मिले। यह आप वर्णन करें। तब सूतजी कहने लगे, हे मुनिवर्य! पूर्व काल में इन्द्र आदि देवताओं को दैत्यों ने बहुत पीड़ा दी। तब सबों ने विचार किया और इन्द्र को आगे कर ब्रह्माजी के समीप गये। वहां जाकर ब्रह्माजी की भक्ति से स्तुति कर प्रार्थना की, हे महाराज! हमको दैत्य बहुत पीड़ा देते हैं। इसका आप कुछ उपाय बतावें। तब ब्रह्माजी बोले, हे देवताओ! डरो मत, हम आपको उपाय बताते हैं। असुरों के नाश के लिये माहेश्वरयज्ञ का आरम्भ करो। आप सब और सब ऋषि मिलकर गन्धमादन-पर्वत में यह यज्ञ करें। और स्थान में यज्ञ करने से असुर विघ्न करेंगे। गन्धमादनपर्वत में अहिर्बुध्न्यमुनि के तीर्थ में सुदर्शनचक्र ने निवास किया

है, इसलिये वहां राक्षसों का भय नहीं है । तुम सब गन्धमादन में चक्रतीर्थ के समीप यज्ञ करो।

ब्रह्माजी की यह आज्ञा पाकर और बृहस्पति को आगे कर सब देवता गन्धमादन में पहुँचे। वहां अहिर्बुध्न्यमुनि को प्रणाम कर उनके आश्रम के समीप यज्ञवाट बनाया । यज्ञकर्म में निपुण मुनियोंसहित सब देवता असुरों के नाश के लिये यज्ञ करने लगे । उस यज्ञ में बृहस्पति होता हुआ, इन्द्र का पुत्र जयन्त मैत्रावरुण बना, आठवां वसु अच्छावाक हुआ, पराशरमुनि ग्राव बने, अष्टावक्र अध्वर्यु, विश्वामित्र प्रतिप्रस्थाता, वरुण नेष्टा, कुबेर उन्नेता, ब्रह्माजी सविता, वशिष्ठमुनि ब्राह्मणाच्छंसी, शुनःशेफ आग्नीध्र, अग्नि होता, वायु उद्गाता, यमराज स्तोता, अगस्त्यमुनि प्रतिहर्ता, विश्वामित्र का पुत्र सुब्रह्मण्य मधुच्छन्दा, व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी उपद्रष्टा और साक्षात् इन्द्र यजमान बने । सब ऋत्विजों ने मिलकर इन्द्र को माहेश्वरयज्ञ की दीक्षा दी और गन्धमादनपर्वत में यज्ञ होने

लगा । सुदर्शन के प्रभाव से वहां असुरों का प्रवेश न हो सका, इससे निर्विघ्न यज्ञ होने लगा। अग्नि हवि को भक्षण कर प्रज्वलित हुआ । अध्वर्यु ने विधिवत् सब कर्म करके मन्त्रपूत पुरोडाश का हवन किया । उस पुरोडाश का शेष भाग अध्वर्यु ने सब ऋत्विजों को बांट दिया और अति उग्र तेजवाला प्राशित्र नाम पुरोडाश का भाग अध्वर्यु ने सूर्य को दिया । सूर्य ने उसको अपने दोनों हाथों में लिया । हाथ में लेते ही सूर्य के दोनों हाथ कट कर गिर गये । तब सूर्य बहुत व्यग्र हो सब ऋत्विजों से बोले, हे ऋत्विजो ! आप सबके देखते हमारे हाथ इसी पुरोडाश भाग ने काट दिये, इसलिये आप सब हमारे हाथ ठीक कर दें अन्यथा हम तुम्हारे यज्ञ को नष्ट कर देंगे ।

सूर्य का यह वचन सुनकर सब ऋत्विज् व्याकुल हो चिन्तना करने लगे। तब महातेजस्वी अष्टावक्रमुनि बोले, हे ऋत्विजो ! हमारी अवस्था में सैकड़ों ब्रह्मा बीत गये । सबका चरित्र

हम जानते हैं। लोकेश्वर ब्रह्मा के समय में श्यामलापुर के बीच एक हरिहर नाम ब्राह्मण रहता था। एक दिन कोई व्याध बाण चला रहा था। दैवयोग से वह ब्राह्मण बाण के आगे आ गया, अतः बाण लगने से उसके दोनों पैर कट गये। तब सब मुनीश्वरों के कहने से वह ब्राह्मण गन्धमादन में मुनितीर्थ पर किसी प्रकार पहुँचा मुनितीर्थ में स्नान करते ही उसके दोनों पैर पूर्ववत् हो गये। वह मुनितीर्थ यही है। अब इसका नाम चक्रतीर्थ पड़ गया। जो आप सबकी सम्मति हो, तो सूर्य भी इस तीर्थ में स्नान करें। अष्टावक्रमुनि का यह वचन सुनकर सब ऋत्विज् बोले, हे सूर्य! आप भी इस तीर्थ में स्नान करें। जिससे आपके हाथ यथार्थ हो जायँ। तब ऋत्विजों के कहने से सूर्य ने उस तीर्थ में स्नान किया। तब उनके हाथ पहिले से भी उत्तम सुवर्ण के बन गये। उनके हस्त सुवर्ण के देखकर सब ऋत्विज् प्रसन्न हुये। इन्द्रादि देवता भी माहेश्वरयज्ञ समाप्त कर

सब दैत्यों को मारकर प्रसन्न हो स्वर्ग को गये। हे मुनिवर! सब मनुष्यों को अपने मनोरथ सिद्ध होने के लिये इस तीर्थ का सेवन करना चाहिये। विशेष करके अन्धे, कान, बहिरे, लँगड़े, लूले, कुबड़े, गूँगे, टूटे आदि अङ्गहीन मनुष्यों को इस तीर्थ का अवश्य सेवन करना चाहिये। इस तीर्थ के सेवन से हीन अङ्ग पूरा हो जाता है। हे मुनिवर्य! यह चक्रतीर्थ का माहात्म्य हमने कहा। जहां सूर्यभगवान् ने सुवर्ण के हाथ पाये। जो व्यक्ति इस अध्याय को पढ़ेगा अथवा सुनेगा, उसके हीन अङ्ग भी सम्पूर्ण हो जायँगे। मोक्ष की इच्छा से इस तीर्थ का सेवन करेगा, तो मुक्ति पावेगा।

तेईसवाँ अध्याय समाप्त।

चौबीसवाँ अध्याय।

शिवतीर्थ का माहात्म्य और ब्रह्मा, विष्णु के परस्पर कलह होने की कथा।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! चक्रतीर्थ में स्नानकर शिवतीर्थ को जाना चाहिये। शिवतीर्थ

में स्नान करने से करोड़ों महापातक और संसर्ग-दोष नष्ट हो जाते हैं। यहां स्नानकर कालभैरव ब्रह्महत्या से छूटे। ऋषियों ने पूछा, हे सूतजी! कालभैरव रुद्र ने ब्रह्महत्या क्यों की, यह आप वर्णन करें। तब सूतजी कहने लगे कि हे मुनिवर्य! हम यह प्राचीन वृत्तान्त कहते हैं, जिसके सुनने से सब पातक दूर हो जाते हैं।

पूर्व काल में सब देवताओं के सम्मुख ब्रह्माजी और विष्णुजी का परस्पर विवाद हुआ। ब्रह्माजी ने कहा, सब जगत् के कर्ता और निग्रह अनुग्रह करने में समर्थ हम हैं। हमारे तुल्य कोई देवता नहीं है। हमसे अधिक तो कहां से हो सकता है। ब्रह्माजी का यह वचन सुन, हँसकर विष्णुजी बोले, हे ब्रह्माजी! यह अहंकार-पूर्ण वचन आपको नहीं कहना चाहिये। जगत् के कर्ता हम हैं। हमारी इच्छा बिना इस जगत् का जीवन नहीं हो सकता है। हमारे अनुग्रह से तुमने जगत् रचा है। इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णु विवाद कर रहे थे। उसी अवसर में चारों

वेद देह धारणकर वहां आये और यह कहने लगे, हे ब्रह्माजी! हे विष्णुजी! आप दोनों ही जगत् के कर्ता नहीं हैं। जगत्कर्ता तो ईश्वर है। उसकी माया से यह स्थावर जङ्गमरूप जगत् उत्पन्न हुआ है। वह शिव ही जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहारकर्ता हैं। वेदों का यह वचन सुनकर ब्रह्मा और विष्णु बोले, हे वेदो! शिवजी तो मूर्तिमान् हैं और पार्वती से युक्त हैं। वे किस प्रकार सर्वसंगविवर्जित निर्गुण परमेश्वर हो सकते हैं? ब्रह्मा और विष्णु का यह वचन सुनकर सब वेदों का मुख प्रणवरूप धारणकर बोला कि हे देवताओ! शिवजी स्वप्रकाश, निरञ्जन, विश्वाधिक, विश्वकर्ता, सर्वात्मा, स्वतन्त्र और निर्गुण हैं। पार्वती भी उनसे भिन्न नहीं हैं।

हे ब्रह्माजी! शिवजी ही तुमको सृष्टि करने के लिये रजोगुण से युक्त करते हैं और हे विष्णुजी! रक्षा करने के लिये आपको सत्वगुण से युक्त करते हैं। जगत् के संहार के लिये तमोगुण से कालरुद्र को युक्त करते हैं, इसलिये तुम स्वतन्त्र

नहीं हो । स्वतन्त्र शिव ही हैं । इसलिये जगत् के कर्ता हर्ता शिव ही हैं । पार्वती शिव की शक्ति हैं और आनन्दरूप हैं । इसलिये शिव से पृथक् नहीं । सब देवताओं से वन्दनीय सबके कर्ता शिव हैं । शिव का कर्ता कोई नहीं है । लोक में कोई शिव से अधिक नहीं और शिव के तुल्य भी नहीं है । इसलिये तुम दोनों वृथा अहंकार मत करो। प्रणव का यह वचन सुनकर भी ब्रह्मा और विष्णु का अहंकार निवृत्त न हुआ । इसी अवसर में एक बड़ा तेज आकाश में उत्पन्न हुआ । जो कई करोड़ सूर्यों के समान था । उस तेज को देखने के लिये ब्रह्माजी ने एक मुख ऊपर की ओर बनाया और उस पांचवें मुख से तेज को देखने लगे । उस तेज को देखते ही ब्रह्माजी का पांचवां मुख प्रलयाग्नि के समान क्रोध से जल उठा । वह तेज भी नील-लोहित पुरुष बन गया । तब ब्रह्माजी ने उस पुरुष से कहा, हे महादेव ! मैं तुझको जानता हूं । पहले तू मेरे ललाट से उत्पन्न हुआ, इसलिये मेरा पुत्र है । ब्रह्माजी का यह अहंकारयुक्त वचन सुनकर

महादेवजी ने कालभैरव नाम पुरुष को भेजा । शिवजी के अंश से उत्पन्न हुये कालभैरव शूल, टंक, गदा आदि धारणकर ब्रह्माजी से युद्ध करने लगे । बहुत दिन तक युद्ध हुआ । कालभैरव ने ब्रह्माजी के शुक्लवर्ण पांचवें मुख को देखा कि बहुत गर्व से युक्त है । कालभैरव को देखकर पांचवें मुख ने बड़ा क्रोध किया । तब कालभैरव ने ब्रह्माजी का पांचवां शिर काट लिया । शिर कटते ही ब्रह्माजी गिर पड़े और मृत हो गये । तब शिवजी ने उनको फिर जीवदान दिया । तब ब्रह्माजी ने उठकर शिवजी को देखा कि मस्तक पर चन्द्रमा को धारण किए हुए वासुकि आदि नागों के भूषण पहिने, पार्वतीसहित वृषभ पर चढ़े सम्मुख खड़े हैं । उनको देखते ही ब्रह्माजी को ज्ञान प्राप्त हुआ और वे हाथ जोड़कर शिवजी की प्रार्थना करने लगे, हे भगवन् ! आप मेरा अपराध क्षमा करें । इतना कह, शिवजी के चरणों को प्रणाम किया । तब शिवजी ने प्रसन्न हो ब्रह्माजी से कहा, भय मत करो । हमने तुम्हारा अपराध क्षमा किया । काल-

भैरव से शिवजी ने कहा, तुमने ब्रह्माजी का शिर काट लिया, इसलिये ब्रह्महत्या दूर होने के अर्थ ब्रह्माजी का कपाल हाथ में लिये हुए भिक्षा मांगते फिरो। वास्तव में तुमको कुछ हत्या नहीं, परन्तु लोकमर्यादा के लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये। इतना कह, वह ब्रह्माजी का कपाल शिवजी ने कालरुद्र को धारण करा दिया और ब्रह्महत्या नाम अति भयंकर एक कन्या उत्पन्न कर शिवजी ने कालरुद्र के पीछे लगा दी और यह कहा, हे कालरुद्र! तुम इस ब्रह्महत्या की निवृत्ति के लिये सब तीर्थों में स्नान करो। फिर काशी में जावो। तब तीन भाग ब्रह्महत्या नष्ट होगी। केवल एक भाग रह जायगी। उसके निवृत्त करने का उपाय यह है कि दक्षिण-समुद्र में गन्धमादनपर्वत के बीच सब जीवों के कल्याण के लिये हमने तीर्थ बनाया है। उस तीर्थ में जाकर तुम स्नान करो। तब तुमको ब्रह्महत्या छोड़ देगी।

इतना कह शिवजी कैलास को गये और शिवजी की आज्ञानुसार कपाल हाथ में लेकर कालरुद्र

सब लोकों में विचरने लगे। ब्रह्महत्या उनके पीछे २ लगी फिरती। सब पुण्यतीर्थों में स्नानकर कालरुद्र काशी में पहुँचे। तब वह अति दुष्टा ब्रह्महत्या तीन भाग नष्ट हो गई और चौथाई रह गई। तब कालरुद्र गन्धमादनपर्वत को चले और वह चतुर्थांश हत्या भी पीछे लगी। गन्धमादन में पहुँचकर कालरुद्र ने शिवतीर्थ में स्नान किया। स्नान करते ही सम्पूर्ण हत्या दूर हुई। इसी अवसर में शिवजी वहां प्रकट हुये और कालरुद्र से कहा, अब सम्पूर्ण ब्रह्महत्या तुमसे निवृत्त हुई। अब इस कपाल को काशी में किसी स्थान पर रख दो। इतना कह, शिवजी तो अन्तर्धान हुये और कालरुद्र काशी में आये। वहां एक स्थान में वह कपाल स्थापन किया। वह स्थान कपालतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! मुक्ति के देनेवाले महापातक, नरक, क्लेश और महादुःख के हरनेवाले शिवतीर्थ का माहात्म्य हमने वर्णन किया। जो इसको पढ़ेगा अथवा सुनेगा, वह सब दुःखों से छूट जायगा।

चौबीसवाँ अध्याय समाप्त।

पच्चीसवाँ अध्याय ।

शंखतीर्थ का माहात्म्य और वत्सनाभमुनि की अद्भुत कथा ।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! शिवतीर्थ में स्नानकर शंखतीर्थ पर जाना चाहिये । शंखतीर्थ में स्नान करने से कृतघ्न और माता, पिता का अनादर करनेहारे दुष्ट पुरुष भी शुद्ध हो जाते हैं । पूर्व काल में शंखमुनि ने विष्णुभगवान् की प्रसन्नता के लिये गन्धमादनपर्वत में तप किया और अपने नाम से तीर्थ भी बनाया, उसी का नाम शंखतीर्थ हुआ । वहां स्नान करने से कृतघ्न पुरुष भी शुद्ध होते हैं । इस विषय में एक प्राचीन इतिहास हम कहते हैं, जिसके सुनने से मनुष्य मुक्ति पा सकता है ।

पूर्व काल में बड़े तपस्वी, दयालु, शीलवान् और ब्रह्मनिष्ठ वत्सनाभ नाम एक मुनि हुये हैं । उन्होंने ऐसा उग्र तप किया कि एक आसन पर बैठे हुये सैकड़ों वर्ष बीत गये और शरीर के ऊपर बल्मीक अर्थात् सर्प की बांबी बन गई, परन्तु मुनि आसन से न हिले । उनके तप को भङ्ग

करने के लिये इन्द्र ने सात दिन तक अतिघोर वृष्टि की, परन्तु वत्सनाभमुनि उस मूसलधार वर्षा को सह गये और आसन से न उठे । तब इन्द्र ने एक बिजली डाली जिससे मुनि के ऊपर का बल्मीक बिखर गया परन्तु तप के प्रभाव से मुनि बच गये । फिर दिन रात मुनि के शरीर पर वृष्टि होनेलगी, तब धर्म के मन में दया आई कि देखो यह मुनि बड़ा महात्मा है, जो इस दारुण वर्षा में भी तप नहीं छोड़ता । इसलिये इसकी रक्षा करनी चाहिये । यह मन में विचार बड़े भारी महिष का रूप धारणकर धर्मराज मुनि के ऊपर जा खड़े हुये और अपनी पीठपर वर्षा की धार सहने लगे । सात दिन प्रचण्डवृष्टि करके इन्द्र चले गये । तब महिषरूप धर्म भी मुनि के ऊपर से हटकर एक ओर जाखड़े हुये । मुनि की समाधि खुली तब चारों ओर देखा कि वर्षा से पर्वतों के शिखर और हजारों वृक्ष टूटे पड़े हैं । मुनियों के आश्रम जल में डूब रहे हैं । चारों ओर जल ही जल दिखाई देता है । यह देख-

कर वत्सनाभमुनि बहुत प्रसन्न हुये कि ऐसी वृष्टि में भी हमने तप न छोड़ा । फिर सोचा कि अवश्य किसी महात्मा ने इस विपत्ति में हमारी रक्षा की है, नहीं तो जीव क्योंकर बचता ।

यह विचारकर मुनि ने चारों ओर दृष्टि डाली तो देखा कि सम्मुख एक नीलवर्ण अति ऊँचा महिष खड़ा है । उसको देखकर मुनि ने कहा कि देखो कोई २ पशु भी कैसे धर्मात्मा होते हैं । इस महिष ने ही मुझे इस महावृष्टि से बचाया । परमेश्वर इसकी दीर्घ आयुर्दाय करें और यह महात्मा महिष सदा सुखी रहे । यह कहकर वत्सनाभमुनि फिर तप करने लगे । मुनि की तप में यह निष्ठा देख कर धर्मरूप महिष के सब शरीर में आश्चर्य से रोमांच होगया । वत्सनाभमुनि तप में प्रवृत्त हुये, परन्तु पहली भांति परमेश्वर में चित्त न लगा । तब मुनि विचारने लगे कि पाप से मन चञ्चल होता है, परन्तु हमने कोई पाप नहीं किया, फिर हमारा मन क्यों चञ्चल होरहा है ? सोचते २ मन की अस्थिरता

का कारण मुनि जान गये और कहने लगे कि मुझ-सरीखे कृतघ्न को धिक्कार है । ऐसे दुरात्मा कृतघ्न का क्योंकर तप में मन लगे । देखो, इस महात्मा महिष ने मेरे प्राण बचाये, इसका पूजन बिना किये मैं तप में प्रवृत्त हुआ । यह कृतघ्नता का दोष मुझ पर लगा । इसी पाप से मेरा चित्त मलिन हुआ । कृतघ्न पुरुष नरक को जाते हैं । कृतघ्न का उद्धार किसी प्रकार नहीं हो सकता है । जो व्यक्ति माता पिता की सेवा न करे, गुरु को दक्षिणा न दे और कृतघ्नता करे, उनके लिये प्राणत्याग के बिना और कोई प्रायश्चित्त नहीं । इसलिये मैं भी इस पाप के प्रायश्चित्त के निमित्त प्राण त्यागता हूं । यह मन में निश्चयकर वत्सनाभमुनि एक पर्वत के ऊंचे शिखर पर चढ़े और प्राणत्याग करने के लिये वहां से गिरना चाहा, तब धर्म महिष का रूप छोड़कर मुनि के समीप गये और कहा, हे वत्सनाभ ! प्राण मत त्याग, बहुत वर्षन तक जीता रह । तेरे समान कोई धर्मनिष्ठ नहीं है । मैं धर्म हूं और तेरी निष्ठा देखकर बहुत प्रसन्न

हुआ हूं । यद्यपि प्राणत्याग के विना कृतघ्न की निष्कृति नहीं होती, परन्तु तू धर्मनिष्ठ है, इसलिये तुझे एक सुगम उपाय बताता हूं ।

गन्धमादनपर्वत में शंखतीर्थ है । वहां जाकर तू स्नान कर, तब शुद्ध हो जायगा और चित्त भी निर्मल हो जायगा । तब तू दिव्यज्ञान पाकर मुक्त होगा । हे योगीन्द्र ! मैं धर्म हूं और तुझसे सत्य कहता हूं । धर्म का यह वचन सुनकर वत्सनाभमुनि गन्धमादनपर्वत को चले । वहां पहुँचकर शंखतीर्थ में स्नान किया । स्नान करते ही मन निर्मल हो गया । फिर बहुत काल तक वत्सनाभमुनि जीते रहे । अन्त में दिव्यज्ञान पाकर मुक्त हुये ।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! शंखतीर्थ का वैभव हमने वर्णन किया । जिस तीर्थ में स्नान करने से कृतघ्न भी शुद्ध हो जाता है । माता-पिता का पोषण न करे, गुरुदक्षिणा न दे और कृतघ्नता करे, उनकी निष्कृति मरण के विना नहीं हो सकती, परन्तु इस तीर्थ में स्नान करने से ये सब

निष्पाप हो जाते हैं । शंखतीर्थ में स्नान करने से कृतघ्नता दूर हो जाती है और पापों की तो कथा ही क्या है । जो पुरुष इस अध्याय को पढ़ता है, वह सब पापों से छूटकर शुद्धचित्त हो सत्यलोक को जाता है । वहां बहुत काल तक ब्रह्माजी के समीप सुखपूर्वक निवासकर मुक्ति पाता है ।

पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ।

छब्बीसवाँ अध्याय ।

गंगातीर्थ यमुनातीर्थ और गयातीर्थ का माहात्म्य, रैक्रमुनि का विचित्र इतिहास और जातश्रुति राजा की अद्भुत कथा ।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! शंखतीर्थ में स्नानकर गङ्गातीर्थ, यमुनातीर्थ और गयातीर्थ को क्रम से जाना चाहिए । ये तीन तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं और स्नान करनेवाले मनुष्य को सब प्रकार के पाप, रोग, अज्ञान आदि हरकर मोक्ष देते हैं । इन तीर्थों में स्नानकर जातश्रुति नाम राजा ने रैक्रमुनि से दिव्य ज्ञान पाया । यह सूतजी का वचन सुनकर शौनक आदि मुनियों ने पूछा, हे सूतजी ! गङ्गा,

यमुना और गया गन्धमादनपर्वत में क्योंकर आईं। इन तीनों में स्नानकर महाराज जातश्रुति ने रैक्कमुनि से दिव्यज्ञान किस प्रकार पाया। यह आप वर्णन करें।

तब सूतजी कहने लगे, हे मुनिवर्य! पूर्वकाल में रैक्कमुनि गन्धमादनपर्वत में तप करते थे। वे मुनि जन्म से पंगु थे, इसलिये दूर के तीर्थों में नहीं जा सक्के थे। केवल गन्धमादन के तीर्थों में शकट अर्थात् गाड़ी पर चढ़कर जाया करते थे। तपोबल से उन्होंने परमायु भी प्राप्त की थी। शकट का नाम युग्य भी है। रैक्कमुनि शकट पर चढ़े फिरते थे, इसलिये उनको लोग सयुग्य भी कहते थे। ग्रीष्मऋतु में पञ्चाग्नि में, वर्षाऋतु में कण्ठप्रमाण जल में तप करते २ शरीर शुष्क होगया और सम्पूर्ण देह में पामा(खुजली) हो गई, परन्तु मुनि ने तप न छोड़ा। वे खुजली भी खुजलाते और तप भी करते थे।

एक समय रैक्कमुनि की इच्छा हुई कि गङ्गा, यमुना और गया के दर्शन और इनमें स्नान

करना चाहिये, परन्तु हम जन्म के पंगु क्योंकर जा सकें। हमारा शकट भी इतनी दूर जाने के योग्य नहीं है। फिर विचारा कि हमें अपने बड़े भारी तपोबल का भी बल है, इसलिये इन तीर्थों को यहां ही आवाहन करते हैं। यह मन में निश्चयकर पूर्वाभिमुख बैठकर तीन आचमनकर मन्त्रबल से तीनों तीर्थों का आवाहन किया। क्षणमात्र में भूमि को भेदनकर गया, गङ्गा और यमुना की तीन धाराएँ पाताल से निकलीं और तीनों मनुष्य का रूप धारणकर रैक्कमुनि से बोलीं, हे रैक्कमुने! तुम्हारे मन्त्र से खिंची हुई हम तीनों आ गईं। अब जो तुम कहो सो करें। उनका यह वचन सुनकर मुनि ने ध्यान छोड़कर नेत्र खोले और तीनों तीर्थों को सम्मुख खड़े देखकर प्रसन्न हुये। मुनि ने भक्तिपूर्वक उनका पूजनकर यह प्रार्थना की कि तुम तीनों इस गन्धमादनपर्वत में निवास करो। भूमि को भेदनकर तुम तीनों जहां से निकली हो वे तुम्हारे नाम से बड़े तीर्थ हों। मुनि का यह वचन सुनकर

(तथास्तु) कहकर तीनों अन्तर्धान हुईं। उस दिन से तीनों तीर्थ गन्धमादनपर्वत में आये और जहां २ वे निकले उनका नाम क्रम से गङ्गातीर्थ, यमुनातीर्थ और गयातीर्थ हुआ।

ये तीनों तीर्थ रैक्वमुनि के प्रभाव से गन्धमादन में प्रकट हुये। जो पुरुष इन तीर्थों में स्नान करता है वह अवश्य ही दिव्यज्ञान पाता है। रैक्वमुनि भी अपने आवाहन किये तीर्थों में नित्यस्नान करते और तप करते। इसी अवसर में बड़ा धर्मात्मा जातश्रुति नाम का राजा भी था। वह सदा ब्राह्मणों को धन और अन्न बड़ी श्रद्धा से देता था, इसलिये उस राजा को लोक श्रद्धादेय भी कहते थे। अन्न आदि देने के समय राजा बहुत मधुर वाक्य याचकों से कहता, इसलिये उसको बहुवाक्य भी कहते थे। वह राजा जातश्रुति का पुत्र और पुत्र नाम राजा का पौत्र था। नगर, ग्राम, वन, चतुष्पथ आदि सब स्थानों में उस राजा ने अन्न के सदाव्रत लगा दिये थे। सब देशों में यह घोषणा करा दी थी कि

जिसको अन्नपान चाहिये, वह हमारे सदाव्रतों में आवे। इस प्रकार अतिदानी राजा के गुण सर्वत्र प्रसिद्ध हो गये। राजा के ऊपर अनुग्रह करने के लिये देवर्षि हंसों का रूप धारणकर पंक्तिबांध ग्रीष्मऋतु में रात्रि के समय राजा के ऊपर से उड़ २ जाने लगे। उनमें से पिछला हंस राजा को सुनाकर अगले हंस से हँसकर बोला, हे भल्लाक्ष! आगे नहीं देखता और उड़ा ही चला जाता है। राजा जातश्रुति आगे महल पर है, उसका पूजन विना किये अन्धे की भांति चला ही जाता है। ब्रह्मलोक पर्यन्त जिसका दुराधर्ष तेज व्याप्त हो रहा है। जो तू इस राजर्षि को उल्लङ्घन करके जायगा, तो इसका अतिजाज्वल्यमान तेज तुझे दग्ध कर देगा। यह सुनकर अगला हंस कहने लगा, रे मूढ़! इस धूर्त की तू क्यों प्रशंसा करता है। यह तो पशु के तुल्य है। लोहार की धौंकनी की भांति वृथा श्वास लेता है। यह राजा धर्म का रहस्य कुछ भी नहीं जानता है। जिस प्रकार रैक्वमुनि जानता है,

ऐसा धर्मतत्त्व और कोई नहीं जानता है। रैक्कमुनि के पुण्य की इयत्ता कौन कर सकता है। आकाश के तारे और भूमि के पांशु भी गिने जा सकते हैं। परन्तु रैक्कमुनि के पुण्य की गणना नहीं हो सकती है। यज्ञ, दान आदि धर्म सब नश्वर (नाश होनेवाले) हैं। केवल ब्रह्मज्ञान ही स्थिर रहता है। वह ब्रह्मज्ञान रैक्कमुनि ने पाया है, इसलिये वह प्रशंसा के योग्य है।

इस राजा का धर्म भी कुछ प्रशंसा के योग्य नहीं है, ज्ञान की तो बात ही दूर है। ज्ञान तो योगियों को भी दुर्लभ है, इसलिये इस तुच्छ राजा की क्या प्रशंसा करता है। रैक्कमुनि की प्रशंसा कर। रैक्कमुनि जन्म से पंगु है, इसलिये उसने अपने आश्रम के समीप गया, गङ्गा और यमुना का आवाहन मन्त्र से किया है। रैक्कमुनि के धर्म में त्रैलोक्य के धर्म समा जाते हैं। ब्रह्मवेत्ता रैक्कमुनि का धर्मसमूह तीन लोक के भी धर्मों में नहीं समा सकता। इसप्रकार कहते हुये वे हंसरूप ऋषि ब्रह्मलोक को चले गये। राजा ने भी

रैक्कमुनि की सब प्रशंसा सुनी और उदास होकर विचार किया कि देखो हंस ने मुझे निकृष्ट कहा और रैक्कमुनि की इतनी प्रशंसा की। धन्य है रैक्कमुनि, जिसकी प्रशंसा पक्षी भी करते हैं। अब मुझे भी यही उचित है कि राज्य छोड़कर रैक्कमुनि की शरण में जाऊं। वह दयालुमुनि शरण में प्राप्त हुये मुझको अवश्य ही ज्ञानोपदेश करेगा।

इस प्रकार सोच विचार करते किसी प्रकार वह रात्रि राजा ने व्यतीत की और प्रभात हुआ। वन्दी लोग राजस्तुति पढ़ने लगे। अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। राजा भी शय्या से उठा और सारथि को बुलाकर आज्ञा दी कि, क्षेत्र, वन नदियों के तट और तीर्थ आदि सब स्थानों में जहां २ मुनियों के आश्रम हों, वहां २ सब धर्मों के आश्रय ब्रह्मवेत्ता रैक्कमुनि को ढूंढ़ो। रैक्कमुनि जन्म से पंगु हैं, इसलिये गाड़ी पर चढ़े हुए तीर्थों में घूमते हैं। उनका पता लगाकर शीघ्र हमारे पास आवो। राजा की यह आज्ञा पाकर सारथि रैक्कमुनि को ढूंढ़ने निकला। पर्वतों की

गुफाओं में, नदियों के तटों पर, मुनियों के आश्रमों में रैक्वमुनि को ढूंढ़ता २ गन्धमादन-पर्वत में पहुँचा। वहां देखा कि रैक्वमुनि शकट पर बैठे हुये पामा को खुजला रहे हैं और निरन्तर ब्रह्मानन्द में मग्न हैं।

सारथि ने भी लक्षणों से पहिंचाना, यही रैक्वमुनि होंगे। रैक्वमुनि के समीप में जाकर प्रणाम-कर सारथि ने पूछा क्या रैक्वमुनि आप ही हैं? मुनि ने कहा, भाई! मैं ही रैक्वमुनि हूं। सारथि ने मुनि की बातचीत से यह भी जाना कि कुटुम्ब के भरण-पोषण के लिये इनको धन की इच्छा है। इसप्रकार सारथि ने रैक्वमुनि का पता लगाकर सब वृत्तान्त आकर राजा से कहा। राजा भी सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और छहसौ उत्तम गौ, एक भार सुवर्ण और एक बहुत उत्तम रथ जिसमें अश्वतरी (खच्चर) जोत रक्खी थीं, मुनि के लिये अपने संग लेकर चला। कुछ दिनोंमें गन्धमादन में पहुँचकर और रैक्वमुनि के समीप जाकर प्रणतिपूर्वक प्रार्थना की, हे महाराज!

ये छहसौ बहुत उत्तम गौ, एक भार सुवर्ण और दो अश्वतरियों से युक्त रथ आप ग्रहण करें, और मुझे अद्वैत ब्रह्मज्ञान का उपदेश दें। राजा का यह वचन सुनकर रैक्वमुनि बोले, हे राजन्! इस धन को तू ही रख, इस थोड़े धन से हमारा निर्वाह नहीं हो सकता है। कई कल्प तक हमको जीना है। इतने धन से हमारे कुटुम्ब का निर्वाह क्योंकर हो। यदि इससे सौगुना धन भी हो, तो भी हमारे लिये थोड़ा है। यह सुनकर राजा बोला, हे महाराज! मैं यह धन आपको ब्रह्मज्ञान के मूल्यरूप में नहीं देता हूँ। आप धन लें, चाहे न लें, परन्तु कृपाकर मुझे निष्कल अद्वैतज्ञान का उपदेश दें।

राजा का यह वचन सुनकर मुनि कहने लगे, हे राजन्! जो पुरुष संसार से विरक्त हो और जिसके पाप, पुण्य आदि प्रारब्ध कर्म नाश को प्राप्त होजायँ, वह ज्ञानोपदेश का अधिकारी होता है। पुण्य, पाप आदि से पुनर्जन्म होता है। यद्यपि तू संसार से विरक्त हुआ है, परन्तु पुण्य,

पाप का क्षय नहीं हुआ, भोग किये विना उसका क्षय नहीं होता । हे राजन्! तू हमारी शरण मे प्राप्त हुआ है, इसलिये हम तुझे पुण्य और पाप के क्षय का उपाय बताते हैं । हमारे आवाहन किये ये तीन तीर्थ हैं । इनमें स्नान करने से प्रारब्ध कर्म का नाश होता है, इसलिये तू भी गङ्गातीर्थ, यमुनातीर्थ और गयातीर्थ में स्नान कर । जिससे तू शुद्धचित्त होजाय । तब हम ज्ञान का उपदेश करेंगे । मुनि की यह आज्ञा पाकर प्रसन्न हो राजा ने तीनों तीर्थों में स्नान किया । स्नान करते ही राजा का चित्त निर्मल होगया और वह स्नानकर रैक्कमुनि के समीप में आया ।

मुनि ने राजा को दिव्यज्ञान का उपदेश किया । राजा भी दिव्य ज्ञान के पाते ही ब्रह्मरूप होगया और माया का आवरण दूर हो सर्वत्र घट-पट आदि पदार्थों में भी ब्रह्मदृष्टि होगई । इसप्रकार तीनों तीर्थों में स्नानकर राजा ने वह दिव्यज्ञान पाया, जो मुनियों को भी दुर्लभ है । हे मुनिवर्य ! तीनों तीर्थों का यह प्रभाव हमने

वर्णन किया । जो व्यक्ति इस अध्याय को पढ़ता है, वह माया को जीतकर ब्रह्मरूप हो जाता है ।

छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।

सत्ताईसवाँ अध्याय ।

कोटितीर्थ का माहात्म्य और श्रीकृष्णभगवान् के द्वारा कंसवध का वर्णन ।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! गङ्गा आदि तीनों तीर्थों में स्नानकर कोटितीर्थ को जाना चाहिये । कोटितीर्थ सब पापों के विघ्न और दुःस्वप्न का नाश करनेवाला है । सब प्रकार की सम्पत्ति, पुण्य और शान्ति को देता है । कोटितीर्थ के स्मरणमात्र से सब पाप कट जाते हैं । वह तीर्थ रामचन्द्रजी ने अपने धनुष् की कोटि (अग्रभाग) से बनाया है ।

जब रामचन्द्रजी रावण को मारकर आये, तब ब्रह्महत्या निवृत्त होने के लिये गन्धमादनपर्वत में उन्होंने एक शिवलिङ्ग का स्थापन किया । उस शिवलिङ्ग के स्नान के लिये जब वहाँ जल न मिला, तब रामचन्द्रजी ने गङ्गा का स्मरण

कर धनुष् की कोटि से भूमि का भेदन किया। वह धनुष् का अग्रभाग पाताल तक पहुँचा। उसको रामचन्द्रजी ने भूमि से खींचा। उसके साथ ही गङ्गा की धारा बह निकली। उस दिव्य जल से रामचन्द्रजी ने अपने स्थापन किये लिङ्ग को स्नान कराया। रामचन्द्रजी ने धनुष् की कोटि से इस तीर्थ को बनाया, इसलिये यह कोटितीर्थ कहलाया। गन्धमादन के सब तीर्थों में स्नानकर शेष पाप की निवृत्ति के लिये कोटितीर्थ में स्नान करना चाहिये। अनेक जन्म के संचित बड़े २ पाप जो और तीर्थों में नहीं नष्ट होते, वे कोटितीर्थ में स्नान करते ही निवृत्त होजाते हैं। जो पुरुष प्रथम कोटितीर्थ में ही स्नान करे उसको और तीर्थों में स्नान करना वृथा है।

यह सुनकर शौनक आदि मुनि बोले, हे सूतजी! हमको एक बड़ा संशय उत्पन्न हुआ, उसको आप दूर कीजिये। यदि कोटितीर्थ में स्नानकरने के पीछे और तीर्थ वृथा हैं, तो धर्मतीर्थ आदि में मनुष्य क्यों भटकते फिरें। सब तीर्थों

को छोड़कर पहले कोटितीर्थ में ही सब स्नान किया करें, और तीर्थों में न जायँ। फिर मनुष्य और तीर्थों में क्यों जाते हैं? यह संदेह आप निवृत्त करें। मुनियों का यह प्रश्न सुनकर सूतजी कहने लगे, हे मुनिवर्य! आपने बड़े रहस्य की बात पूछी, जो शिवजी ने नारद से कहा, वह हम वर्णन करते हैं। आप श्रद्धा के साथ सुनिए। किसी तीर्थ को जाता हुआ मनुष्यमार्ग में जो तीर्थ, देवालय आदि मिलें, यदि उनका सेवन न करे तो वह नरक को जाता है। यह शास्त्र का निश्चय है। इसी प्रकार कोटितीर्थ को जाने के समय जो व्यक्ति गन्धमादन के और तीर्थों में स्नान न करे वह चाण्डाल के तुल्य होता है, इसलिये हे मुनिवर्य! चक्रतीर्थ आदि सब तीर्थों में स्नान करना चाहिये। निष्पाप होकर कोटितीर्थ में स्नान करना चाहिये। कोटितीर्थ में स्नान करके गन्धमादन पर्वत में क्षणमात्र भी न रहे। निष्पाप होकर अपने स्थान को चला जाय। रामचन्द्रजी

भी कोटितीर्थ के जल से स्नानकर और रामनाथ को स्नान कराकर ब्रह्महत्या से मुक्त हो सुग्रीव-आदि वानरोंसहित पुष्पकविमान में बैठकर तत्काल अयोध्या को चले गये थे। अतः कोटि-तीर्थ में स्नानकर निष्पाप हो, उसी क्षण अपने स्थान को जाना चाहिये । यह कोटितीर्थ सब तीर्थों में उत्तम है, जिसे रामचन्द्रजी ने रामनाथ-लिङ्ग के स्नान के लिये बनाया है । जिसमें साक्षात् गङ्गा निवास करती हैं। जिस तीर्थ में साक्षात् तारकब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी ने स्नान किया। जिस तीर्थ में स्नानकर श्रीकृष्ण भी अपने मातुल कंस की हत्या से छूटे । उस कोटितीर्थ की महिमा कौन वर्णनकर सकता है ।

इतनी कथा सुनकर ऋषियों ने पूछा, हे सूतजी ! श्रीकृष्णभगवान् ने अपने मातुल कंस को किस कारण मारा और उसकी हत्या से क्योंकर छूटे । यह आप वर्णन करें । तब सूतजी कहने लगे, हे मुनिवर्य ! यदु के वंश में शूर का पुत्र वसुदेव हुआ है । वसुदेव ने देवक की पुत्री

और कंस की बहिन देवकी से विवाह किया । विवाह के अनन्तर वसुदेव-देवकी रथ में बैठे और कंस रथ को हांकने लगा । उस अवसर में आकाशवाणी हुई, हे कंस ! जिस बहिन को तू रथ में बैठाये लिये जाता है, इसकी आठवीं सन्तान तुझे मारेगी । यह आकाशवाणी सुन-कर कंस ने खड्ग निकाला और देवकी को मारने की इच्छा की । तब वसुदेव बोले, हे कंस ! इस तेरी बहिन में जो सन्तान होगी, हम सब तुमको दे देंगे, उसी का वध करना, इसको मत मारो, इससे तुमको कुछ भय नहीं । यह वसुदेव का वचन मानकर कंस ने देवकी को न मारा । परन्तु वसुदेव और देवकी को बेड़ी पहिनाकर बंदीखाने में रख दिया । देवकी में क्रम से छह पुत्र उत्पन्न हुए। वे सब वसुदेव ने कंस के अर्पण किये और कंस ने भी उन सबका वध किया । सातवां गर्भ देवकी के फिर रहा । उसमें शेष-जी का अंश था । तब महामाया विष्णुभगवान् की प्रेरणा से उस गर्भ को देवकी के उदर से

निकालकर नन्द गोप की पत्नी रोहिणी के उदर में रख आई, और लोक में यह प्रसिद्ध हुआ कि देवकी का गर्भ गिर गया। फिर देवकी के आठवां गर्भ रहा। उसमें साक्षात् विष्णुभगवान् थे। दश मास पूरे होने पर देवकी के गर्भ से विष्णुभगवान् का अवतार हुआ। वह बालक चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म धारे मुकुट और वनमाला से भूषित था। उस विष्णुरूप बालक को देखकर अतिहर्षित हो वसुदेवजी स्तुति करने लगे।

वसुदेव उवाच—

विश्वं भवान् विश्वपतिस्त्वमेव विश्वस्य योनिस्त्वयि विश्वमास्ते ॥ महान्प्रधानश्च विराट् स्वराट् च सम्राडसि त्वं भगवन्समस्तम् ॥ १ ॥ एवं जगत्कारणभूतधाम्ने नारायणायामितविक्रमाय ॥ श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोनमः कृत्रिममानुषाय ॥ २ ॥

इस प्रकार स्तुति सुनकर प्रसन्न हो श्रीभगवान् बोले, हे पितः! हम कंस को मारेंगे आप कुछ भय मत करो। नन्द गोप की पत्नी यशोदा में कन्यारूप हमारी माया उत्पन्न हुई है। अब आप

हमको यशोदा की शय्या में रख आवो और उस कन्या को यहां लाकर देवकी के समीप सुला दो। वसुदेवजी ने भी इसी भांति सब बात की। कन्या को लाकर देवकी की शय्या में रख दिया। थोड़ी देर में कन्या रोदन करने लगी। उसका रोना सुन घबड़ाकर कंस वहां आया और उस कन्या को उठाकर एक शिला पर पटका, परन्तु वह कन्या उसके हाथ से छूटकर आकाश में गई और कंस से कहा, रे मूढ़, पातकी! तेरा शत्रु उत्पन्न हो गया है, उसको ढूंढ़कर मार। इतना कह, वह महामाया अपने स्थान को गई जो पूजन करने से मनुष्यों के मनोरथ सिद्ध करती है। कंस भी महामाया का वचन सुनकर बहुत व्याकुल हुआ और पूतना आदि बालग्रहों को आज्ञा दी कि बालकों को मारो। वे भी गोकुल में गये, परन्तु कृष्ण भगवान् ने सबको यमलोक पहुँचा दिया। बलदेव और कृष्ण दोनों भाई दिन २ वृद्धि को प्राप्त होने लगे।

अनेक प्रकार की बालक्रीड़ा करते, वंशी

बजाते, मोरमुकुट धारते तथा गोपों के साथ गौ चराते। कंस भी उनके सब व्यवहार सुनकर भयभीत था। एक समय कंस ने अक्रूर को भेजकर बलदेव और श्रीकृष्णचन्द्र को बुलाया। वे भी अक्रूर के साथ मथुरा में पहुँचे। वहां मार्ग में देखा कि एक बड़ा भारी धनुष् है, उसकी प्रत्यंचा को सब चढ़ाते हैं, परन्तु किसी से नहीं चढ़ती। तब बलदेवजी ने उस धनुष् को उठाकर ऐसा खींचा कि उसके दो टुकड़े हो गये। तब वे धनुष् के रक्षक बलदेव और श्रीकृष्णजी को मारने दौड़े। परन्तु इन दोनों भाइयों ने उन सबका संहार किया और धनुष् के दोनों खण्ड हाथ में ले आगे चले। कंस के द्वार पर कुवलयापीड नाम मस्त हाथी खड़ा था, वह इनको मारने आया। परन्तु उस हाथी को भी मार गिराया और उसके दांत उखाड़कर, दोनों भाइयों ने हाथ में लिये आगे चले।

कंस के भेजे हुये बड़े बली कई मल्ल मिले, उन सबको भी मारा और कंस के समीप पहुँचे। कंस भी एक बड़े ऊंचे सिंहासन पर सभा में बैठा

था। श्रीकृष्णचन्द्र ने जाते ही कंस के पैर पकड़कर सिंहासन से नीचे गिरा दिया और यमलोक को पहुँचा दिया। कंस के आठ भाई थे, उनके भी बलदेवजी ने एक २ मूका मारकर प्राण ले लिये। इस प्रकार कंस का संहार कर, अपने माता-पिता देवकी और वसुदेव को, बन्दीखाने से छुटाया, सबका आश्वासन किया और उग्रसेन को मथुरा का राज्य दिया। श्रीकृष्णचन्द्रजी ने इस प्रकार देवता और ब्राह्मणों से शत्रुता करनेवाले अपने मातुल कंस को मारा। एक समय नारद आदि देवर्षि श्रीकृष्णभगवान् के दर्शनों को आये। सत्कारपूर्वक पूजन करके श्रीकृष्णचन्द्र ने उनको आसन पर बैठाया और पूछा, हे मुनिवर्य! हमने अपने मातुल कंस का वध किया है, इसलिये आप कोई प्रायश्चित्त हमको बताओ, जिससे यह हत्या दूर हो। श्रीकृष्णभगवान् का यह वचन सुनकर नारदजी कहने लगे कि आप नित्य शुद्धबुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप साक्षात् परमात्मा हैं। आपको पुण्य और पाप नहीं लग

सकता, तो भी लोकमर्यादा के लिये आपको प्रायश्चित्त करना चाहिये।

दक्षिण समुद्र में रामसेतु के बीच, गन्धमादन पर्वत में रामचन्द्रजी ने रामनाथनाम शिवलिङ्ग स्थापन किया। उसके अभिषेक के लिये, अपने धनुष् की कोटि करके तीर्थ रचा। उस कोटितीर्थ में स्नानकर रावण के वध का पातक रामचन्द्रजी ने निवृत्त किया। उस तीर्थ में आप भी स्नान करें, तो यह मातुलहत्या निवृत्त होगी। कोटितीर्थ में स्नान करने से ब्रह्महत्या आदि पातक निवृत्त होते हैं और आयुर्दाय, आरोग्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। नारद का यह वचन सुनकर, उन मुनियों को सत्कारपूर्वक विसर्जन कर, श्रीकृष्णचन्द्र कोटितीर्थ को चले। वहां पहुँचकर संकल्प करके तीर्थ में स्नान किया और अनेक दान दिये। तब मातुलहत्या निवृत्त हुई। श्रीकृष्णचन्द्र भी निष्पाप होकर रामनाथ का दर्शनकर मथुरा को आये। हे मुनिवर्य! कोटितीर्थ का ऐसा प्रभाव है। कोटितीर्थ के

समान तीर्थ भूमण्डल में दूसरा नहीं है। इस तीर्थ में स्नान करने से ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सब देवता प्रसन्न होते हैं। हे मुनिवर्य! इस अध्याय को जो मनुष्य पढ़ें अथवा श्रवण करें, वह ब्रह्महत्या आदि पापों से छूटकर मुक्ति पाते हैं।

सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त।

अट्ठाईसवाँ अध्याय।

साध्यामृततीर्थ का माहात्म्य तथा उर्वशी और पुरूरवा की विचित्र कथा।

सूतजी कहते हैं कि हे मुनिवर्य! कोटितीर्थ में स्नानकर साध्यामृतनाम तीर्थ को जाय। सब पाप, दुःख और दारिद्र्य का हरनेवाला और सब मनोरथ सिद्ध करनेवाला, वह तीर्थ गन्धमादन में है। तप, व्रत, ब्रह्मचर्य, यज्ञ, दान आदि से वह गति नहीं प्राप्त होती, जो साध्यामृततीर्थ में स्नान करने से मिलती है। उस तीर्थ का जल स्पर्श होते ही, सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जो पुरुष साध्यामृत के जल में अघमर्षण करे, वह नि-

ष्पाप होकर विष्णुलोक को जाता है। पापी मनुष्य भी साध्यामृततीर्थ में स्नानकर नरक को नहीं जाते। साध्यामृततीर्थ में जब तक अस्थि पड़ी रहे, तब तक वह जीव शिवलोक में निवास करे। जिस प्रकार सूर्य अन्धकार को दूर करते हैं, उसी प्रकार साध्यामृततीर्थ पापहरण में समर्थ है। जिस तीर्थ में स्नानकर राजा पुरूरवा तुम्बुरु के शाप से छूटा और फिर भी उसका उर्वशी से समागम हुआ।

यह सुन ऋषियों ने पूछा, हे सूतजी! मनुष्य होकर राजा पुरूरवा ने उर्वशी क्योंकर पाई और तुम्बुरु ने किस हेतु राजा को शाप दिया। यह आप विस्तारसहित वर्णन करें। तब सूतजी कहने लगे कि हे मुनिवर्य! पूर्व काल में बड़ा प्रतापी और धर्मात्मा पुरूरवानाम एक राजा हुआ। वह राजा बड़े २ यज्ञ करता और दान देता था। उसके राज्य करते २ उर्वशीनाम की एक अप्सरा मित्रावरुण के शाप से मर्त्यलोक में आई। तब वह राजा पुरूरवा के नगर के समीप विचरने लगी और एक उपवन में बैठकर वीणा बजाती हुई, मीठे स्वर से गाने लगी। उसी अवसर में राजा भी घोड़े पर चढ़कर उसी उपवन में विहार करने के हेतु गया। उसने उर्वशी को देखा। देखते ही राजा कामवश हो गया और उर्वशी से कहा कि हे सुन्दरि! मेरी भार्या हो जा। उर्वशी भी राजा का रूप देखकर मोहित हो रही थी। वह बोली कि हे राजन्! जो आप मेरा एक नियम अङ्गीकार करें, तो मैं आपके समीप रहूं। वह नियम यह है कि आपको कभी नग्न न देखूंगी, कभी मुझे उच्छिष्ट मत देना और केवल घृत ही मैं भोजन करूंगी, और ये दो मेष अर्थात् मेढ़े मेरे पुत्र के तुल्य हैं। आप इनकी भली भांति रक्षा करना।

राजा ने ये सब नियम स्वीकार किये। वह उर्वशी को साथ लेकर राजधानी में आया और उर्वशी के साथ आनन्द भोगने लगा। उर्वशी का भी राजा में इतना अनुराग बढ़ा कि स्वर्ग को भूल गइ और इकसाठि वर्ष पुरूरवा के समीप बीत गये। उर्वशी के विना स्वर्ग भी

शून्य दीखता था, इसलिये विश्वावसु गन्धर्व ने विचार किया कि मैं उर्वशी को ले आऊं । यह विचार कई गन्धर्व साथ लेकर विश्वावसु मर्त्य-लोक में आया और दोनों मेषों में से एक मेष चुरा कर आकाश को उड़ा । तब उर्वशी पुकारी कि मेरे पुत्र को कौन हरे लिये जाता है ? अब मैं क्या करूं । राजा पुरूरवा उर्वशी का पुकारना सुनकर भी न उठा कि मुझ नग्न को न देखे । इतने में दूसरे मेष को भी एक गन्धर्व ले उड़ा । उसका शब्द सुनकर वह उर्वशी बहुत व्याकुल हो गई और कहने लगी कि अब मैं अनाथ हूं, मेरे पुत्र को कोई लिये जाता है, मैं क्या करूं और किसकी शरण में जाऊं ।

उर्वशी के दीन तथा दुःख भरे वचन को सुनकर राजा ने सोचा कि चारों ओर अन्धकार है । मुझ नग्न को तो इस समय कोई नहीं देख सकता इसलिये मेषों की रक्षा करनी चाहिये । यह विचारकर राजा खड्ग लेकर खड़ा हुआ और ललकारा कि रे दुष्ट ! खड़ा रह, भागने न

पावेगा । इसी अवसर में गन्धर्वों ने बिजली चमकाकर प्रकाश कर दिया । तब उर्वशी ने राजा को नग्न देखा । वह देखते ही अपने नियम के अनुसार स्वर्ग को चली गई । गन्धर्व भी दोनों मेष छोड़कर उर्वशी के साथ गये । राजा मेषों को लेकर प्रसन्न होता हुआ अपनी शय्या के समीप आया, परन्तु उर्वशी को न पाया । तब राजा विरह से व्याकुल होकर उन्मत्त की भांति पृथ्वी पर भ्रमण करने लगा । कुछ काल में कुरुक्षेत्र पर पहुँचा । वहां देखा कि एक कमलों से शोभित सरोवर में चार अप्सराओं के सहित उर्वशी जलक्रीड़ा कर रही है । राजा देखते ही प्रसन्न हो गया और कहने लगा कि हे प्राणप्रिये ! मुझे छोड़कर कहां चली आई ?

तब उर्वशी बोली कि हे महाराज ! आपसे मुझ में गर्भ रहा है । इसलिये आप एक वर्ष के अनन्तर इसी स्थान में आना । तब मैं आप-के साथ एक रात्रि रहूंगी और आपका पुत्र आपके अर्पण करूंगी । राजा यह सुनकर प्रसन्न

होकर अपनी राजधानी को आया । उर्वशी ने अपनी सखियों से कहा कि हे सखियो ! यह वही उत्तम पुरुष है, जिसके समीप मैंने सुखपूर्वक कालक्षेप किया और अब भी उसी के विरह से व्याकुल रहती हूं। उर्वशी का यह वचन सुनकर सखियों ने भी कहा कि जो ऐसे पुरुष का समागम हमको हो जाय, तो हम सब कभी स्वर्ग को न जायँ । उसी के समीप रहें। एक वर्ष बीतने पर, राजा भी वहां आया और गन्धर्वों के सहित उर्वशी भी वहां आई। उर्वशी ने एक बालक राजा को दिया और एक रात्रि राजा के साथ रही, फिर वह गर्भवती हुई । उसने ऐसा गर्भ धारण किया, जिससे कि पांच पुत्र उत्पन्न हों । उसने राजा से यह भी कहा कि इन गन्धर्वों से वर मांगो । ये आपको अवश्य वर देंगे ।

तब राजा ने गन्धर्वों से कहा कि सम्पूर्ण शत्रु मैंने जीत लिये । खज़ाना पूर्ण है, अब यही वर चाहता हूं कि उर्वशी के साथ रहूं। तब गन्धर्वों ने प्रसन्न होकर एक अग्निस्थाली राजा

को दी और कहा कि हे राजन् ! वेद की रीति से इस अग्नि के तीन भाग कर यज्ञ करो, तब उर्वशी के साथ तुम्हारा निवास होगा । उनका यह वचन सुनकर अग्निस्थाली लेकर राजा अपने नगर को चल दिया। राजा ने मार्ग में विचार यह किया कि मैं बड़ा मूढ़ हूं कि उर्वशी तो न मिली और इस अग्निस्थाली को लिये जाता हूं । इसको मैं क्या करूंगा, यह मन में विचारकर उस अग्निस्थाली को उसी वन में रखकर अपनी राजधानी में आया । वहां आकर रात्रि के समय शय्या पर सो गया । फिर अपने हृदय में विचार किया कि उर्वशी की प्राप्ति का उपाय मुझे गन्धर्वों ने बताया और अग्निस्थाली दी, उसको मैं वन में रख आया, यह अच्छा नहीं किया । फिर वन में जाकर उसको ले आऊं ।

यह मन में निश्चयकर प्रातःकाल होते ही राजा वन में गया । परन्तु वहां वह स्थाली न पाई । किन्तु जहां स्थाली रक्खी थी, उस स्थान में एक पीपल का वृक्ष और उसके

बीच में एक शमी का वृक्ष लगा देखा । तब राजा ने विचार किया कि अग्निस्थाली से यह वृक्ष किस भांति उत्पन्न हुआ । इससे इस अग्नि-रूप वृक्ष के काष्ठ से अरणी बनाकर अग्नि उत्पन्न कर यज्ञ करना चाहिये । यह निश्चय करके उस वृक्ष का काष्ठ लेकर अपने नगर में आया और अरणी बनवाई । अरणी बनाने के समय राजा गायत्रीमन्त्र पढ़ता रहा और गायत्रीमन्त्र के जितने अक्षर हैं, उतने अंगुल की अरणी बन-वाई । राजा ने उससे अग्नि उत्पन्नकर वेदोक्त विधि से हवन तथा बहुत से यज्ञ किये । उनके प्रभाव से राजा गन्धर्वलोक में प्राप्त होकर उर्वशी के साथ विहार करने लगा ।

एक दिन स्वर्ग में कुछ उत्सव था, सब देव-ताओं की सभा लगी थी । उसमें राजा पुरूरवा भी बैठा था और क्रम २ से सब अप्सराएँ इन्द्र के आगे नृत्य करती थीं । इतने में उर्वशी भी नाचने उठी और बड़े गर्वसहित नाचने लगी । नाचते २ राजा पुरूरवा की ओर देखकर, उर्वशी

ने मन्दहास किया । राजा ने भी उर्वशी से नेत्र मिलाकर कुछ हँस दिया । दोनों की यह चेष्टा देख नाट्य के आचार्य तुम्बुरु ने कोप किया और कहा कि इस देवसभा में तुम दोनों बिना कारण हँसे इसलिये तुम्हारा परस्पर वियोग होगा । यह वज्र के तुल्य तुम्बुरु का शाप सुन-कर राजा बहुत दुःखी हुआ और इन्द्र की शरण में जाकर प्रार्थना करने लगा, हे महा-राज ! उर्वशी की प्राप्ति के लिये मैंने अनेक यज्ञ किये, तब मुझे प्राप्त हुई । अब आप ऐसा अनुग्रह करें, जिससे मुझे वियोग तथा दुःख न भोगना पड़े । राजा का यह दीन वचन सुन-कर इन्द्र ने कहा, हे राजन् ! भय मत कर, शाप की निवृत्ति का तुझे एक उपाय बताता हूं ।

दक्षिणसमुद्र में गन्धमादनपर्वत के बीच साध्यामृत नाम एक तीर्थ है, जिसको देवता, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, ऋषि आदि सब सेवन करते हैं । वह तीर्थ भुक्ति, मुक्ति और शाप-मोक्ष का देनेवाला है । उस तीर्थ में स्नान करनेवालों

को अमृत अर्थात् मोक्ष-साध्य है, असाध्य नहीं। इसलिये उस तीर्थ का नाम साध्यामृत हुआ। वहां जाकर स्नान करने से उर्वशी का समागम और निरन्तर हमारे लोक में वास होगा। इन्द्र का यह वचन सुनकर राजा गन्धमादनपर्वत को चला, वहां जाकर साध्यामृत तीर्थ में स्नान किया। स्नान करते ही शाप से मुक्त हुआ और विमान में बैठकर स्वर्ग को गया। वहां जाकर आनन्द-पूर्वक उर्वशी के साथ विहार करने लगा। हे मुनिवर्य ! साध्यामृत तीर्थ का ऐसा प्रभाव है कि जिसमें स्नान करने से राजा पुरूरवा को फिर उर्वशी का समागम हुआ। इस तीर्थ में स्नान करने से सब मनोरथ सिद्ध होते हैं, स्वर्ग की प्राप्ति होती है और जो मनुष्य निष्काम होकर स्नान करे तो मोक्ष अवश्य पावे। जो इस अध्याय को पढ़े अथवा सुने, वह भी विष्णुलोक को प्राप्त होता है।

हे मुनिवर्य ! यह साध्यामृततीर्थ का प्रभाव हमने श्रद्धा से विस्तार-पूर्वक आपको श्रवण

कराया। जिसे पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने सनत्कुमार आदिकों को उपदेश दिया था।

अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त।

उन्तीसवाँ अध्याय।

सर्वतीर्थ का माहात्म्य तथा नेत्रहीन सुचरित मुनि की कथा

सूतजी कहते हैं कि, हे मुनिवर्य ! साध्यामृत तीर्थ में स्नान कर, सब पाप हरनेवाले सर्वतीर्थ में जाय। सर्वतीर्थ में स्नान करते ही पातक, महापातक सब दूर हो जाते हैं। पापी पुरुष के देह में पाप तब तक ही रहते हैं, जब तक वह सर्वतीर्थ में स्नान न करे। उस तीर्थ को जाने के समय सब पाप काँप उठते हैं कि, अब हमारा नाश होगा। गर्भवासादि दुःख भी तब तक ही हैं, जब तक कि सर्वतीर्थ में स्नान न करे। यज्ञ, दान नियम से गायत्री मन्त्र का जप, चारों वेद की सौ आवृत्ति, शिव, विष्णु आदि देवताओं की पूजा और एकादशी को निराहार व्रत करने से, जो फल प्राप्त होता है, वह सर्व-तीर्थ में स्नान करने से अवश्य मिलता है।

यह सुन मुनियों ने पूछा, हे सूतजी! उस तीर्थ का नाम सर्वतीर्थ क्यों हुआ, यह आप विस्तार-सहित वर्णन करें। तब सूतजी कहने लगे कि, हे मुनिवर्य! पूर्वकाल में भृगुवंश में उत्पन्न सुचरित नाम मुनि हुआ है। वह जन्म से ही अन्धा था। उसने जन्म भर तप किया, वृद्धावस्था में मुनि की इच्छा हुई कि सर्वतीर्थों में स्नान करना चाहिये। परन्तु तीर्थों में जाने की सामर्थ्य नहीं है, इसलिये शिवजी का आराधन करना चाहिये। यह मन में निश्चयकर गन्धमादन-पर्वत में शिवजी के अनुग्रह के अर्थ, सुचरित नाम मुनि तप करने लगा। तीन काल स्नान करके शिवपूजन और अतिथियों का सत्कार, तथा जाबाल्युपनिषद् की रीति से भस्मोद्धूलन और रुद्राक्ष धारण करता था। ग्रीष्मऋतु में पञ्चाग्नि तापता, वर्षा में शरीर पर वृष्टि सहता, शीतकाल में जलशय्या करता रहा। इस प्रकार उग्र तप करते करते दश वर्ष बीत गये, तब शिवजी एक दिन प्रसन्न होकर प्रकट हुये। मुनि

ने देखा कि, वृषभ पर चढ़े, वामअङ्ग में पार्वतीजी को धारण किये, त्रिशूल हाथ में लिये, कोटि सूर्य के समान जटाओं से शोभित, सर्वांग में भस्म धारण किये हुए तथा भूतगणों करके सेवित, शेषनाग आदि नागों के भूषण पहिने ये साक्षात् शिवजी हैं। शिवजी के प्रकट होते ही मुनि को तुरन्त दिव्यदृष्टि प्राप्त हो गई। तब शिवजी का दर्शन पाकर सुचरित मुनि भक्ति से नम्र होकर स्तुति करने लगा।

सुचरित उवाच। जय देव महेशान जय शंकर धूर्जटे। जय ब्रह्मादिपूज्य त्वं त्रिपुरघ्न यमान्तक ॥ १ ॥ जयोमेश महादेव कामान्तक जयामल। जय संसारपूज्य त्वं भूतपाल शिवाव्यय ॥ २ ॥ त्रियम्बक नमस्तुभ्यं भक्तरक्षणदीक्षित। व्योमकेश नमस्तुभ्यं जय कारुण्यविग्रह ॥ ३ ॥ नीलकण्ठ नमस्तुभ्यं जय संसारमोचक। महेश्वर नमस्तुभ्यं परमानन्द-विग्रह ॥ ४ ॥ गङ्गाधर नमस्तुभ्यं विश्वेश्वर मृडाव्यय। नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय शम्भवे ॥ ५ ॥ शर्वायोग्राय भर्गाय कैलासपतये नमः। रक्ष मां करुणासिन्धो कृपादृष्ट्यव-लोकनात्। मम वृत्तमनालोच्य त्राहि मां कृपया हर ॥ ६ ॥

यह स्तुति सुनकर दया के समुद्र श्रीमहादेवजी ने सुचरितमुनि से कहा कि, हे मुने! जो वर चाहता है वह मांग। हम तुझपर प्रसन्न हैं। तब सुचरित मुनि ने प्रार्थना की कि, हे नाथ! मेरी इच्छा सब तीर्थों में स्नान करने की है, परन्तु मैं वृद्ध हूं, इसलिये तीर्थों में जा नहीं सकता। अब आप ऐसा अनुग्रह करें कि, सब तीर्थों में स्नान करने का फल मुझे प्राप्त हो जाय। मुनि की यह प्रार्थना सुनकर भक्तवत्सल श्रीमहादेवजी ने सब तीर्थों का आवाहन एक स्थान में किया और मुनि से कहा कि हे मुने! हमने सब तीर्थों का आवाहन किया, इसलिये यह तीर्थ गन्धमादनपर्वत में सर्वतीर्थ नाम से प्रसिद्ध होगा। हमने मन से तीर्थों का यहां आकर्षण किया, इसलिये मानसतीर्थ भी इसका नाम होगा। हे सुचरित! महापातकों के दग्ध करनेवाले काम, क्रोध, लोभ, रोग आदि दोषों के नाशक, विना ब्रह्मज्ञान के ही मोक्ष देनेवाले कुम्भीपाक आदि नरकोंका भय निवृत्तकर, संसारसमुद्रके पार

उतारनेवाले हमारे बनाये इस सर्वतीर्थ में तू स्नान कर। शिवजी की यह आज्ञा पाकर सुचरितमुनि ने सर्वतीर्थ में स्नान किया। स्नान करते ही अति सुन्दर तरुण और दिव्यदेह होगया और उस तीर्थ की प्रशंसा करने लगा। महादेवजी ने कहा हे सुचरित! इस तीर्थ में नित्य स्नान कर और हमारा नाम स्मरण कर, देशान्तर के तीर्थों में जाने की इच्छा दूर कर, इस तीर्थ के माहात्म्य से अन्त समय हमारे लोक में निवास करेगा। और जो पुरुष इस तीर्थ में स्नान करेंगे वे हमारे लोक को अवश्य प्राप्त होंगे। इतना कह शिवजी अन्तर्धान हुये और सुचरितमुनि भी बहुत काल उस तीर्थ में स्नानकर अन्त में शिवलोक को प्राप्त हुआ। हे मुनिवर्य! यह सर्वतीर्थ का प्रभाव हमने वर्णन किया। जो इसको पढ़ता है अथवा सुनता है वह भी सब पापों से मुक्त हो जाता है।

उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त।

तीसवाँ अध्याय ।

धनुष्कोटि का माहात्म्य तथा जिन २ पापों के करने से मनुष्य नरकों में गिरते हैं उनका वर्णन ।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! सर्वतीर्थ में स्नान कर ब्रह्महत्या आदि पापों का हरण करनेवाले धनुष्कोटि को जाना चाहिए। धनुष्कोटि के स्मरणमात्र से सब पाप निवृत्त होते हैं । जो पुरुष धनुष्कोटि का दर्शन करते और उसमें स्नान करते हैं, वे अट्ठाईस प्रकार के महानरकों को नहीं देखते । तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, कृमिभक्ष, अन्धकूप, शाल्मली, सन्दंश, सूर्मी, वैतरणी, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, अवीचि, सारमेयादन, वज्रकण्टक, क्षारकर्दमपातन, रक्षोगणाशन, शूलशंतवितोदन, दन्तशूकाशन, पर्यावर्तन, तिरोधान, सूचीमुख, पूयशोणितभक्ष, विषाग्निपरिपीड़न ये अट्ठाईस महानरक हैं। धनुष्कोटि में स्नान करनेवाला पुरुष इन नरकों में नहीं गिरता। जो मनुष्य किसी के

धन और स्त्री पुत्रों को हरे, उनको भयंकर यमदूत कालपाशों से बांध कर बहुत काल तक तामिस्त्रनरक में डालते हैं। जो मनुष्य स्वामी को मार कर उसका धन लेकर भोग करे, वह अन्धतामिस्र में गिरता है । जो मनुष्य और जीवों से द्रोहकरके अपने कुटुम्ब का पोषण करे, वह रौरव नरक में डाला जाता है । जहां पर बड़े बड़े विषधर सर्प काटते हैं। जो मनुष्य केवल अपना ही पेट भरे, कुटुम्ब का पालन न करे, वह महारौरव में गिरता है और नित्य अपना मांस खाता है । जो निर्दयी पुरुष पशु, पक्षी आदि को रोककर रक्खे, उस पुरुष को कुम्भीपाकनरक में औटते हुये तेल के बीच यमदूत डालते हैं। जो पुरुष माता, पिता और ब्राह्मणों से द्वेष करे, वह कालसूत्रनरक में डाला जाता है। कालसूत्रनरक में नीचे अग्नि जलती है और ऊपर प्रचण्ड सूर्य तपता है; जिसमें पापी पुरुष दग्ध होते रहते हैं। जो वेदमार्ग को छोड़कर कुमार्ग में चलते हैं, वे असिपत्रवन में गिरते हैं । जो राजा अथवा

राज्याधिकारी अदण्ड्य पुरुष को दण्ड देता है और ब्राह्मण को दण्ड देता है वह सूकरमुख नाम नरक में डाला जाता है और यमदूत उसको ईख की भांति कोल्हू में पेरते हैं। जो ईश्वराधीन वृत्तिवाले जीवों को पीड़ा देता है वह अँधेरे कुयें में डाला जाता है और वे ही जीव उसको वहां पीड़ा देते हैं। जो पंक्ति में बैठकर आप उत्तम भोजन करता है और पंक्तिवालों को नहीं देता और जो पुरुष पञ्चमहायज्ञ किये विना भोजन करता है वह कृमिभोजननाम नरक में डाला जाता है, वहां उसको कृमि खाते हैं और वह कृमियों को भक्षण करता है। जो मनुष्य राजा अथवा राजपुरुष ब्राह्मण का धन हरे तथा जो पुरुष ब्राह्मण का धन चोरी करके अथवा बलात्कार से लेवे, वह संदंश नाम नरक में अग्निकुण्ड के बीच डाला जाता है और यमदूत उसको लोहे के संसों से पीड़न करते हैं। जो पुरुष पराई स्त्री से संग करे अथवा जो स्त्री परपुरुष से संग करे, वह सूर्मिनाम नरक में गिरता है; वहां उसको लोहे की तपाई हुई मूर्ति

का आलिङ्गन करना पड़ता है। जिस मूर्ति के शरीर में बड़े २ तीखे कांटे हैं और जबतक सूर्य चन्द्र रहें, तबतक उसी मूर्ति का आलिङ्गन किये यमदूत उसे खड़ा किये रहते हैं। जो पुरुष अनेक प्रकारों के कष्ट से जीवोंको पीड़ा देते हैं, वे बहुत कांटोंवाले शाल्मलिनाम नरक में डाले जाते हैं। जो पुरुष पाखण्ड-धर्म में चलता है। अथवा धर्म-मार्ग का खण्डन करता है; वह वैतरणीनाम नरक में गिरता है। जो पुरुष सदाचार और लज्जा को छोड़कर वृषली स्त्री का संग करता है और शौच आचारसे हीन हो, वह अतिबीभत्सनरक में पूय, विष्ठा, रुधिर, मूत्र आदिके कुण्डों में गिरताहै। जो पुरुष दम्भसे यज्ञमें पशुवोंकी हिंसा करताहै और विधि नहीं जानता; वह वैशसनरक में जाता है, वहां पर यमदूत उसको शस्त्रों से छेदन करते हैं। अपनी स्त्री को जो मोह से वीर्य पान कराता है वह रेतःकुण्ड में गिर कर वीर्य पान करता है। जो पुरुष ग्राम में आग लगाता है या किसी को विष देता है या मार्ग चलनेवाले व्यापारियों

को लूटता है, वह वज्रदंष्ट्रनाम नरक में डाला जाता है । इसी प्रकार और भी पापी पुरुष अनेक प्रकार के घोर नरकों में डाले जाते हैं । परन्तु ये सब पाप करनेवाले यदि एक बार भी धनुष्कोटितीर्थ में स्नान करें, तो इन नरकों को कभी न देखें, सद्गति ही पावें । धनुष्कोटि-तीर्थ में स्नान करने से अश्वमेधयज्ञ का फल प्राप्त होता है और आत्मज्ञान होता है, इसके अतिरिक्त चारों प्रकार की मुक्ति भी मिलती है । धनुष्कोटि में स्नान करने से बुद्धि निर्मल हो जाती है । कभी दुःख नहीं होता और पापों में चित्त नहीं प्रवृत्त होता । पुरुष को जो फल तुलादान और हज़ार गोदान करने से प्राप्त होता है वही फल धनुष्कोटि में एक बार स्नान करने से होता है । अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष आदि जो पदार्थ चाहे वही धनुष्कोटि में स्नान करते ही प्राप्त होता है ।

अनेक पातक महापातकों से युक्त पुरुष भी धनुष्कोटि में स्नान से शुद्ध हो जाता है । धनुष्कोटि में स्नान करने से प्रज्ञा, लक्ष्मी, यश,

संपत्ति, वैराग्य, धर्म, ज्ञान, मन की शुद्धता आदि सब पदार्थ प्राप्त होते हैं । धनुष्कोटि में स्नान करने से करोड़ों ब्रह्महत्या, सुरापान, गुरुदारागमन, सुवर्णस्तेय आदि पातक निवृत्त होते हैं । जो पातक ब्रह्महत्या आदि महापातकों के तुल्य हैं वे सब नष्ट होते हैं । इन बातों में कभी सन्देह न करना । इस माहात्म्य को जो पुरुष अर्थवाद समझे, वह नरक को जाता है । मनुष्यों का बड़ा मूर्खपन है कि, अद्वैतज्ञान देने-वाले सब पातक और दुःख हरण करनेवाले धनुष्कोटितीर्थ को छोड़कर और तीर्थों में भटकते फिरते हैं । धनुष्कोटि में स्नान करने के पश्चात् यम का भय नहीं रहता । जो पुरुष धनुष्कोटि को नमस्कार करें, दर्शन करें, स्तुति और प्रणाम करें वे माता के स्तन नहीं पीते । अर्थात् जन्म-मरण से रहित हो जाते हैं ।

इतनी कथा सुनकर मुनियोंने पूछा हे सूतजी! उस तीर्थ का नाम धनुष्कोटि क्योंकर हुआ । यह आप वर्णन करें । तब सूतजी कहने लगे

हे मुनिवर्य ! रावण को मार कर विभीषण को लङ्का का राज्य देकर, सीता लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीव आदि वानरों समेत गन्धमादन पर्वत की यात्रा की। विभीषण भी उनके साथ आया था। वहां पहुँच कर विभीषण ने प्रार्थना की हे महाराज ! आपके बांधे हुये इस सेतु के मार्ग से और भी प्रतापी राजा आकर मेरी पुरी लङ्का को पीड़ा देंगे। इसलिये आप अपने धनुष् की कोटि, अर्थात् अग्र करके इस सेतु को भेदन कर दीजिये। विर्भीषण की यह प्रार्थना सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने अपने धनुष्के अग्रभाग से सेतु को तोड़ दिया। उसी स्थान पर धनुष्कोटितीर्थ बना। धनुष् करके रेखा की हुई, जो पुरुष देखे, वह गर्भवास का दुःख नहीं भोगता। धनुष्कोटिकरके श्रीरामचन्द्रजी ने समुद्रमें रेखा की, उसके दर्शन से ही मुक्ति हो जाती है। स्नान का फल तो कौन वर्णन कर सके। नर्मदा के तट पर तप करे, तो महापातक निवृत्त हो, गङ्गातीर में मरण से मोक्ष होता है और कुरुक्षेत्र

में दान देने से ब्रह्महत्या आदि पाप नष्ट हो जाते हैं। परन्तु धनुष्कोटि में तप, मरण और दान तीनों ही मुक्ति के देनेवाले हैं। पातक, महापातक आदि का भय तब तक है, जब तक धनुष्कोटि तीर्थ का दर्शन न करे। धनुष्कोटि का दर्शन करते ही हृदय की ग्रन्थि भिन्न हो जाती है, सब संशय निवृत्त और समस्त पाप भी नष्ट हो जाते हैं। श्रीरामचन्द्रजी ने विभीषण के कल्याण के हेतु जो दक्षिणसमुद्र में धनुष्कोटि करके रेखा की, वही स्वर्ग, कैलास, वैकुण्ठ, ब्रह्मलोक आदि का मार्ग है। धनुष्कोटि-स्नान, मन्त्रों के जप, अनेक दान और यज्ञों से भी अधिक है।

धनुष्कोटि में स्नान करनेवाले पुरुष को प्रयाग में स्नान और काशी मरण से कुछ प्रयोजन नहीं है। धनुष्कोटि में स्नान करके जो पुरुष तीन दिन तक उपवास न करे और ब्राह्मण को सुवर्ण, गौ आदि दान न देवे, वह पुरुष जन्मान्तर में दरिद्री होता है, जो फल

धनुष्कोटि में स्नान करने से होता है, वह अग्निष्टोम आदि यज्ञ करने से भी नहीं प्राप्त होता है। सब तीर्थों से धनुष्कोटितीर्थ श्रेष्ठ है। भूमण्डल में दश हजार कोटितीर्थ हैं वे सब धनुष्कोटि में निवास करते हैं। आठवसु, आदित्य, रुद्र, मरुत्, साध्य, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर आदि सब देवता और विष्णु, लक्ष्मी, शिव, पार्वती, ब्रह्मा और सरस्वती भी धनुष्कोटितीर्थ में निवास करते हैं। धनुष्कोटि के तट पर तप करके अनेक देवता और ऋषि उत्तम सिद्धि को प्राप्त हुये। जो पुरुष धनुष्कोटि में स्नान करके देवता और पितरों का तर्पण करे, वह ब्रह्मलोक को जाता है। जो पुरुष धनुष्कोटि पर एक ब्राह्मण को भोजन करावे वह तीनों लोकों में सुख पाता है। जो तप अथवा अश्वमेध आदि यज्ञ न कर सके, वह धनुष्कोटि में अवश्य स्नान करे। धनुष्कोटि में स्नान करनेवाले पुरुष निन्द्ययोनि में जन्म नहीं लेते।

माघमास मकर के सूर्य में जो पुरुष धनुष्कोटि

में स्नान करता है, उनका पुण्यफल हम नहीं वर्णन कर सकते। माघमास में जो स्नान करताहै, वह गङ्गा आदि सर्वतीर्थों के स्नान का फल पाकर मोक्ष को पाता है। जन्म भर के किये पाप स्नान करते ही नष्ट हो जाते हैं। सब देवताओं में श्रीरामचन्द्र और सब तीर्थों में धनुष्कोटि तीर्थ उत्तम है। माघ महीने में तीन दिन धनुष्कोटि में स्नान करे और जितेन्द्रिय रहकर एक बार भोजन करे तो वह ब्रह्महत्या आदि पापों से छूटकर मुक्ति पाता है। माघ महीने में स्नान करे, शिवरात्रि को उपवास करके जागरण करे। रात्रि को रामनाथ महादेव का भक्ति से पूजन करके दूसरे दिन प्रभात ही उठ धनुष्कोटि में स्नान कर, फिर रामनाथ का विधिपूर्वक पूजन करे। यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराके सुवर्ण, गौ, भूमि आदि दान देकर ब्राह्मणों की आज्ञा पाकर आप भी भोजन करे। इस विधि से जो पुरुष माघस्नान करे, उसके सब पापों को निवृत्त कर, श्रीमहादेवजी मुक्ति और

मुक्ति देते हैं । इसलिये हे मुनिवर्य ! मोक्षकी इच्छा हो, तो अवश्य ही धनुष्कोटि में स्नान करना चाहिये । अर्धोदय योग में जो पुरुष धनुष्कोटि में स्नान करें तो उनके सब पाप नष्ट हो जाते हैं । अर्धोदय और महोदययोग में जो पुरुष स्नान करें तो उनको ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता प्रसन्न होकर भुक्ति और मुक्ति देते हैं । इन दोनों योगों में जो पुरुष धनुष्कोटि में स्नान करें, वे सब यज्ञों के फल पाते हैं और उनके सब पापों का प्रायश्चित्त भी हो जाता है । चन्द्र और सूर्य के ग्रहण में जो पुरुष धनुष्कोटि में स्नान करे, उसके पुण्यफलको शेषजी भी नहीं गिन सकते । ग्रहण में स्नान करते ही ब्रह्महत्या आदि पाप निवृत्त हो जाते हैं और मुक्ति भी प्राप्त होती है । इसकारण ग्रहण अर्धोदय और महोदय इनदोनों योगों में विशेष करके स्नान करना चाहिये ।

हे मुनिवर्य ! सब व्यवहारों को छोड़कर धनुष्कोटितीर्थ को जाओ और पितरों को पिण्डदान करो । वहां पिण्डदान करने से कल्प भर पितर

तृप्त रहते हैं, पितरों की तृप्ति के लिये रामचन्द्रजी ने तीन स्थान बनाये हैं । सेतुमूल, धनुष्कोटि और गन्धमादनपर्वत इन तीनों स्थानों का नाम ऋणमोक्ष है । यहां पिण्डदान करने से मनुष्य पितरों के ऋण से मुक्त हो जाते हैं । सब उपाय से धनुष्कोटि का सेवन करना चाहिये । धनुष्कोटि में स्नान करके अश्वत्थामा महाघोर सुप्तमारण-दोष से छूटा है । हे मुनिवर्य ! यह हमने भुक्ति-मुक्तिका देनेवाला धनुष्कोटि का माहात्म्य आपके सन्मुख वर्णन किया ।

तीसवाँ अध्याय समाप्त ।

इकतीसवाँ अध्याय ।

धनुष्कोटितीर्थ का माहात्म्य और अश्वत्थामा ने जो सोते हुए वीरों को मारा था उसका वर्णन ।

शौनक आदि ऋषि पूछते हैं, हे सूतजी ! अश्वत्थामा ने किस प्रकार सुप्तमारण किया और धनुष्कोटि में स्नानकर किस प्रकार उस पाप से छूटा । यह आप वर्णन करें । आपका वचनामृत

पान करते करते हमको तृप्ति नहीं होती । यह नैमिषारण्यवासी मुनियों का वचन सुनकर अपने गुरु श्रीवेदव्यासजी को प्रणामकर, सूतजी कहने लगे हे मुनिवर्य ! कौरव और पाण्डवों का राज्य के निमित्त बड़ा ही घोर युद्ध हुआ । उस युद्ध में दश दिन तक घोर संग्राम करके भीष्मजी शरशय्या पर सोये थे । पांच दिन द्रोणाचार्य ने युद्ध किया । दो दिन युद्ध करके कर्ण और एक दिन युद्ध करके शल्य मारे गये । अठारहवें दिन भीमसेन ने गदायुद्ध से दुर्योधन के ऊरु तोड़ डाले। तब धृष्टद्युम्न, शिखण्डी आदि सब पाण्डवों के पक्ष के राजा विजय पाकर प्रसन्न होकर शंख बजाते हुये अपने २ डेरे को गये ।

श्रीकृष्णचन्द्र तथा सात्यकीसहित, पाण्डव दुर्योधन के शून्य डेरों में प्रविष्ट हुये । वहां दुर्योधन के वृद्ध मन्त्री कञ्चुकी अन्तःपुर के रक्षक आदि सब उनको प्रणाम करने लगे । पाण्डव ने भी दुर्योधन का सब धन ग्रहणकर, उस रात्रि को उसी स्थान पर निवास किया । परंतु श्रीकृष्ण

भगवान् ने कहा कि मङ्गल के लिये आज की रात डेरों में नहीं रहना चाहिये । इसलिये वे सब ओघवती नाम नदी के तट पर जा रहे । कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा ये तीनों जो कौरवों के पक्ष में बचे थे, सूर्यास्त से पहिले ही दुर्योधन के पास गये । उन्होंने देखा कि दोनों ऊरु दुर्योधन के टूट गये हैं । रुधिर से सब अङ्ग भीग रहे हैं और भूमि पर धूलि में लोटता है । राजा दुर्योधन की यह अवस्था देखकर इन तीनों ने बड़ा ही शोक किया । राजा दुर्योधन इन लोगों को देखकर अश्रुपात करने लगा ।

यह दशा राजा दुर्योधन की देखकर अश्वत्थामा क्रोधसे जल उठा और दोनों हाथ पीसकर क्रोध से अश्रुपात करता हुआ दुर्योधन से बोला, हे राजन् ! मेरे पिता को युद्ध में दुष्टों ने छल से मार डाला। उसका मुझे इतना दुःख न हुआ, जितना कि आज तुम्हारी यह दशा देखकर हुआ है । इसलिये मैं शपथ खाकर कहता हूं कि आज रात्रि को पाण्डव और सृंजयों को

श्रीकृष्ण के देखते २ मैं अवश्य मारूंगा, आप मुझे आज्ञा दीजिये ।

गुरुपुत्र का यह वचन सुनकर दुर्योधन ने कहा कि बहुत अच्छा । जैसी आपकी इच्छा हो वैसा कीजिये और कृपाचार्य से कहा कि आप अश्वत्थामा को सेनापति बनाने के हेतु अभिषेक कीजिये । कृपाचार्य ने जल लाकर उसी क्षण अश्वत्थामा का अभिषेक किया । अश्वत्थामा भी दुर्योधन को आलिङ्गनकर, कृपाचार्य और कृतवर्मा को साथ लेकर दक्षिण दिशा की ओर चला । सूर्यास्त होते २ पाण्डवों के डेरे के पास तीनों वीर आ पहुँचे । वहां पाण्डवों का बड़ा कोलाहल सुनकर पूर्व की ओर तीनों भय से चले । जाते २ वन में उनमें से एक ने अति मनोहर सरोवर देखा कि जिसमें कमल आदि अनेक प्रकार के पुष्प फूले थे और हंस कारण्डव आदि पक्षी क्रीड़ा कर रहे थे । उस सरोवर में तीनों ने जल पिया और अपने घोड़ों को जल पिलाया । तब वे श्रमनिवृत्त करने के

लिये घोड़ों से उतरकर एक वटवृक्ष के नीचे बैठे और सायंकाल की संध्या भी की । इतने में सूर्य अस्त हुआ । अति घोर अन्धकार चारों ओर छा गया । दिनचारी जीव निद्रा-वश हुये और रात्रि में विचरनेवाले जीव इधर-उधर घूमने लगे । वे तीनों वीर भी वटवृक्ष के नीचे बैठे थे । उनमें कृपाचार्य और कृतवर्मा तो निद्रावश होकर भूमि ही में सो गये और अश्वत्थामा को मारे क्रोध और शोक के निद्रा न आई । तब अश्वत्थामा ने देखा कि अति भयंकर एक उलूक बहुत उलूकों को साथ लिये अति घोर शब्द करता हुआ वहां आया । उस वट वृक्ष की शाखाओं में हज़ारों काक सोते थे, उनको मार २ कर गिराने लगा । किसी काक के नेत्र फोड़ दिये, किसी की टांग तोड़ दी, किसी के पर उखाड़ लिये, किसी का शिर ही नोच लिया । इस प्रकार उस उलूक ने काकों का संहार किया और अपने शत्रु काकों की यह गति देखकर बहुत प्रसन्न हुआ ।

उलूक का यह व्यवहार देखकर अश्वत्थामा

ने विचार किया कि मैं भी इसी प्रकार शत्रु-संहार करूं । क्योंकि युद्ध करके तो पाण्डवों का जीतना अति कठिन है । और हमने दुर्योधन के आगे पाण्डवों के वध करने की प्रतिज्ञा की है । इसलिये रात्रि के समय कपट से ही पाण्डवों का संहार करना चाहिये । क्योंकि निन्द्यकर्म करके भी शत्रुओं को मारना चाहिये । पाण्डवों ने भी छल से ही जय पाई है । नीतिशास्त्र जाननेवाले विद्वानों ने यह कहा है कि शत्रु की सेना परिश्रान्त हो, सोती हो, भोजन करती हो शस्त्र छोड़े किसी व्यापार में लगी हो, उस समय उसे मारनी चाहिये । यह मन में सोच विचारकर अश्वत्थामा ने कृपाचार्य और कृतवर्मा को जगाया और उससे यह कहा कि राजा दुर्योधन धर्म से युद्ध करता रहा । पाण्डवों ने उसको क्षुद्र-कर्मों से मारा, भीमसेन ने दुर्योधन के शिर पर पैर रक्खा, यह सब बात आप भी जानते हैं । अब मेरा यह निश्चय है कि इसी रात्रि में सोते हुये पाण्डवों को छल से मार देवें ।

यह सुन कृपाचार्य बोले, हे अश्वत्थामन् ! सोते हुये शत्रुओं को मारना कुछ धर्म नहीं है । शस्त्रहीन और रथहीन शत्रुओं को मारना भी उचित नहीं । इसलिये तुम ऐसा साहस मत विचारो । हम तीनों धृतराष्ट्र, गान्धारी और परम धर्मात्मा विदुर से यह सम्मति पूछें, वह जैसा कहेंगे वैसा ही किया जायगा । यह अपने मामा कृपाचार्य का वचन सुनकर अश्वत्थामा ने कहा कि मेरे पिता को युद्ध में छल से मारा है, वह दुःख मेरे हृदय को जलाता है और धृष्टद्युम्न कहता है कि मैं द्रोणहन्ता हूं । यह वचन मैं किस प्रकार सुनूं । पाण्डवों ने ही पहिले धर्म की मर्यादा भङ्ग की । आप सबके देखते २ त्यक्तशस्त्र द्वारा मेरे पिता को धृष्टद्युम्न ने मारा और शिखण्डी को आगे करके छल से वृद्धभीष्म को अर्जुन ने मारा । इसी भांति और भी बहुत से राजाओं को पाण्डवों ने छल से मारा । हम भी इसी भांति छल से सोते हुये पाण्डवों का संहार करें, तो कुछ अनुचित नहीं ।

यह निश्चय करके अश्वत्थामा अपने रथ में चढ़कर क्रोध से जलता हुआ पाण्डवों के डेरे की ओर चला। कृपाचार्य और कृतवर्मा भी उसके पीछे २ चले और क्षण-मात्र में वहां आ पहुँचे। सब मनुष्य युद्ध से थके हुये अपने २ डेरों में सो रहे थे। डेरे के द्वार पर पहुँचकर अश्वत्थामा ने शिवजी का आराधन किया। शिवजी ने प्रसन्न होकर अश्वत्थामा को अति उत्तम एक खड्ग दिया। तब अश्वत्थामा प्रसन्न चित्त होकर कृपाचार्य और कृतवर्मा को पाण्डवों के शिबिर अर्थात् लश्कर के द्वार पर खड़ा कर, आप भीतर घुसा और शिबिर में बिचरने लगा। पहिले धृष्टद्युम्न के तम्बू के समीप पहुँचा और तम्बू के भीतर घुसकर देखा कि श्वेतवर्ण की शय्या के ऊपर युद्ध से थका हुआ धृष्टद्युम्न सोता है। उसकी सेना तम्बू के चारों ओर डेरा डाले पड़ी है। अश्वत्थामा ने एक लात मार-कर धृष्टद्युम्न को जगाया। धृष्टद्युम्न ने जागकर देखा कि अश्वत्थामा सम्मुख खड़ा है और

शय्या से उठना चाहा। परन्तु अश्वत्थामा ने उसके केश पकड़कर वहीं गिरा दिया और आप उसकी छाती पर चढ़ बैठा। धनुष् की ज्या से उसका कण्ठ बांधकर जिस प्रकार निर्दयता से पशु को मारे, उसी भांति धृष्टद्युम्न को अश्वत्थामा ने मार दिया। धृष्टद्युम्न निद्रा से व्याकुल था और अठारह दिन के युद्ध से अत्यन्त थका हुआ था। इसलिये कुछ पराक्रम न कर सका। फिर युधामन्यु, उत्तमौजा, द्रौपदी के पांचो पुत्र, सोमक जो युद्ध से बचे थे और शिखण्डी आदि और भी राजाओं को अश्वत्थामा ने खड्ग से मारा। अश्वत्थामा के भय से जो भगकर बाहर गये, उन सबको कृपाचार्य और कृतवर्मा ने मारा। इस प्रकार क्षणमात्र में उन तीनों ने पाण्डवों की सेना का संहार कर दिया।

फिर तीनों उस शिबिर से निकलकर भय से इधर उधर भागे। अश्वत्थामा नर्म्मदा तीर पर जा पहुँचा। वहां हज़ारों वेदवेत्ता ऋषि तप करते थे, उनके समीप अश्वत्थामा

गया। परन्तु उन्होंने योगबल से इसका सब कर्म जान लिया और अश्वत्थामा से मुनियों ने यह कहा, हे द्रोणपुत्र! तू ब्राह्मणों में अधम है। तैंने ऐसा घोर पाप किया, सोते हुये मनुष्यों को मारा, तेरे दर्शन से हम पतित होते हैं। और तेरे साथ संभाषण करने से ब्रह्महत्या के तुल्य पाप लगता है। इसलिये हे पापिन्! तू शीघ्र ही हमारे आश्रम से निकल जा। मुनियों का यह वचन सुनकर लज्जित होकर अश्वत्थामा वहां से चला और काशी आदि तीर्थों में जहां २ गया, सब स्थानों पर ब्राह्मणों ने तिरस्कार किया।

तब वह प्रायश्चित्त की इच्छा से बदरिकाश्रम में व्यासजी के पास गया और व्यासजी को प्रणाम किया। तब व्यासजी ने कहा, हे अश्वत्थामन्! शीघ्र ही हमारे आश्रम से निकल, तू बड़ा पातकी है, तेरे साथ वार्तालाप करनेसे हमको भी पातक लगता है। व्यासजी का यह वचन सुन, अति दुःखी होकर अश्वत्थामा ने कहा, हे महाराज! सबने मेरा तिरस्कार किया, तब मैं

आपकी शरण में आया। अब आप भी मुझे त्याग देवें तो मैं किसकी शरण जाऊं। आप दयालु हैं, मेरे ऊपर भी कृपा करें और इस पाप का मुझे प्रायश्चित्त बतावें, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं। अश्वत्थामा का यह दीन तथा दुःख भरे वचन सुनकर क्षणमात्र ध्यान करके व्यासजी ने कहा, हे अश्वत्थामन्! इस पाप का प्रायश्चित्त किसी स्मृति में तो लिखा नहीं है। परन्तु हम एक उपाय तुमको बताते हैं। दक्षिण समुद्र में रामसेतु के समीप धनुष्कोटि नामक तीर्थ सब पातकों के दूर करने में समर्थ है। हे अश्वत्थामन्! तू उस तीर्थ में जाकर स्नान कर। एक महीने स्नान करने से शुद्ध हो जायगा।

व्यासजी की यह आज्ञा सुन अश्वत्थामा धनुष्कोटितीर्थ पर पहुँचा और संकल्पपूर्वक एक मास नियम से स्नान किया। नित्य तीन काल रामनाथ का पूजन और पञ्चाक्षर मन्त्र का जप किया। एक महीना पूरा होने पर उस दिन उसने व्रत रक्खा और रामनाथ के समीप

रात्रि को जागरण किया। प्रभात होते ही धनुष्कोटि में स्नान करके रामनाथ का पूजन किया और भक्ति से अश्रुपात करता हुआ शिवजी के आगे नृत्य करने लगा। तब भक्त-वत्सल श्रीमहादेवजी प्रसन्न होकर प्रकट हुये। अश्वत्थामा उनको देखकर स्तुति करने लगा।

द्रौणिरुवाच—नमस्ते देवदेवेश करुणाकर शङ्कर। आपदम्बुधिमग्नानां पोतायितपदाम्बुज ॥ १ ॥ महादेव कृपामूर्त्ते धूर्जटे नीललोहित। उमाकान्त विरूपाक्ष चन्द्रशेखर ते नमः ॥२॥ मृत्युञ्जय त्रिनेत्र त्वं पाहि मां कृपया दृशा। पार्वतीपतये तुभ्यं त्रिपुरघ्नाय शम्भवे ॥ ३ ॥ पिनाकपाणये तुभ्यं त्र्यम्बकाय नमो नमः। अनन्तादिमहानागहारभूषणभूषित ॥ ४ ॥ शूलपाणे नमस्तुभ्यं गङ्गाधर मृडाव्यय। रक्ष मां कृपया देव पापसंघातपञ्जरात् ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी ने यह स्तुति सुनकर प्रसन्न हो अश्वत्थामा से कहा, हे द्रोणपुत्र! धनुष्कोटि में स्नान करने से सुप्तमारण-दोष से तू मुक्त हुआ। अब जो वर चाहे, वह माँग। शिवजी का यह वचन सुनकर अश्वत्थामा ने प्रार्थना की, हे महाराज! मैं आपके दर्शन से ही

कृतार्थ हुआ। आपका दर्शन पापी पुरुषों को कोटिजन्म में भी दुर्लभ है। अब यही वर चाहता हूं कि आपके चरणारविन्द में दृढ़ भक्ति रहे। शिवजी ने उसको यही वर दिया और अन्तर्धान हुये और अश्वत्थामा निष्पाप हो गया। तब सब ऋषियों ने उसको अपने में मिलाया। सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! धनुष्कोटि का यह वैभव हमने वर्णन किया। जिसमें स्नान करते ही अश्वत्थामा शुद्ध हुआ। जो पुरुष इस अध्याय को पढ़े अथवा श्रवण करे, वह सब पापों से मुक्त होकर शिवलोक को अवश्य प्राप्त होता है।

इकतीसवाँ अध्याय समाप्त।

बत्तीसवाँ अध्याय।

राजा नन्द और धर्मगुप्त की अद्भुत कथा और धनुष्कोटितीर्थ का माहात्म्य।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! हम आपकी प्रीति के लिये फिर भी धनुष्कोटि का वैभव वर्णन करते हैं। चन्द्रवंश में नन्द नाम एक

बड़ा प्रतापी चक्रवर्त्ती राजा हुआ है। उसके पुत्र का नाम धर्मगुप्त था। राजा नन्द सब राज्य-भार पुत्र को सौंपकर तप करने के हेतु वन को चला गया। धर्मगुप्त राज्य करने लगा। धर्मगुप्त ने बहुत यज्ञ किये और ब्राह्मणों को सुवर्ण, गौ, भूमि आदि दान दिये। उसके राज्य में सब प्रजा धर्म में तत्पर थी और चोर आदि की पीड़ा किसी को स्वप्न में भी नहीं थी। किसी समय धर्मगुप्त घोड़े पर चढ़कर आखेट के लिये वन को गया। वह वन ताल, तमाल, हिंताल, कुरबक आदि वृक्षों से पूर्ण कमल, कुमुद, कह्लार, नीलोत्पल आदि से भरे तड़ागों से शोभित था। उस वन में अनेक ऋषि तप करते थे। वहीं पर राजा धर्मगुप्त मृगया खेलने लगा। वह एक मृग के पीछे लगा हुआ दूर चला गया और सब सेना पीछे रह गई। इतने में रात्रि हो गई। तब राजा धर्मगुप्त एक सरोवर के तट पर उतरा। वहां संध्याकर, रात्रि व्यतीत करने के लिये सिंह आदि जीवों के भय से एक वृक्ष

पर चढ़ गया। इतने में एक रीछ भागता हुआ आया, जिसके पीछे एक सिंह लग रहा था। वह रीछ भी सिंह से भयभीत होकर इसी वृक्ष पर चढ़ गया। उसने राजा को देखा और कहा, हे महाभाग! मुझसे मत डर, हम दोनों यहां रात्रि व्यतीत कर देंगे। नीचे बड़ा भयंकर सिंह खड़ा है। अब आधी रात तक तू सो जा, मैं तेरी रक्षा करूंगा। पीछे मैं सोऊँगा, तू मेरी रक्षा करना।

रीछ का वचन सुनकर धर्मगुप्त सो गया। रीछ उसकी रक्षा करने लगा। तब सिंह ने कहा, हे रीछ! मनुष्य सो गया है, इसको तू नीचे ढकेल दे। तब रीछ ने कहा, हे मृगराज! तू धर्म नहीं जानता। विश्वासघाती पुरुष की कभी सद्गति नहीं होती। ब्रह्महत्या आदि पाप, तो किसी प्रकार निवृत्त भी हो सकते हैं, परन्तु मित्रद्रोह का पाप कोटि जन्मों में भी नहीं छूटता। पृथ्वी को जितना भार विश्वासघातक पुरुष का लगता है, उतना मेरु आदि महापर्वतों का नहीं। रीछ का यह वचन सुनकर सिंह चुप हो गया। इतने में

आधी रात हुई, तब रीछ सोया। राजा उसकी रक्षा में बैठा। सिंह ने राजा से कहा, इस रीछ को नीचे डाल दे। सिंह का यह वचन सुनकर राजा ने उस रीछ को धीरे से ढकेल दिया, परन्तु वह रीछ भूमि पर न गिरा। उसने वृक्ष की एक शाखा पकड़ ली और ऊपर चढ़कर राजा से बोला, हे राजन्! मैं भृगुकुल में उत्पन्न ध्यान-काष्ठनामक मुनि हूं। मैंने अपनी इच्छा से रीछ का रूप धारण किया है। तूने विना अपराध मुझे नीचे डालना चाहा, इसलिये तू उन्मत्त हो जावे।

राजा को यह शाप देकर सिंह से कहा, हे सिंह! तू कुबेर का मंत्री नृसिंह नामक यक्ष है। एक समय तू अपनी भार्या को संग लेकर हिमालयपर्वत में गौतमऋषि के आश्रम के समीप जाकर विहार करने लगा। इतने में गौतमऋषि समिधा लेने को अपनी पर्णकुटी से निकले। गौतममुनि ने तुझको नग्न देखकर शाप दिया, हे मूढ़! हमारे आश्रम के समीप तू विवस्त्र हुआ, इसलिये तू सिंह हो जावे। इस भांति तू

गौतम मुनि के शाप से सिंह हुआ है। कुबेर बड़े महात्मा हैं और उनके मन्त्री भी धर्मात्मा हैं, फिर तुम हमको क्यों मारना चाहते हो? यह ध्यानकाष्ठमुनि का वचन सुनते ही सिंहरूप छोड़कर वह दिव्य यक्ष का रूप धारणकर मुनि को प्रणामकर बोला, हे मुने! आज मुझे पूर्व जन्म का वृत्तान्त स्मरण आया। गौतम ने मेरा शापान्त यह किया था कि जब ऋक्षरूप ध्यान-काष्ठमुनि से तेरा संवाद होगा, तब तू सिंहरूप को छोड़कर यक्ष होगा। वह संवाद आज हुआ और आपके प्रभाव को मैंने जाना।

इतना कहकर मुनि को प्रणामकर विमान पर चढ़ यक्ष तो अलकापुरी को गया और मुनि भी अपनी इच्छानुसार चल दिये। धर्मगुप्त भी उन्मत्त होकर वन में बिचरने लगा। इतने में उसकी सेना और सब मन्त्री आ मिले और राजा की यह अवस्था देखकर किसी प्रकार राजधानी को लाये। वहां से नर्मदा नदी के तट पर राजा धर्मगुप्त को ले गये, जहां पर उसका

पिता नन्द तप करता था। नन्द से सब वृत्तान्त कहा। तब राजा नन्द अपने पुत्र को जैमिनि-मुनि के पास लाया और प्रार्थना की, हे महाराज! यह मेरा पुत्र उन्मत्त हो गया है, आप इसके आरोग्य होने का कोई उपाय बतावें। राजा नन्द का यह वचन सुनकर जैमिनिमुनि कुछ काल ध्यान धरकर बोले, हे राजन्! तेरे पुत्र को ध्यान-काष्ठमुनि ने शाप दिया है, उस शाप की निवृत्ति का उपाय हम कहते हैं। दक्षिण समुद्र के तट पर रामसेतु में सब पाप और शाप हरनेवाला धनुष्कोटि नामक एक तीर्थ है। उसी स्थान पर अपने पुत्र को ले जाकर स्नान कराइये, तब यह आरोग्य हो जायगा।

जैमिनिमुनि का यह वचन सुनकर राजा नन्द अपने पुत्र को धनुष्कोटितीर्थ पर ले आया और स्नान कराया। स्नान कराते ही उसका उन्माद निवृत्त हो गया। राजा नन्द ने भी धनु-ष्कोटि में स्नान किया और एक दिन उपवास-कर भक्ति से रामनाथ का पूजन किया। राजा

नन्द, तो तप करने चला गया। पीछे से धर्मगुप्त ने ब्राह्मणों को दान दिये और भक्ति से रामनाथ का पूजन किया। कुछ दिन वहां पर रहकर अपने मन्त्रियों-समेत राजधानी को आया और धर्म से राज्य करने लगा। सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! जो पुरुष भूत, राक्षस, ग्रह, अपस्मार, उन्माद आदि से पीड़ित हो, उसको धनुष्कोटि में अवश्य स्नान करना चाहिये। जो पुरुष धनु-ष्कोटितीर्थ को छोड़कर किसी अन्य तीर्थ को ढूंढ़ता-फिरता है, वह गोदुग्ध छोड़कर थूहर के दुग्ध को ढूंढ़नेवाले मनुष्य के समान मूर्ख होता है। जो मनुष्य तीनों काल अथवा स्नान के ही समय नित्य धनुष्कोटि का स्मरण करते हैं, वे अवश्य ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं। हे मुनिवर्य! इस धर्मगुप्त की कथा श्रवण करने से ब्रह्महत्या, सुवर्णस्तेय आदि सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।

तेंतीसवाँ अध्याय ।

परावसु ब्राह्मण की कथा तथा धनुष्कोटितीर्थ का माहात्म्य ।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! हम फि भी धनुष्कोटि का प्रभाव वर्णन करते हैं, जिसके श्रवण करते ही सब पातक दूर हो जाते हैं। पूर्व काल में एक परावसु नामक वेदवेत्ता ब्राह्मण अज्ञान से अपने पिता को मारकर धनुष्कोटि-तीर्थ में स्नानकर उस घोर हत्या से छूटा। यह सुनकर ऋषियों ने पूछा, हे सूतजी ! परावसु ने अपने पिता को क्यों मारा, फिर उस हत्या से किस विधि छूटा, यह आप वर्णन करें। तब सूतजी कहने लगे, हे मुनिवर्य ! बृहद्द्युम्न नामक एक बड़ा धर्मात्मा चक्रवर्ती राजा पूर्व काल में हुआ है। जिसने अनेक यज्ञ किये और उसके यज्ञ करानेवाले रैभ्यमुनि थे। उनके अर्वावसु और परावसु ये दो पुत्र थे। वे दोनों पुत्र वेद, वेदाङ्ग, श्रौत, स्मार्त, न्याय, मीमांसा, सांख्य, योग-शास्त्र आदि में निपुण थे।

रैभ्यमुनि ने एक समय इन दोनों पुत्रों को

यज्ञ कराने के हेतु राजा बृहद्द्युम्न के पास भेजा और रैभ्यमुनि अपनी बड़ी स्नुषा अर्थात् अर्वावसु की स्त्री-सहित अपने आश्रम में रहे। पिता की आज्ञा से वे दोनों भाई भी राजा को यज्ञ कराने लगे। सब कर्म साङ्गोपाङ्ग उन्होंने भली भाँति कराये, कहीं चूके नहीं। उस यज्ञ में राजा के निमन्त्रण से वशिष्ठ, गौतम, अत्रि, जाबालि, कश्यप, क्रतु, दक्ष, पुलस्त्य, पुलह, नारद, मार्कण्डेय, शतानन्द, विश्वामित्र, पराशर, भृगु, कुत्स, वाल्मीकि, व्यास, धौम्य आदि अपने २ हज़ारों शिष्य, प्रशिष्यों को साथ लिये आये। चारों दिशाओं से बड़े २ राजा भाँति २ की भेंट लेकर उस यज्ञ में आये। चारों वर्ण और चारों आश्रम के मनुष्य भी उस यज्ञ में एकत्र हुये।

राजा बृहद्द्युम्न ने सबका सत्कार किया और अनेक प्रकार के उत्तम २ भोजन, वस्त्र, रत्न, सुवर्ण, गौ आदि देकर सबको सन्तुष्ट किया। रैभ्य के पुत्रों ने सब यज्ञ-कर्म ऐसी चतुरता से कराया कि वशिष्ठ आदि मुनिवर्य ने भी उनकी

बहुत प्रशंसा की । तीसरे सवन के अन्त में परावसु अपने घर को सम्हालने आया और अर्वावसु यज्ञ में रहा । परावसु रात्रि के समय अपने आश्रम में पहुँचा, आगे से मृगचर्म ओढ़े रैभ्यमुनि आते थे । परावसु ने जाना कि कोई दुष्ट मृग मुझे मारने आता है, इसलिए पहिले मैं ही इसको मार डालूं । परावसु ने यह विचारकर अपने पिता को मार दिया । उस समय अन्धकार था और परावसु निद्रा से पीड़ित था, इसलिए उसको यह धोखा हुआ । जब वह मारकर समीप आया, तब देखा कि यह तो मेरा पिता है । तब वह बहुत विलाप करने लगा और अपने पिता की सब प्रेतकृत्य किया और फिर यज्ञ में आकर सब वृत्तान्त अपने छोटे भाई अर्वावसु से कहा । वह भी सुनकर शोक से रोदन करने लगा । फिर उससे परावसु ने कहा कि राजा का यज्ञ हो रहा है, तू इसका भार नहीं उठा सकता है । मुझसे ब्रह्महत्या हो गई । मुझे उसका प्रायश्चित्त करना चाहिये, मैं अकेला भी यज्ञ का भार उठा सकता हूं । परन्तु

तू बालक है, तुझ अकेले से यहां का काम न चलेगा । इसलिये मेरी हत्यानिवृत्त के लिये तू व्रत धारणकर और मैं यज्ञ कराऊंगा । अर्वावसु ने अपने ज्येष्ठ भ्राता की आज्ञा अङ्गीकार की और अपने बड़े भाई परावसु को यज्ञ में छोड़कर आप चला गया । अर्वावसु ने बारह वर्ष तक ब्रह्महत्यानिवृत्त का व्रत और तीर्थाटन किया । बारह वर्ष के अन्त में अर्वावसु फिर यज्ञ में आया । उसको देखते ही परावसु ने कहा, हे राजन् ! यह ब्रह्महत्या किये तुम्हारे यज्ञ में आता है, इसको शीघ्र ही बाहर निकलवाइये, नहीं तो यज्ञ भ्रष्ट हो जायगा ।

राजा बृहद्द्युम्न ने यह सुनते ही अपने सेवकों को आज्ञा दी कि बहुत शीघ्र अर्वावसु को यज्ञ से बाहर निकालो । तब अर्वावसु ने कहा कि मैंने ब्रह्महत्या नहीं की । ब्रह्महत्या तो मेरे ज्येष्ठ भ्राता परावसु ने की है और इसके बदले मैंने बारह वर्ष पर्यन्त प्रायश्चित्त किया है । अर्वावसु का यह वचन किसी ने न माना और उसको

निकाल दिया। सब ब्राह्मणों ने भी उसको धिक्कार दिया, वह इस भांति अनादर पाकर तपोवन में जाकर उग्र तप करने लगा। उसने सूर्य भगवान् की प्रसन्नता के लिये ऐसा तप किया कि थोड़े ही काल में सूर्यनारायण प्रसन्न होकर प्रकट हुए। इन्द्र आदि सब देवता भी वहां आये और अर्वावसु से कहा, हे अर्वावसु तू तप, ब्रह्मचर्य, वेद, आचार, शास्त्रज्ञान आदि करके श्रेष्ठ है। परावसु ने तेरा निराकरण किया, तो भी तू उस पर क्रोध नहीं करता। परावसु ने पिता को मारा और तैंने उसके बदले प्रायश्चित्त किया, इसलिये अब हम तुझे स्वीकार करते हैं और परावसु को त्यागते हैं।

फिर सूर्य आदि देवताओं ने कहा, हे अर्वावसु! और जो चाहे, सो वर मांग। तब अर्वावसु बोला, हे महाराज! मैं यही वर चाहता हूं कि मेरा पिता फिर जी उठे और पिता के वध का वृत्तान्त सब भूल जावे। देवताओं ने यही वर अर्वावसु को दिया और कहा कि और भी

वर मांग। तब अर्वावसु ने कहा कि यह वर मिले कि मेरा भ्राता परावसु पिता की हत्या से छूटे। देवताओं ने यह सुनकर कहा, हे अर्वावसु! ब्राह्मण तिसमें भी पिता, उसको मारने से बड़ी हत्या परावसु को लगी है और पञ्चमहापातकों में और के द्वारा प्रायश्चित्त करने से पातक निवृत्त नहीं होता। तिसमें ब्राह्मण पिता को मारनेवाला, तो आप भी प्रायश्चित्त करे, तो भी शुद्ध नहीं हो सकता, इसलिये परावसु किसी प्रकार शुद्ध नहीं हो सकता।

देवताओं का यह वचन सुनकर अर्वावसु ने फिर प्रार्थना की, हे महाराज! आप अनुग्रह करके कोई उपाय बतावें, जिससे मेरे भ्राता का उद्धार हो जाय। यह आप मुझ पर कृपा करें। तब देवताओं ने बहुत काल विचारकर कहा, हे अर्वावसु! हम एक उपाय तुझे बताते हैं। दक्षिण समुद्र के तट पर रामसेतु में धनुष्कोटि नामक एक बड़ा तीर्थ है, उसमें स्नान करते ही सब पातक, महापातक आदि निवृत्त हो जाते हैं

और दुःस्वप्न, ऋण, दारिद्र्य, अमङ्गल आदि का नाश होकर धन तथा सन्तान आदि की वृद्धि होती है। जो पुरुष निष्काम होकर उसमें स्नान करते हैं, वे मोक्ष पाते हैं। जो धनुष्कोटि नाम को स्मरण करता रहे, वह भी स्वर्ग और मोक्ष का अधिकारी होता है। यदि उस तीर्थ में जाकर तेरा भ्राता स्नान करे, तो निश्चय उसी क्षण ब्रह्महत्या से छूट जाय। यह अति गुप्त बात हमने तुझको बता दी है।

इतना कहकर सब देवता अपने २ धाम को गये। अर्वावसु भी अपने भ्राता को साथ लेकर धनुष्कोटि पर पहुँचा। वहां दोनों भ्राताओं ने संकल्पपूर्वक धनुष्कोटि में स्नान किया। स्नान के अनन्तर आकाशवाणी हुई, हे परावसु! अब तू पिता की हत्या से छूट गया। यह सुनकर परावसु बहुत प्रसन्न हुआ और अर्वावसु को साथ लेकर, धनुष्कोटि को प्रणाम कर और भक्ति से रामनाथ महादेव का पूजन कर निष्पाप होकर अपने आश्रम को आया। आश्रम में आकर

देखा कि रैभ्यमुनि बैठे हैं, दोनों भाइयों ने उनको प्रणाम किया। रैभ्यमुनि भी अपने पुत्रों को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और परावसु को निष्पाप जानकर सब मुनियों ने भी ग्रहण कर लिया। हे मुनिवर्य! इस प्रकार धनुष्कोटि के प्रभाव से परावसु पितृहत्या से छूटा। धनुष्कोटि में स्नान करते ही और भी महापातक निवृत्त होते हैं। जो पुरुष इस अध्याय को पढ़े, अथवा सुने, वह भी सब पातकों से मुक्त हो जाता है।

तेंतीसवाँ अध्याय समाप्त।

चौंतीसवाँ अध्याय।

एक वानर और जम्बुक तथा सुमति नामक एक महापापी ब्राह्मण की कथा।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! फिर भी हम धनुष्कोटि का प्रभाव वर्णन करते हैं। पूर्व काल में एक वानर और एक जम्बुक दोनों मित्र थे। पहिले जन्म में वे दोनों मनुष्य थे, तब भी उनका बड़ा स्नेह था। वानर जम्बुक हुये, तब भी दोनों परस्पर स्नेह रखते और दोनों जातिस्मर थे। एक दिन

वह जम्बुक श्मशान के बीच किसी मृतक के शरीर को खाता था। तब वानर ने कहा, हे मित्र! तैंने पूर्व जन्म में क्या पाप किया था कि श्मशान में दुर्गन्ध-युक्त मनुष्यमांस तू भक्षण कर रहा है। तब जम्बुक कहने लगा कि हे मित्र! मैं पूर्वजन्म में वेद-शास्त्र के जाननेवाला, देवशर्मा नाम ब्राह्मण था। मैंने ब्राह्मण को धन देना कहकर फिर न दिया। उसी पाप से मैं जम्बुक हुआ और उसी पापसे यह मनुष्यमांस खाता हूं। जो दुष्ट पुरुष स्वीकार करके फिर ब्राह्मण को नहीं देते, वे अवश्य जम्बुकयोनि में प्राप्त होते हैं। उनके दश जन्म के किये हुए पुण्य उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं और सौ अश्वमेध करने से भी वह पाप नहीं निवृत्त होता। अब मैं नहीं जानता कि इस पाप से कब छूटूंगा। ब्राह्मण को देना स्वीकार करके अवश्य देना चाहिये, नहीं तो जम्बुकयोनि में अवश्य ही जन्म लेना पड़ता है।

इतना कहकर जम्बुक ने पूछा, हे मित्र! तैंने क्या पाप किया? जिससे वानर हुआ और विना

अपराध वनचर पक्षियों को मारता फिरता है। तब वानर कहने लगा कि मैं भी पूर्व जन्म में वेदनाथ नाम ब्राह्मण था और मेरे पिता का नाम विश्वनाथ और माता का नाम कमला था। पूर्व जन्म में भी तेरे साथ मेरी मैत्री थी, यह तू भी जानता है। मैंने शिवजी का इतना आराधन किया कि मैं त्रिकालज्ञ हुआ, परन्तु एक दिन किसी ब्राह्मण का शाक मैंने हर लिया, उसी पाप से मुझे वानर होना पड़ा। इसलिये कभी ब्राह्मण की कोई वस्तु न हरनी चाहिये। विष तो खानेवाले को ही मारता है और ब्राह्मण का धन कुलसमेत नाश करता है। ब्राह्मण के धन को हरनेवाला पुरुष बहुत दिन तक कुम्भीपाक नरक में रहकर वानर होता है। ब्राह्मण चाहे बालक, दारिद्र्य, कृपण और मूर्ख चाहे जैसा हो, उसका अनादर कभी न करना चाहिये। मुझे सब ज्ञान है, परन्तु इस पाप के निवृत्त होने का उपाय नहीं जानता। तू भी जातिस्मर है, परन्तु किसी प्रतिबन्ध से भूत और भविष्य तू भी नहीं

जानता। अब हे मित्र! यह दोनों नहीं जानते कि इन पापयोनियों से कब छूटेंगे।

इस प्रकार दोनों वार्तालाप कर रहे थे, इतने में वहां सिन्धुद्वीपऋषि आ निकले। जो रुद्राक्ष और विभूति से भूषित शिवजी का नाम लेते मानो साक्षात् शिव ही थे। उनको देखकर वानर और जम्बुक ने भक्ति से प्रणाम किया और प्रार्थना की, हे महाराज! कृपा करके हमको कोई ऐसा उपाय बतावें, जिससे हम दोनों दुष्टयोनियों से छूटें। आप जैसे महात्मा अनाथ, कृपण, मूर्ख, बालक, रोगी, दुःखी आदि जीवों की रक्षा करते हैं। सिन्धुद्वीपमुनि उनका यह दीन वचन सुनकर बहुत काल ध्यानकर बोले, हे शृगाल! तैंने एक सेर धान ब्राह्मण को देने को कहकर फिर न दिये इससे तू जम्बुक हुआ और हे वानर! तैंने ब्राह्मण के घर में शाक चोराया था, इसलिये सब पक्षियों को भय देनेवाली वानरयोनि में प्राप्त हुआ। अब तुम्हारे उद्धार के लिये हम

एक उपाय बताते हैं दक्षिणसमुद्र में धनुष्कोटितीर्थ है, उस तीर्थ में जाकर स्नान करो। तब इस पापयोनि से मुक्त होगे।

पूर्वकाल में सुमति नामक ब्राह्मण ने एक किराती स्त्री अर्थात् भीलिनी के संग में सुरापान किया था, वह भी धनुष्कोटि में स्नानकर शुद्ध हुआ। यह सुनकर जम्बुक और वानर ने पूछा, हे महाराज! सुमति कौन था और उसने किरात की स्त्री के संग में किस प्रकार सुरापान किया; यह आप वर्णन करें। तब सिन्धुद्वीपमुनि कहने लगे कि महाराष्ट्र देश में वेद और शास्त्र का जाननेवाला यज्ञदेव नामक एक ब्राह्मण था। वह सदा अतिथियों का पूजन और शिवार्चन किया करता था। उसके सुमति नामक एक पुत्र था। वह अपने माता पिता और पतिव्रता भार्या को छोड़कर विटों के साथ लगकर उत्कलदेश को चलागया। उस देश में एक युवती किराती रहती थी। जो तरुण पुरुषों को अपने रूप से वश करके उनका समस्त धन हर लेती थी।

एक दिन सुमति ब्राह्मण भी उसके घर गया परन्तु इसके पास धन न था। इस कारण उस स्त्री ने इसका कुछ भी आदर न किया। तब यह उदास होकर चला आया। परन्तु वह मन में बस गई थी, इसलिये नित्य चोरी करने लगा। कुछ काल में थोड़ा धन एकत्र करके उसके पास गया और वह धन उसको दिया, तब वह प्रसन्न हुई। उसी दिन से सुमति उसके घर में रहने लगा और नित्य उसके साथ भोजन करता। दोनों एक ही चषक अर्थात् प्याले में मद्य पीते और रात्रि को एकत्र सोते। इस प्रकार सुमति वहां हीं आसक्त होगया। माता, पिता और अपनी पतिव्रता पत्नी को भूल गया। एक दिन वह किरातों के साथ लगकर चोरी करने के हेतु निकला। वे सब लाटदेश में पहुँचे, रात्रि को चोरी करने के लिये एक ब्राह्मण के घर में घुसे।

वह ब्राह्मण जग उठा, तब सुमति ने खड्ग से उसके दो टुकड़े करडाले और बहुत सा धन वहां से ले किराती के घर को चला। परन्तु

अतिभयंकर नीले वस्त्र पहिने, लाल केशवाली, गर्जती और भूमि को कँपाती हुई ब्रह्महत्या उसके पीछे लगी। उसके भय से सुमति सब देशों में दौड़ता फिरा। परन्तु वह ब्रह्महत्या पीछे लगी रही। तब वह अपने ग्राम में पहुँचा और पिता के पास जाकर पुकारा, हे पितः! मेरी रक्षा करो। पुत्र का यह दीन वचन सुनकर पिता ने कहा, मत डर, मैं तेरी रक्षा करता हूँ।

तब ब्रह्महत्या बोली, हे ब्राह्मण! इसकी रक्षा का यत्न मत कर, यह बड़ा पातकी है। इसने माता, पिता और पतिव्रता पत्नी का त्याग किया, फिर किराती का संगकर सुरापान किया, चोरी की और ब्राह्मण का वध किया। इसलिये इसको मैं नहीं छोड़ती और तेरे सम्पूर्ण कुटुम्ब को भक्षण करूंगी। यदि तू इस पुत्र को छोड़ देगा तो तेरा कुटुम्ब बच जायगा और तुझे भी एक पुत्र के लिये सब कुटुम्ब का नाश करना उचित नहीं। इसलिये तू इसको त्याग दे। ब्रह्महत्या का यह वचन सुनकर यज्ञदेव ब्राह्मण बोला कि पुत्र

का स्नेह बहुत बलवान् है, इसलिये मैं इसका त्याग नहीं कर सकता। तब फिर ब्रह्महत्या ने कहा कि इस पतित का मोह मत कर। इसके दर्शन से भी पाप लगता है। इतना कहकर ब्रह्महत्या ने एक थप्पड़ सुमति के मारा, वह रोने लगा और हे मातः! हे पितः! कहकर चिल्लाने लगा। तब उसके माता, पिता और भार्या भी दुःख से रोदन करने लगे।

उसी अवसर में शिवजी के अवतार दुर्वासा-मुनि वहां आ निकले। तब यज्ञदेव ने उनको प्रणाम किया और बहुत सी स्तुति करके प्रार्थना की, हे महाराज! आप साक्षात् शिवजी के अंश हैं। आपका दर्शन पापी पुरुषों को कभी नहीं प्राप्त हो सकता। मेरा यह पुत्र बड़ा दुराचारी है और ब्रह्महत्या इसके पीछे लगी है। वह इसको मारना चाहती है। अब आप कृपाकर कोई ऐसा उपाय बतावें जिससे यह इस ब्रह्महत्या से छूटे। मेरे यह एक ही पुत्र है। इसके मर जाने से मेरा वंश उच्छिन्न हो जायगा

और पितरों को पिण्ड देनेवाला कोई न रहेगा। इसलिये आप कृपा करें। ब्राह्मण का यह वचन सुनकर दुर्वासामुनि ने बहुत काल तक ध्यान कर कहा, हे यज्ञदेव! यह तेरा पुत्र बड़ा पातकी है, इसके पातक का निवृत्त करनेवाला कोई प्रायश्चित्त नहीं। परन्तु हम एक उपाय बताते हैं, सावधान होकर सुनो। दक्षिणसमुद्र में राम-धनुष्कोटितीर्थ में जो तेरा पुत्र स्नान करे, तो तत्क्षण ही पातकों से मुक्त होजाय। उस तीर्थ में स्नान करने से दुर्विनीत नामक एक ब्राह्मण गुरु-स्त्री-गमन-पातक से मुक्त हुआ। वह श्रीरामचन्द्र-जी का बनाया धनुष्कोटितीर्थ सब पातक हरने में समर्थ है। उसी तीर्थ में स्नान करने से तेरा पुत्र अवश्य शुद्ध होजायगा।

चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त।

पैंतीसवाँ अध्याय।

दुर्विनीत नाम ब्राह्मण की कथा तथा धनुष्कोटि-तीर्थ का माहात्म्य।

यज्ञदेव ने पूछा, हे महाराज! दुर्विनीत

कौन था, उसने गुरु-स्त्री-गमन क्योंकर किया और धनुष्कोटि में स्नान कर उस महापातक से क्योंकर छूटा, यह आप कृपाकर मुझसे कथन करें। तब दुर्वासामुनि कहने लगे, हे यज्ञदेव! पाण्ड्य देश में बहुत शास्त्रों का जाननेवाला इध्मबाहु नामक एक ब्राह्मण था और उसकी रुचि नाम भार्या थी। उसके दुर्विनीत नाम का एक पुत्र हुआ। वह बालक ही था तभी इध्मबाहु मृतक होगया। दुर्विनीत ने अपने पिता का और्ध्वदैहिक कृत्य किया। कुछ दिन तो अपने घर में रहा, पीछे बारह वर्ष का दुर्भिक्ष पड़ा। तब वह अपनी माता-समेत देशान्तर को निकला और गोकर्ण में पहुँचा। वहां सुभिक्ष था, इस कारण वहां ही दोनों रहने लगे।

कुछ काल में दुर्विनीत तरुण होगया। एक दिन वह ऐसा काम के वश हुआ कि बलात्कारसे अपनी माता को पकड़ उसके साथ मैथुन किया और वह पुकारती रही। परन्तु यह काम से अन्धा हो रहा था। इसलिये कुछ न सुना और

यह महापातक करके शोचने लगा कि मैंने बड़ा ही घोर पातक किया। अब मेरा उद्धार क्योंकर होगा, मैंने अपनी जननी से मैथुन किया। यह शोचकर वह रोदन करने लगा। बहुत काल दुःख से रोदन करने के पश्चात् अपनी निन्दा करता हुआ मुनियों की समाज में गया। उसने मुनियों से प्रार्थना की, हे महाराज! मुझको गुरु-स्त्री-गमनके पातक का प्रायश्चित्त बताइये। यदि शरीर त्यागने से मेरी शुद्धता हो तो मैं करूं। अथवा और कोई प्रायश्चित्त आप कहें तो वह करूं। उसका यह वचन सुनकर कोई मुनि तो मौन होगये कि इसके साथ वार्ता करने से पातक लगताहै और कोई मुनि उससे कहने लगे, रे पातकी! तैंने मातृगमन किया है, इसलिये हमारे सम्मुख मत खड़ा हो, जल्दी चला जा।

उन सब मुनियों को निवारण कर परमदयालु श्रीवेदव्यासजी बोले, हे ब्राह्मणपुत्र! तू अपनी माता-सहित धनुष्कोटितीर्थ पर जा और जितेन्द्रिय, जितक्रोध और निराहार होकर मकर

के सूर्य में एक मास पर्यन्त नित्य स्नान करो। तब तुम दोनों निष्पाप होजावोगे। ऐसा कोई पाप नहीं जो धनुष्कोटि में स्नान करने से न निवृत्त होजाय। श्रुति, स्मृति और पुराणों में धनुष्कोटि की बड़ी प्रशंसा लिखी है। वह तीर्थ महापातक निवृत्त करने म समर्थ है। हे ब्राह्मण-पुत्र! हमारे वाक्य को तू वेद के तुल्य मान और शीघ्र ही धनुष्कोटितीर्थ पर जा। करोड़ों महा-पातक उस तीर्थ में स्नान करने से निवृत्त होजाते हैं। व्यासजी का यह वचन सुनकर, उनको प्रणामकर, अपनी माता को संग लेकर दुर्विनीत धनुष्कोटि पर पहुँचा। वहां जाकर निराहार और जितेन्द्रिय रहकर दोनों माता, पुत्र स्नान करने लगे। संकल्पपूर्वक एक महीने पर्यन्त स्नान किया और नित्य त्रिकाल रामनाथ का पूजन किया। इस विधि से मकर के सूर्य में स्नान कर, महीने के अन्त में पारण किया। तब वे दोनों फिर व्यासजी के पास आये और प्रणामकर व्यासजी से प्रार्थना की, हे महाराज! आपकी

आज्ञानुसार हमने माघमास में निराहार रहकर धनुष्कोटि में स्नान किया तथा नित्य रामनाथ का पूजन भी किया। अब आप जो आज्ञा करें वह की जाय। व्यासजी उसका यह वचन सुन-कर बोले, हे दुर्विनीत! अब तुम दोनों निष्पाप होगये। इसमें कुछ संदेह मत करो। अब तुम्हारे बान्धव और ब्राह्मण तुमको अवश्य ग्रहण कर लेंगे। हे दुर्विनीत! हमारे प्रसाद से अब तू शुद्ध होगया। अब जाकर विवाह कर और गृह-स्थाश्रम में रहकर धर्म का सेवन कर। जीव-हिंसा मत कर और भक्ति से सज्जनों का सेवन कर। सन्ध्यावन्दनआदि कर्मों को कभी मत छोड़। जितेन्द्रिय होकर नित्य शिव और विष्णु का पूजन कर, द्वेष मत कर और किसी की निन्दा करने में प्रवृत्त मत हो। दूसरे का ऐश्वर्य देख मन में सन्ताप मत कर। परस्त्री को माता के समान समझ। पढ़े हुये वेदों को कभी मत भूल। अतिथियों का अनादर मत कर। पितृदिन में भक्ति के सहित श्राद्ध कर। किसी का पैशुन्य अर्थात्

चुगुली स्वप्न में भी मत कर। इतिहास, पुराण, धर्म-शास्त्र, वेदान्त, वेद, वेदाङ्ग आदि नित्य देखता रह। शिव तथा विष्णु के नाम सदा उच्चारण करता रह। जाबाल्युपनिषद् के मन्त्रों से भस्मोद्धूलन और त्रिपुण्ड्र कर, रुद्राक्ष धारण कर, शौच और आचार में तत्पर होकर तुलसी और बिल्व-पत्र करके त्रिकाल, दो काल अथवा एकही काल नित्य नारायण और सदाशिव का अर्चन कर। तुलसीदल करके युक्त और चरणोदक से प्रोक्षित नैवेद्य सदा भोजन कर। अन्न की शुद्धि के लिये बलिवैश्वदेव कर। ब्रह्मचारी, भिक्षुक, वृद्ध, रोगी आदि जो घर में आवे, उसको भोजन आदि से सन्तुष्ट कर। नित्य माता की शुश्रूषा कर। पञ्चाक्षर, षडक्षर, अथवा अष्टाक्षर मन्त्र का नित्य जप कर। इस प्रकार और भी श्रुतिस्मृति-प्रोक्त धर्मों का सेवन कर। इस आचरण से देहान्त होने पर तू अवश्य ही मुक्ति पावेगा।

व्यासजी की यह आज्ञा पाकर वह अपने घर गया और बहुत काल गृहस्थधर्म का सेवन

कर, अन्त में मुक्त हुआ। उसकी माता ने भी धनुष्कोटि के प्रभाव से सद्गति पाई। इतनी कथा सुनाकर दुर्वासा मुनि ने कहा, हे यज्ञदेव! यह दुर्विनीत की कथा हमने तुझको सुनाई अब तू भी इस अपने पुत्र को साथ लेकर धनुष्कोटि को जा। सिन्धुद्वीप ऋषि कहते हैं, हे जम्बुक! हे वानर! दुर्वासामुनि की आज्ञा पाकर यज्ञदेव अपने पुत्र को धनुष्कोटितीर्थ पर ले गया। वहां दोनों छः महीने रहे। यज्ञदेव नित्य अपने पुत्र को धनुष्कोटि में स्नान कराता था। छः महीने के अन्त में आकाशवाणी हुई, हे यज्ञदेव! तेरे पुत्र की ब्रह्महत्या निवृत्त हुई और चोरी, सुरापान, किराती-संग आदि सब पापों से छूट गया। इसमें तू संशय मत कर।

यज्ञदेव यह आकाशवाणी सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और रामनाथ का पूजनकर धनुष्कोटि की प्रशंसा करता हुआ अपने पुत्र को साथ लेकर अपने घर आया और सुख से रहने लगा।

इतना कहकर सिन्धुद्वीप ऋषि ने जम्बुक और वानर से कहा कि तुम दोनों भी धनुष्कोटि में स्नान करो, तब निष्पाप होगे और कोई उपाय तुम्हारे निष्पाप होने का नहीं है। सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! सिन्धुद्वीपऋषि से यह उपदेश पाकर जम्बुक और वानर किसी प्रकार धनुष्कोटितीर्थ पर जा पहुँचे। वहां जाकर दोनों ने स्नान किया। स्नान करते ही दिव्यदेह होगये और विमान में बैठ कर उत्तम भूषण वस्त्र आदि से शोभित होकर स्वर्ग को गये। हे मुनिवर्य ! धनुष्कोटि के प्रभाव से इस प्रकार वानर और जम्बुक सद्गति को प्राप्त हुये। इस अध्याय को जो मनुष्य पढ़ता है अथवा सुनता है, वह धनुष्कोटितीर्थ-स्नान के फल को पाकर उस गति को प्राप्त होता है, जो योगियों को भी परम दुर्लभ है।

पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त।

छत्तीसवाँ अध्याय।

दुराचारनाम ब्राह्मण की कथा तथा महालय श्राद्ध के माहात्म्य का विस्तार सहित वर्णन।

सूतजी कहते हैं, हे मुनीश्वरो ! धनुष्कोटि का माहात्म्य कहांतक वर्णन करें। जहां स्नान कर एक बड़ा पातकी दुराचार नामक ब्राह्मण पापसे मुक्त हुआ। यह सुनकर मुनियों ने पूछा, हे सूतजी ! दुराचार कौन था, उसने क्या पाप किया, फिर धनुष्कोटि में स्नानकर क्योंकर निष्पाप हुआ ? यह आप वर्णन करें। तब सूतजी कहने लगे, हेमुनिवर्य ! दुराचार नामक एक ब्राह्मण बड़ा क्रूर और पापी गोदावरी नदी के तट पर रहता था वह सदा महा पातकी मनुष्यों का संग रखता, इससे वह भी महापातकी हो गया और ब्राह्मणत्व जाता रहा। जो ब्राह्मण एक दिन भी महापातकी का संग करता है, उसका चतुर्थांश ब्राह्मणत्व जाता रहता है। दो दिन महापातकी के साथ शयन, भोजन, सहवास आदि करने से आधा ब्राह्मणत्व रह

जाता है। तीन दिन के संसर्ग से तीन भाग ब्राह्मणत्व नष्ट होजाता है। चौथे दिन भी महापातकी का संसर्ग करे तो सम्पूर्ण ब्राह्मणत्व नष्ट होजाता है। चार दिवस पर्यन्त भी उसका संग करता रहे, तो वह भी महापातकी होजाता है। महापातकी मनुष्यों के संग से दुराचार का सब ब्राह्मणत्व जाता रहा और वह भी महापातकी होगया।

तब उसको एक भयंकर वेताल ने आक्रान्त कर लिया। वह भी वेतालाविष्ट हुआ, देश-देश और वन वन में भटकने लगा। वह भटकते भटकते दैवयोग से किसी समय धनुष्कोटितीर्थ में कूद पड़ा, तीर्थ का जल स्पर्श होते ही वेताल ने उसको छोड़ दिया। दुराचार भी तीर्थ से बाहर निकलकर विचार करने लगा, वह कौन देश है, जहाँ समुद्र का तीर देख पड़ता है। मैं गौतमी नदी के तट पर रहनेवाला, यहां क्योंकर आया। इतने में वहां दत्तात्रेयमुनि को देखकर, दुराचार उनके चरणों पर गिरकर प्रार्थना करने

लगा। हे महाराज ! मैं गोदावरीतटनिवासी दुराचार नाम ब्राह्मण हूं, मैं इस देश में क्योंकर आया और यह कौन देश है, आप कृपाकर मेरा संशय निवृत्त करें।

उसका यह वचन सुनकर क्षणमात्र विचार कर परमदयालु दत्तात्रेय मुनि बोले, हे दुराचार ! तैंने महापातकी मनुष्यों का संसर्ग किया, इससे तेरा ब्राह्मणत्व नष्ट हो गया, तब तुझे वेताल ने ग्रहण किया। वही तुझे यहाँ ले आया और धनुष्कोटितीर्थ में भी तुझे उसीने डुबाना चाहा; परन्तु तीर्थ का जल स्पर्श होते ही तू निष्पाप होगया इसलिये उस वेताल ने तुझे छोड़ दिया। धनुष्कोटितीर्थ में स्नान करने से सब पातक निवृत्त होजाते हैं, इसीसे तेरा भी संसर्गदोष निवृत्त हुआ और वेताल ने भी तुझे छोड़ दिया। जिस वेताल ने तुझे ग्रहण किया, वह भी पूर्वजन्म में ब्राह्मण था। उसने महालयपक्ष में पितरों का श्राद्ध नहीं किया, इसलिये पितरों के शाप से वह वेताल हुआ। वह भी धनुष्कोटि

का दर्शन करते ही करते वेतालत्व से छूटकर विष्णुलोक को गया।

जो पुरुष आश्विनकृष्णपक्ष में श्राद्ध नहीं करते, वे लोभी पितरों के शाप से वेताल होते हैं। जो पुरुष उस पक्ष में पितरों के हेतु ब्राह्मणों को उत्तम उत्तम भोजन खिलाते हैं, वे कभी दुर्गति को नहीं प्राप्त होते। सामर्थ्य के अनुसार एक, दो, तीन अथवा बहुत ब्राह्मणों को अवश्य ही भोजन कराना चाहिये। पितरों का श्राद्ध इसने नहीं किया, इससे वेताल हुआ और तुझे महापातकी जानकर इसने ग्रहण किया। भाद्रपद से लेकर वृश्चिकपर्यन्त महालय का काल तत्त्वदर्शी मुनिवरों ने कहा है। उसमें भी आश्विनमास और आश्विनमास में कृष्णपक्ष उत्तम है। आश्विन कृष्णपक्ष प्रतिपदा को जो मनुष्य भक्ति से श्राद्ध करता है, उसके ऊपर अग्नि देवता प्रसन्न होता है। श्राद्ध करनेवाला पुरुष अग्निलोक में जाकर, अग्नि के समीप सुख पूर्वक निवास करता है और अग्नि के

अनुग्रह से प्रतिपदा को श्राद्ध करनेवाला, सर्व ऐश्वर्य प्राप्त करता है। जो पुरुष प्रतिपदा को महालयश्राद्ध नहीं करता है, उसके गृह, क्षेत्र और ऐश्वर्य आदि को अग्नि दग्ध करता है। जो पुरुष प्रतिपदा के दिवस एक भी वेदवेत्ता ब्राह्मण को भोजन कराता है, तो दश दश कल्पपर्यन्त पितर तृप्त रहते हैं। द्वितीया के दिवस जो पुरुष महालयश्राद्ध करता है, वह शिवजी के अनुग्रह से बड़ी सम्पत्ति पाता है और शिवजी प्रसन्न होकर उसको कैलास में वास देते हैं। द्वितीया के दिवस जो पुरुष श्राद्ध नहीं करता है, उसके ब्रह्मवर्चस् को शिवजी कोप करके नष्ट कर देते हैं और वह पुरुष रौरव, कालसूत्र आदि नरकों में निवास करता है। जो पुरुष द्वितीया के दिवस एक ब्राह्मणको भी भोजन कराता है, तो बीस कल्पपर्यन्त उसके पितर तृप्त रहते हैं और पितरों के अनुग्रह से सन्तान की वृद्धि होती है। तृतीया के दिवस श्राद्ध करने से कुबेर तृप्त होते हैं और महापद्म आदि निधि

देते हैं। जो तृतीया को श्राद्ध नहीं करता है, वह दरिद्री और दुःखी रहता है। तृतीया को श्राद्ध करने से तीस हज़ार कल्प पर्यन्त पितर तृप्त रहते हैं। चतुर्थी को श्राद्ध करने से गणेशजी प्रसन्न होते हैं और सर्व विघ्न निवृत्त करते हैं। जो चतुर्थी को श्राद्ध नहीं करता है, उसके सब कार्यों में गणेशजी विघ्न करते हैं और वह पुरुष चण्ड कोलाहल नामक नरक में गिरता है। चतुर्थी को श्राद्ध करने से चालीस हज़ार कल्प पर्यन्त पितर तृप्त रहते हैं और श्राद्ध करनेवाले को बहुत पुत्र देते हैं। पञ्चमी को श्राद्ध करने से लक्ष्मी प्रसन्न होती है और बहुत सम्पत्ति देती है और प्रतिदिन उस पुरुष की कीर्त्ति बढ़ती है।

जो पुरुष पञ्चमी को श्राद्ध नहीं करता है, उसके घर को लक्ष्मी त्याग देती है और अलक्ष्मी का निवास होता है। पञ्चमी को श्राद्ध करने से पचास हज़ार कल्प पर्यन्त पितर तृप्त रहते हैं और उसके वंश का विच्छेद नहीं होता, पार्वती भी प्रसन्न होती हैं। षष्ठी को श्राद्ध करने से

स्वामिकार्त्तिकेय प्रसन्न होते हैं, उसके पुत्र, पौत्रों को ग्रह और बालग्रह कभी पीड़ा नहीं देते। जो पुरुष श्राद्ध नहीं करता है, उसके बालकों को जन्म लेते ही पूतना आदि ग्रह हर लेते हैं। वह पुरुष वह्निज्वालाप्रवेशनामक नरक में गिरता है। षष्ठी को श्राद्ध करने से साठहज़ार-कल्प पर्यन्त पितर तृप्त रहते हैं और पुत्र तथा सम्पत्ति को देते हैं। सप्तमी को श्राद्ध करने से सुवर्णहस्त श्रीसूर्यभगवान् प्रसन्न होकर अपने हाथ से सुवर्ण देते हैं और आरोग्यता भी देते हैं। जो पुरुष सप्तमी को श्राद्ध नहीं करता है, वह अनेक रोगों करके पीड़ित रहता है और तीक्ष्ण-धारास्त्रशय्या नामक नरक में गिरता है। सप्तमी को श्राद्ध करने से सत्तरहज़ार कल्पपर्यन्त पितर तृप्त रहते हैं और अविच्छिन्न सन्तान भी देते हैं। अष्टमी को श्राद्ध करने से मृत्युञ्जय सदा-शिव प्रसन्न होते हैं। शिवजी के प्रसन्न होने से कोई पदार्थ भी दुर्लभ नहीं, मुक्ति तो हाथ पर ही रक्खी रहती है। जो पुरुष अष्टमी को श्राद्ध

नहीं करता है, उसका कोई मनोरथ सिद्ध नहीं होता। वह संसार-सागर में डूबा ही रहता है, कभी मुक्ति नहीं पाता और वैतरणी में गिरता है। अष्टमी को श्राद्ध करने से अस्सी हज़ार कल्प पर्यन्त पितर तृप्त रहते हैं और अविच्छिन्न सन्तान देते हैं और सर्व विघ्न निवृत्त करते हैं। नवमी को श्राद्ध करने से दुर्गा भगवती प्रसन्न होती हैं और क्षय, अपस्मार, कुष्ठ, भूत, प्रेत, पिशाच आदि को निवृत्त करती हैं।

जो पुरुष नवमी को श्राद्ध नहीं करता है, वह अपस्मार आदि रोग और ब्रह्मराक्षस, अभिचार कृत्या आदि से पीड़ित होता है। उस दिवस श्राद्ध करने से नब्बे कल्प पर्यन्त पितर तृप्त रहते हैं और अविच्छिन्न सन्तान देते हैं। दशमी को श्राद्ध करने से चन्द्रमा प्रसन्न होते हैं और उसकी खेती अच्छी उपजती है और दशमी को श्राद्ध न करने से खेती निष्फल होती है। दशमी को श्राद्ध करने से सौ हज़ार कल्प पर्यन्त पितर तृप्त रहते हैं और अविच्छिन्न सन्तान देते हैं। एकादशी

को श्राद्ध करने से सब लोक का संहार करनेवाले रुद्र भगवान् प्रसन्न होते हैं। रुद्र भगवान् के प्रसन्न होने से वह पुरुष सब शत्रुओं को जीतता है। उसके ब्रह्महत्या आदि सब पातक निवृत्त होते हैं और उसके अग्निष्टोम आदि यज्ञों का फल प्राप्त होता है। जो पुरुष श्राद्ध नहीं करता है, वह शत्रुओं से पीड़ित रहता है और उसके सब यज्ञ निष्फल होते हैं।

एकादशी को श्राद्ध करने से दो सौ हज़ार कल्प पर्यन्त पितर तृप्त रहते हैं और अविच्छिन्न सन्तान देते हैं। द्वादशी को श्राद्ध करने से विष्णु भगवान् प्रसन्न होते हैं, विष्णु भगवान् के प्रसन्न होने से चराचर जगत् सन्तुष्ट होता है और प्रति दिन सम्पत्ति बढ़ती है। भगवान् की कौमोदकी गदा उसके सब रोगों का नाश करती है। सुदर्शन चक्र शत्रुओं का संहार करता है और पाञ्चजन्य शंख अपनी ध्वनि से भूत, प्रेत, राक्षस आदि के भय को निवृत्त करता है। इस प्रकार विष्णु भगवान् सब पीड़ा को हरते हैं।

जो द्वादशी को श्राद्ध नहीं करता है, उसकी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है और अपस्मार आदि रोग, भूत, प्रेत, राक्षस, शत्रु आदि पीड़ा देते हैं और अस्थिभेदन नामक नरक में गिरता है। द्वादशी को श्राद्ध करने से छह सौ हज़ार कल्प पर्यंत पितर तृप्त रहते हैं और अविच्छिन्न सन्तान देते हैं। त्रयोदशी को श्राद्ध करने से कामदेव प्रसन्न होता है और उत्तम उत्तम स्त्री, वस्त्र, भूषण, माला आदि वस्तुएँ प्राप्त होती हैं और जन्म भर सुखी रहता है।

जो पुरुष त्रयोदशी को श्राद्ध नहीं करता है, वह कोई भी भोग्य पदार्थ नहीं पाता और अङ्गार-शय्या नामक नरक में गिरताहै। जो पुरुष त्रयोदशी को महालयश्राद्ध करता है, उसके पितर हज़ार कल्प पर्यंत तृप्त रहते हैं और अविच्छिन्न सन्तान देते हैं। चतुर्दशी को श्राद्ध करने से शिवजी प्रसन्न होतेहैं और सब मनोरथ सिद्धकरते हैं और ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्णस्तेय आदि पातक तत्क्षण निवृत्त हो जाते हैं और अश्वमेध,

पौण्डरीक आदि यज्ञों का फल प्राप्त होता है। जो पुरुष चतुर्दशी को महालयश्राद्ध नहीं करता है, वह करोड़ों वर्ष संसाररूप अन्धकूप में पड़ा रहता है। कभी उसकी निष्कृति नहीं होती और महापातक विना किये ही महापातकों से लिप्त होता है और उसके यज्ञ आदि सब कर्म निष्फल होते हैं। जो पुरुष चतुर्दशी को भक्ति से महालयश्राद्ध करता है, उसके पितर यदि नरक में भी होयँ तो भी स्वर्गलोक को प्राप्त होते हैं और करोड़ों कल्प पर्यन्त तृप्त रहते तथा अविच्छिन्न सन्तान देते हैं। जो पुरुष अमावास्या को श्राद्ध करताहै, तो अनन्तकाल पर्यन्त उसके पितर तृप्त रहते हैं। अमृतपान से जैसी तृप्ति देवताओं को होती है, वैसी ही तृप्ति अमावास्या को श्राद्ध करने से पितरों को होती है। यह तिथि । महापुण्या है और देवता तथा पितरों की प्रिया है और शिवजी को भी बहुत प्रियाहै। अमावास्या को श्राद्ध करने से शिवजी प्रसन्न होते हैं और ब्रह्महत्या आदि पातक निवृत्त हो

जाते हैं और सर्व कार्य सफल होते हैं और श्राद्ध करनेवाला पुरुष मोक्ष को प्राप्त होता है।

जो पुरुष अमावास्या को श्राद्ध नहीं करता है, उसके पितर ब्रह्मलोक में हों तो भी नरकको चले जाते हैं और वंश भी विच्छिन्न हो जाता है। यह बड़ा अनर्थ है कि महालय की अमावास्या को जो पुरुष श्राद्ध नहीं करता है और ब्राह्मणों को भोजन नहीं कराता, उसके पितर आश्विन की अमावास्या को नृत्य करते हैं कि आज हमारे पुत्र ब्राह्मण भोजन करावेंगे, जिससे हम नरक क्लेश से छूटकर स्वर्ग को चले जावेंगे। जो पुरुष आश्विन कृष्णपक्ष में पितरों की तृप्ति के लिये नित्य ही ब्राह्मण भोजन कराता है, उसके मातृकुल और पितृकुल के पितर कई कल्प पर्यन्त अमृत पान करके तृप्त रहते हैं। सप्तमी से लेकर अमावास्या पर्यन्त नित्य तीन तीन ब्राह्मणों का भोजन करावे, द्वादशी से अमावास्या पर्यन्त तो अवश्य ही ब्राह्मण भोजन करावे। जो पुरुष ब्राह्मण भोजन नहीं कराता, उसका ऐश्वर्य भङ्ग

हो जाता है और वह अत्यन्त दरिद्रता को प्राप्त होता है। इसलिये धन का लोभ छोड़कर अनेक प्रकार के भोजन वेदवेत्ता ब्राह्मणों को करावे और उनको सन्तुष्ट करे। ब्राह्मणों के तृप्त होने से ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र आदि देवता और अग्निष्वात्त आदि पितर तृप्त होते हैं और तीनों लोक तृप्त होते हैं।

पार्वणविधान से महालयश्राद्ध करना चाहिये और यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये। दक्षिणा में वित्तशाठ्य न करे, दक्षिणा से यज्ञ सफल होता है। विधवा और अपुत्रा स्त्री भी अपने पति के उद्देश्य से यदि महालयश्राद्ध में ब्राह्मण भोजन न करावे, तो धर्म की हानि होती है और वह स्त्री नरक को जाती है। आश्विनमास में जो पुरुष महालयश्राद्ध नहीं करते, उनका वंश उच्छिन्न हो जाता है और ब्रह्महत्या को वे पुरुष प्राप्त होते हैं और जो पुरुष भक्ति से श्राद्ध करते हैं, उनका वंश कभी उच्छिन्न नहीं होता और सम्पत्ति भी स्थिर रहती है। मह नाम कल्याण

का है और आलय स्थान को कहते हैं, कल्याण का स्थान होने से महालय कहाता है। इससे कल्याण प्राप्ति के लिये महालयश्राद्ध अवश्य ही करना चाहिये। जो पुरुष महालयश्राद्ध को नहीं करता है, उसका अमङ्गल होता है। जो पुरुष माता-पिता की क्षयाहश्राद्ध न करे, तो महालय श्राद्ध को अवश्य ही करे, कभी न भूले।

जिस पुरुष को महालयश्राद्ध करनेकी सामर्थ्य न हो, तो याचना करके भी महालयश्राद्ध को करना चाहिये। परन्तु उत्तम ब्राह्मणों से धन धान्य लेवे, पतितों से कभी याचना न करे। ब्राह्मण से धन न मिले, तो क्षत्रिय से। क्षत्रिय से भी धन न मिले, तो वैश्य से याचना करे और वैश्य से भी न प्राप्त हो, तो पितरों की तृप्ति के लिये गोग्रास देवे और गोग्रास देने की भी सामर्थ्य न हो, तो जङ्गल में जाकर ऊंचे स्वर से रोदन करे और आंसू डालता हुआ, दोनों हाथों से अपने पेट को पीटकर यह कहे, हे पितरो! मैं निर्लज्ज, कृपण, दरिद्री और क्रूर कर्म करनेवाला

हूँ। महालयश्राद्ध करने की मेरी सामर्थ्य नहीं है। क्योंकि सम्पूर्ण पृथ्वी पर याचना करने से भी मुझे कुछ धन न मिला, इसलिये तुम्हारा महालयश्राद्ध मैं नहीं कर सकता, आप मुझपर क्षमा करें। ये वाक्य ऊंचे स्वर से रोदन करता हुआ यदि निर्जन वन में कहे, तो उसका रोदन सुनते ही पितर तृप्त हो जाते हैं। जिस प्रकार अमृत पान से देवता तृप्त होते हैं।

महालयश्राद्ध में ब्राह्मण भोजन कराने से जो तृप्ति पितरों को होती है, वही दरिद्री पुरुष के गोग्रास और अरण्यरोदन से भी होती है। महालयपक्ष में यदि सूतक आदि कोई भी विघ्न होजाय, तो सूतकान्त में वृश्चिक के सूर्य पर्यन्त भी श्राद्ध करे। महालयश्राद्ध में नव ब्राह्मणों को निमन्त्रण देवे, पिता १ पितामह २ प्रपितामह ३। मातामह १ प्रमातामह २ वृद्धप्रमातामह ३। इनके उद्देश्य से एक ब्राह्मण को, विश्वेदेवों के उद्देश्य से दो ब्राह्मणों को और विष्णु भगवान् के उद्देश्य से एक ब्राह्मण को निमन्त्रण देवे

इस प्रकार नव ब्राह्मणों को वरै। अथवा पिता आदि के निमित्त एक ब्राह्मण, मातामह आदि के उद्देश्य से एक ब्राह्मण, विश्वेदेवों के निमित्त एक और विष्णु भगवान् के उद्देश्य से एक ब्राह्मण वरै। इस प्रकार चार ही ब्राह्मणों को वरै; परन्तु ब्राह्मण वेदवेत्ता, कुलीन और सदाचारी होना चाहिये। दुःशील ब्राह्मणों को वरनेवाला श्राद्ध का घातक होता है। जो पुरुष आश्विन कृष्णपक्ष में महालयश्राद्ध करता है, वह पुरुष सब तीर्थों के स्नान का फल तथा अग्निष्टोम आदि यज्ञ करने का फल, तुलापुरुष आदि महादान करने का फल, चान्द्रायण आदि व्रत करने का फल और चारों वेदों के पारायण का फल, गायत्री आदि महामन्त्रों के जप का फल और इतिहास, पुराण आदि के श्रवण का फल पाता है। महालयश्राद्ध के तुल्य कोई पुण्य कर्म नहीं है, महालयश्राद्ध करने से विष्णुलोक, ब्रह्मलोक और शिवलोक की प्राप्ति होती है।

महालयश्राद्ध नित्य है और काम्य भी है,

इसी से उसके न करने से प्रत्यवाय होता है और करने से सब मनोरथ सिद्ध होते हैं। महालयश्राद्ध करने से भूत, वेताल, अपस्मार, ग्रह, शाकिनी, डाकिनी, राक्षस, पिशाच, वेताल और अनेक भी भूत तत्क्षण नाश को प्राप्त होते हैं और बहुत सम्पत्ति मिलती है। महालयश्राद्ध करने से राजा दशरथ ने रामचन्द्र आदि चार पुत्र पाये और उत्तम कीर्ति भी पाई। ययाति राजा ने भी महालयश्राद्ध के प्रभाव से यदु आदि उत्तम उत्तम पुत्र और स्वर्ग में वास पाया। दुष्यन्त राजा ने महालयश्राद्ध कर, भरत नामक पुत्र पाया। राजा नल महालयश्राद्ध के प्रभाव से बड़ी विपत्ति से छूटकर पुनः राज्य को प्राप्त हुआ और अपने शत्रु कलियुग और पुष्कर का निग्रह किया और इन्द्रसेन नामक उत्तम पुत्र पाया। हरिश्चन्द्र राजा भी महालय-विधान से विश्वामित्र के दिये हुए घोर दुःख से निवृत्त हुआ और पुनः अपनी भार्या चन्द्रवती और पुत्र रोहिताश्व को पाया और अठारह द्वीप

का प्रभु हुआ। दण्डकारण्य में महालयश्राद्ध कर रामचन्द्रजी ने रावण को मारा और सीता पाई। राजा युधिष्ठिर ने महालयश्राद्ध के प्रभाव से अपने सब शत्रु मार डाले। वशिष्ठ, अत्रि, भृगु, कुत्स, गौतम, अङ्गिरा, कश्यप, भरद्वाज, विश्वामित्र, अगस्त्य, पराशर, मार्कण्डेय आदि मुनि महालयश्राद्ध करने से अणिमा आदि आठ सिद्धियों को प्राप्त होकर जीवन्मुक्त हुये। इसलिये कल्याण चाहनेवाले पुरुषों को अवश्य ही महालयश्राद्ध करना चाहिये। जो पुरुष महालयश्राद्ध नहीं करता, उसको भूत, वेताल आदि से भय होता है।

इतना कहकर दत्तात्रेयजी बोले, हे दुराचार! कुशस्थल ग्राम में एक वेदनिधि ब्राह्मण रहता था। उसने महालयश्राद्ध नहीं किया, इसलिये पितरों के शाप से वेताल हुआ। वही वेताल तेरे शरीर में आविष्ट हुआ था। हे दुराचार! यदि तू महालयश्राद्ध करेगा और ब्राह्मणों को षट्रस-भोजन करावेगा तो सदा सुखी रहेगा और कभी

दरिद्री न होगा और आज से कभी महापातकी पुरुष का संग न करना, एक बार करने से तैंने अत्यन्त दुःख भोगा। अब तू हमारी आज्ञा से अपने देश को जा। दत्तात्रेय मुनि की आज्ञा पाकर दुराचार प्रसन्न हो अपने देश को गया और अपने घर में जाकर गृहस्थाश्रम के धर्म सेवन करने लगा। फिर उसने कभी महापातकी का संसर्ग नहीं किया और रामचन्द्र के धनुष्कोटितीर्थ में स्नान करने के प्रभाव से अन्त में मुक्त हुआ। इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले, हे मुनिवर्य! यह दुराचार के मुक्त होने का वृत्तान्त मैंने आपसे वर्णन किया। इस धनुष्कोटितीर्थ में सब पातक हरने की सामर्थ्य है और जिसमें स्नान करने से दुराचार भी मुक्त हुआ। इस धनुष्कोटितीर्थ का प्रभाव कौन वर्णन कर सकता है, जिन पापों का प्रायश्चित्त नहीं है और किसी प्रकार से भी जो पाप निवृत्त नहीं हो सकते, वे सब धनुष्कोटितीर्थ में स्नान करते ही नष्ट हो जाते हैं। शूद्र से स्थापित शिवलिङ्ग और विष्णुमूर्त्ति

को जो प्रणाम करता है, उस पाप का भी प्रायश्चित्त कहीं नहीं लिखा, परन्तु धनुष्कोटितीर्थ में स्नान करने से वह पाप भी निवृत्त हो जाता है।

ब्राह्मण का निन्दक, विश्वासघाती, कृतघ्न, भ्रातृस्त्रीगामी, शूद्रान्नभोजी, वेदनिन्दक, कन्याविक्रयी, घोड़े, गौ, देवमूर्ति, धर्म, तीर्थ, फल आदि बेचनेवाले, मातृपितृद्रोही, संन्यासियों से द्रोह करनेवाले, शिव, विष्णु, गुरु, ब्राह्मण, यती आदि के निन्दक और सत्कथा में दूषण लगानेवाले मनुष्यों के शुद्ध होने के लिये कोई भी प्रायश्चित्त नहीं कहा; परन्तु वे भी धनुष्कोटितीर्थ में स्नान करने से शुद्ध हो जाते हैं। हे मुनिवर्य! यह धनुष्कोटि का वैभव हमने वर्णन किया, जिसके श्रवण करने से मनुष्य मुक्त हो जाता है।

छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।

सैंतीसवाँ अध्याय।

क्षीरकुण्ड का माहात्म्य और मुद्गलमुनि की कथा।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! चक्रतीर्थ से लेकर धनुष्कोटि पर्यन्त चौबीस तीर्थों का माहात्म्य

मैंने वर्णन किया, अब आप क्या श्रवण किया चाहते हैं। सूतजी का यह वचन सुनकर नैमिषारण्य-वासी शौनक आदि मुनि बोले, हे सूतजी! आपने पहिले कहा था कि क्षीरकुण्ड के समीप चक्रतीर्थ है। उस चक्रतीर्थ का माहात्म्य तो श्रवण किया, अब आप क्षीरकुण्ड का माहात्म्य विस्तारपूर्वक वर्णन करिये और क्षीरकुण्ड के नाम का कारण भी कहिये।

मुनियों का यह प्रश्न सुनकर सूतजी बोले, हे मुनिवर्य! जो आपने पूछा उसका हम वर्णन करते हैं, आप श्रद्धापूर्वक श्रवण करें। देवीपत्तन से पश्चिम दिशा में थोड़ी दूर पर पुलग्राम नाम पुण्यक्षेत्र है, जहां से रामचन्द्रजी ने सेतु का आरम्भ किया। उसी स्थान में क्षीरकुण्ड है, जिसके ध्यान करने से, दर्शन से और स्पर्श से मनुष्य के पातक निवृत्त होते हैं। पूर्वकाल में नारायण की प्रीति के लिये मुद्गलमुनि ने पुलग्राम में यज्ञ किया, तब प्रसन्न हो विष्णुभगवान् प्रकट हुये। नीले मेघ के समान जिनका वर्ण, पीताम्बर पहिने,

शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए, कौस्तुभ-मणि से शोभित भक्तों को आनन्द देनेवाले और वामाङ्ग में लक्ष्मी से शोभित थे, उनको देखकर भक्तिपूर्वक मुद्गलमुनि स्तुति करने लगे ।

मुद्गल उवाच । प्रथमं जगतः स्रष्ट्रे पालकाय ततः परम् । संहर्त्रे च ततः पश्चान्नमो नारायणाय ते ॥ १ ॥ नमश्शङ्कर-रूपाय कमठाय चिदात्मने । नमो वराहवपुषे नमः पश्चास्यरूपिणे ॥ २ ॥ वामनाय नमस्तुभ्यं जमदग्निसुताय ते । राघवाय नमस्तुभ्यं बलभद्राय ते नमः ॥ ३ ॥ कृष्णाय कल्कये तुभ्यं नमो विज्ञानरूपिणे । रक्ष मां करुणासिन्धो नारायण जगत्पते ॥ ४ ॥ निर्लज्जं कृपणं क्रूरं पिशुनं दाम्भिकं शठम् ॥ परदारपरद्रव्यपरक्षेत्रैकलोलुपम् । असूयाविष्टमनसं मां रक्ष कृपया हरे ॥ ५ ॥

मुद्गलमुनि के मुख से यह स्तुति सुनकर भगवान् कहने लगे, हे मुद्गल ! हम तेरी भक्ति तथा स्तुति से प्रसन्न होकर यज्ञभाग ग्रहण करने के लिये स्वयं आये हैं । भगवान् का यह वचन सुनकर मुद्गलमुनि ने प्रार्थना की, हे महाराज ! आज मेरा जन्म, तप, वंश और शरीर सफल

हुआ, जो आप मेरे यज्ञ में हवि ग्रहण करने के लिये स्वयं आये । जिनको योगी पुरुष ध्यान से देखते हैं, उनका मैं साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ, इस प्रकार प्रार्थना कर मुद्गलमुनि ने पाद्य, अर्घ्य, आचमन, आसन, चन्दन, पुष्प आदि से भगवान् का पूजनकर, पुरोडाश आदि हवि उनको अर्पण किया । भगवान् ने भी उस हवि को अपने हाथ से ग्रहणकर भक्षण किया । भगवान् के हवि भक्षण करने से अग्नि सहित सब देवता, ब्राह्मण, ऋत्विक्, यजमान और सम्पूर्ण चराचर जगत् तृप्त होगये ।

भगवान् ने कहा, हे मुद्गल ! हम प्रसन्न हैं, वर मांग । तब मुद्गल ने प्रार्थना की, हे महाराज ! आपने मेरे यज्ञ में हवि ग्रहण किया, इसीसे मैं कृतार्थ हूं तो भी यह चाहता हूँ कि आपके चरणारविन्द में निष्कपट और निश्चल मेरी भक्ति होनी चाहिये और यह भी मेरी इच्छा है कि सायंकाल और प्रातःकाल गौ के दुग्ध से आपकी प्रीति के लिये हवन किया करूं । वेद में दोनों काल दुग्ध से हवन करना लिखा है और

मुझ सरीखे निर्धन तपस्वी के पास गौ कहां से आवे। मुद्गल का यह वचन सुनकर भक्तवत्सल श्रीविष्णुभगवान् ने विश्वकर्मा को बुलाकर एक उत्तम सरोवर बनवाया और स्फटिक आदि उत्तम पाषाणों का प्राकार उसके चारों ओर बनवाया और कामधेनु को बुलाकर भगवान् ने आज्ञा दी, हे सुरभि! यह हमारा भक्त मुद्गलमुनि हमारी प्रीति के लिये हवन किया चाहता है, इसलिये दोनों काल आकर इस सरोवर को दुग्ध से भर दे, उसी दुग्ध से यह हवन किया करेगा। कामधेनु ने भगवान् की यह आज्ञा अङ्गीकार की। तब भगवान् ने मुद्गल से कहा, हे मुद्गल! इस सरोवर से कामधेनु का दुग्ध नित्य लेकर हमारी प्रसन्नता के लिये सायंकाल और प्रातःकाल हवन किया कर, जिससे हमारी प्रसन्नता हो और हमारी प्रसन्नता से तुझे सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त होंगी और यह क्षीरसर नाम तीर्थ होगा। जिसमें स्नान करने से पातक, महापातक सब निवृत्त होजायँगे।

हे मुद्गल! तू भी शरीरान्त में हमारे समीप प्राप्त होगा। इतना कहकर मुद्गल को आलिङ्गनकर विष्णुभगवान् अन्तर्धान होगये। मुद्गल ने भी सैकड़ों वर्ष उस सरोवर से दुग्ध लेकर हवन किया और अन्त में मुक्ति पाई।

इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले, हे मुनिवर्य! क्षीरसरोवर की यह उत्पत्ति मैंने आपसे कही, यह तीर्थ सब लोकों में प्रसिद्ध है। कश्यप मुनि की पत्नी कद्रू ने छल से अपनी सपत्नी विनता को जीता, इससे इसको बड़ा पाप लगा, तब कश्यपजी की आज्ञा से कद्रू ने क्षीरसरोवर में स्नान किया, तब वह पाप निवृत्त हुआ। इस तीर्थ में जो पुरुष स्नान करता है, उसको यज्ञ, दान, तप, तीर्थसेवन, वेदपाठ आदि कर्मों से कुछ प्रयोजन नहीं रहता। क्षीरकुण्ड का पवन जिसके देह में लगता है, वह पुरुष ब्रह्मलोक में प्राप्त होता है और वहाँ बहुत काल निवास कर मुक्ति पाता है। क्षीरकुण्ड में स्नान करनेवाले पुरुष अग्नि के तुल्य देदीप्यमान होकर यमराज के

भी मस्तक पर विराजमान होते हैं और सब नरक उनके लिये व्यर्थ हो जाते हैं और वैतरणी नदी भी शीतल हो जाती है। क्षीरकुण्ड को छोड़कर अन्य तीर्थ में जाना गोदुग्ध को छोड़कर अर्कदुग्ध के लिये भटकने के तुल्य है। क्षीरकुण्ड में स्नान करनेवाले पुरुषों को कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं। मुक्ति भी हाथ पर ही धरी है, हम यह भुजा उठाकर सत्य कहते हैं। कभी इस बात में सन्देह मत करो। जो इस अध्याय को भक्ति से पढ़े अथवा श्रवण करे, वह क्षीरकुण्ड के स्नान के फल को अवश्य प्राप्त होता है।

सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त।

अड़तीसवाँ अध्याय।

गरुड़जी का विचित्र इतिहास और क्षीरकुण्ड का माहात्म्य।

शौनक आदि ऋषि पूछते हैं, हे सूतजी! कद्रू कौन थी, उसने अपनी किस सपत्नी को छल से जीता, क्या छल किया और फिर किस प्रकार क्षीरकुण्ड में स्नान करने से निष्पाप हुई? यह आप कृपाकर वर्णन करें। तब सूतजी

कहने लगे हे मुनिवर्य! प्रजापति की कन्या विनता और कद्रू दोनों कश्यप की भार्या थीं। विनता के पुत्र अरुण और गरुड़ तथा कद्रू के पुत्र वासुकि, अनन्त आदि हज़ारों सर्प हुए। एक दिन कद्रू और विनता ने इन्द्र के घोड़े उच्चैःश्रवा को देखा। तब कद्रू ने कहा हे विनते! इस घोड़े के बाल नीले हैं कि श्वेत। तब विनता बोली हे कद्रू! मुझे तो इसके बाल श्वेत देख पड़ते हैं। कद्रू ने कहा, जो इसके श्वेत बाल हों, तो मैं तेरी दासी बनूं और नील हों तो तू मेरी दासी होगी। दोनों ने यह प्रण किया। कद्रू ने सर्पों को बुलाकर सब बात कही और अपने पुत्र वासुकि आदिकों से यह कहा कि तुम उच्चैःश्रवा के श्वेत बालों को आच्छादन करो, जिससे मुझे विनता की दासी न बनना पड़े। सर्पों ने यह बात अङ्गीकार न की। तब कद्रू ने क्रोध कर, उनको शाप दिया कि जनमेजय के यज्ञ में तुम्हारा नाश होगा।

कर्कोटक नाग ने यह शाप सुनकर व्याकुल

हो कद्रू से कहा, हे मातः! मैं उच्चैःश्रवा को कृष्णवर्ण कर दूंगा। तू कुछ भय मत कर। यह कहकर कर्कोटक नाग उच्चैःश्रवा के लिपट गया, उसकी देह-कान्ति से उच्चैःश्रवा का रङ्ग नील अञ्जन के समान होगया। तब कद्रू विनता को संग लेकर उच्चैःश्रवा को देखने चली और चन्द्र ऐरावत आदि रत्नों के उत्पत्ति स्थान समुद्र को लङ्घन करके इन्द्र के वाहन उच्चैःश्रवा के समीप पहुँची, वहां देखा कि उच्चैःश्रवा का रङ्ग काला है। तब विनता बहुत व्याकुल हुई। कद्रू ने उसको अपनी दासी बना लिया। इतने में विनता का पुत्र गरुड़ भी अण्डे को फोड़कर पर्वत के समान और अग्नि-ज्वाला के तुल्य देदीप्यमान निकला।

गरुड़ का रूप देखकर तीनों लोक भयभीत होगये। देवता स्तुति करने लगे। तब गरुड़ ने अपने उस भयंकर रूप को त्याग दिया, तथा अपने बड़े भाई अरुण को पीठपर चढ़ाकर अपनी माता के समीप पहुँचा। कद्रू ने विनता से कहा,

हे दासी! मैं पाताल को जाना चाहती हूं, इस लिये तू मुझे उठा ले और तेरा पुत्र गरुड़ मेरे पुत्र नागों को उठाकर लेचले। यह बात विनता ने गरुड़ से कही। गरुड़ ने माता की आज्ञा अङ्गीकार की और सब सर्पों को पीठ पर चढ़ाकर उड़ा। कद्रू विनता के ऊपर चढ़कर चली। गरुड़ बहुत ऊंचा उड़ा, इसलिये सूर्य के तेज से सर्प दग्ध होने लगे। तब कद्रू ने इन्द्र की स्तुति की। इन्द्र ने वृष्टि द्वारा सर्पों का ताप शान्त किया। गरुड़ भी क्षणमात्र में नागलोक में जा पहुँचा। सर्पों ने वहां फिर गरुड़ से कहा, हे दासीपुत्र! हम द्वीपान्तर देखने जाना चाहते हैं, इसलिये तू शीघ्र ही हमको उठाकर लेचल। तब गरुड़ने अपनी माता विनता से पूछा, हे मातः! मैं सर्पों को उठाये फिरता हूं और तू कद्रू का वाहन हो रही है और सर्प मुझे बार बार दासीपुत्र कहते हैं, इसका क्या कारण है? यह सब तू मुझे यथार्थ बता दे।

तब विनता ने कहा, हे पुत्र! कद्रू ने मुझको छल से जीतकर अपनी दासी बनाया इससे तुझे

दासीपुत्र कहते हैं और इसी कारण मैं और तू इनके वाहन बन रहे हैं। विनता के मुख से यह सब वृत्तान्त सुनकर गरुड़ने पूछा, हे मातः! इस दासपने से हम किस प्रकार छूटें। तब विनता ने कहा, हे पुत्र! सर्पों से और कद्रू से पूछ। गरुड़ ने सर्पों से पूछा कि मेरी माता दासभाव से किस प्रकार छूट सकती है। सर्पों ने कहा, हे गरुड़! जो तू स्वर्ग से हमको अमृत ला दे, तो आज ही तेरी माता को छोड़ देवें। यह सुनकर गरुड़ अपनी माता के समीप आया और कहने लगा, हे मातः! मैं देवताओं से अमृत लेने को जाता हूं, मुझे कुछ खाने को दे। विनता ने कहा, हे पुत्र! समुद्र में एक म्लेच्छों का समूह रहता है, तू उनको भक्षणकर और अमृत ले आ। उन म्लेच्छों में एक ब्राह्मण भी एक म्लेच्छ स्त्री में अनुरक्त होकर रहता है, उसको मत भक्षण करना, उसके भक्षण करने से कण्ठ में दाह होगा। हे पुत्र! तू शीघ्र जाकर अमृत ले आ, इन्द्र आदि देवता तेरे अङ्गों की रक्षा करें।

गरुड़ माता से बिदा होकर समुद्र में पहुँचा और पर्वत की कन्दरा के समान अपना मुख फैलाकर म्लेच्छों को भक्षण करने लगा। वह ब्राह्मण भी उनके साथ गरुड़ के मुख में आगया। कण्ठदाह होने से गरुड़ ने जाना और उस ब्राह्मण से कहा, हे ब्राह्मण! है तो तू पातकी, परन्तु ब्राह्मण होने से अवध्य है। इसलिये मेरे मुख से निकल जा। ब्राह्मण ने कहा, मेरी स्त्री भी निकले तो मैं निकलूं। मैं उसके बिना क्षणभर भी नहीं रह सकता। गरुड़ ने ब्राह्मण तथा उसकी स्त्री को अपने मुख से निकाल दिया। ब्राह्मण अपनी स्त्रीसहित वहां से चला गया।

गरुड़ सब म्लेच्छों को भक्षणकर, अपने पिता कश्यपजी के समीप आया। कश्यपजी ने पूछा, हे पुत्र! कहां जाता है। गरुड़ ने कहा, हे महाराज! माता का दासीभाव निवृत्त करने के हेतु अमृत लेने जाता हूं। बहुत से म्लेच्छ भक्षण करके भी मुझे तृप्ति नहीं हुई। क्षुधा के मारे प्राण जाते हैं, इसलिये आप मुझे कुछ भोजन

बतावें, जिस भोजन के करने से मैं अमृत लाने को समर्थ हो जाऊं। गरुड़ का यह वचन सुनकर कश्यपजी बोले, हे पुत्र ! पूर्वकाल में विभावसु नाम का एक मुनि था। उसका छोटा भाई सुप्रतीक नाम था। उन दोनों ने आपस में विवादकर परस्पर एक दूसरे को शाप दिया। उस शाप से सुप्रतीक तो छः योजन ऊंचा हाथी हो गया और विभावसु दश योजन चौड़ा और तीन योजन ऊंचा कूर्म अर्थात् कछुवा होगया। वे दोनों इस सरोवर में पूर्व वैर को स्मरण करते हुये अब भी युद्ध करते हैं। उन दोनों को तू भक्षण कर ले।

गरुड़ पिता की आज्ञा पाकर वहां गया और उन दोनों को अपने पञ्जों में उठाकर ले उड़ा और विलम्ब नाम तीर्थ पर गया। वहां पर एक पुराना वटवृक्ष था, उसने गरुड़ से कहा। हे गरुड़ ! तू मेरी शाखा पर बैठकर इनको भक्षण कर ले। वटवृक्ष का यह वचन सुनकर, गरुड़ उसकी शाखा पर बैठ गया। गरुड़ के बैठते ही वह शाखा भार से टूट गई। उसमें

साठ हज़ार बालखिल्य ऋषि तप करने को लटक रहे थे। गरुड़ ने देखा कि शाखा भूमि पर गिरेगी तो इनको क्लेश होगा, इसलिये गरुड़ अपनी चोंच में उस शाखा को ले उड़ा।

तब कश्यपजी ने गरुड़ से कहा, हे पुत्र ! निर्जनवन में जाकर इस शाखा को रख दे। गरुड़ ने पिता की आज्ञा से निर्जनवन में जाकर वह शाखा रक्खी और हाथी तथा कच्छप को भक्षण किया। इस अवसर में स्वर्ग के बीच उत्पात होने लगे। तब इन्द्र ने बृहस्पति से पूछा, हे देवगुरो! उत्पात क्यों होते हैं ? तब बृहस्पति कहने लगे, हे देवराज ! पूर्वकाल में कश्यपमुनि ने यज्ञ करना चाहा। तब अंगुष्ठप्रमाण बालखिल्य ऋषियों को यज्ञ की सामग्री इकट्ठी करने के हेतु भेजा। मार्ग में गौ के खुरके गढ़े में जल भरा था, उसमें वे डूबने लगे। उनको देखकर तुमने हास्य किया। तब क्रोध करके उन्होंने यज्ञाग्नि में इस कामना से हवन किया कि कश्यप के ऐसा पुत्र हो, जो इन्द्र को भय देवे।

वह कश्यप का पुत्र गरुड़ हुआ है और अब अमृत हरने के लिये यहां आता है। इससे ये दारुण उत्पात होते हैं।

बृहस्पति का यह वचन सुनकर इन्द्र ने सब देवताओं को बुलाकर कहा, गरुड़ अमृत हरने आता है तुमसे रक्षा की जाय तो करो। इन्द्र का यह वचन सुनकर अस्त्र शस्त्र धारणकर सब देवता अमृत की रक्षा करने लगे। इतने में गरुड़ भी वहां आकर पहुँच गया। उसको देखकर सब देवता भय से कांप उठे। देवताओं के साथ गरुड़ का युद्ध होने लगा। गरुड़ ने अपनी चोंच से देवताओं को भेदन किया। देवताओं ने भी गरुड़ को शस्त्रों से बहुत पीड़ा दी। तब गरुड़ ने अपने पंखों के पवन द्वारा देवताओं को उड़ाकर दूर फेंक दिया। देवता बड़ा क्रोधकर गरुड़ के ऊपर बाण, भिन्दिपाल, तोमर आदि शस्त्रों की वर्षा करने लगे। गरुड़ ने अपने पंखों से इतनी धूलि उड़ाई कि देवताओं के नेत्र फूटने लगे। तब देवताओं ने वायु द्वारा उस धूलि को शान्त किया

और गरुड़ ने भी वसु, रुद्र, आदित्य, मरुत् आदि देवताओं को अपने तीखे नख और चोंच से घायल किया। तब देवता भाग गये। गरुड़ अमृत के समीप चला तो देखा कि अमृत के चारों ओर प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित हो रही है। तब गरुड़ ने हजार चोंच कर लीं और बड़ी २ नदियों को चोंचों में भर २ उस अग्नि को बुझाया। आगे जाकर देखा तो बड़ा तेजस्वी और तीखी धारवाला चक्र अमृत के चारों ओर भ्रमता है। तब गरुड़ ने छोटी देह धारण किया और चक्र के बीच से निकलकर पार हो गया। आगे जाकर देखा तो दो सर्प अमृत की रक्षा करते हैं, जिनकी केवल दृष्टि से ही सब भस्म हो जायँ। तब गरुड़ ने अपने पंख और चोंच से उन सर्पों को मूर्च्छित कर दिया और अमृत के घट को लेकर उड़ा।

विष्णुभगवान् ने तब कहा, हे गरुड़! तेरा पराक्रम देखकर हम बहुत प्रसन्न हुये, वर मांग। गरुड़ ने कहा, तुम्हारे ऊपर मेरी स्थिति हो और

अजर अमर हो जाऊं और तुमको जो वर चाहिये वह मुझ से भी मांगो। विष्णुभगवान् ने तब कहा कि तुम हमारे वाहन हो जाओ। गरुड़ ने भी यह बात अङ्गीकार कर ली। विष्णुभगवान् ने गरुड़ को वर दिया और अपने रथ की ध्वजा पर स्थापन किया और वाहन भी बनाया। इन्द्र ने देखा कि गरुड़ अमृत को लिये जाता है, तो बड़ा क्रोध करके वज्र मारा। परन्तु गरुड़ ने हँसकर कहा, हे इन्द्र! तेरे वज्रप्रहार से मुझे कुछ भी व्यथा न हुई, परन्तु तेरे आदर के लिये एक पंख मैं अपना गिराये देता हूं। गरुड़ ने यह कहकर एक छोटा सा पर डाल दिया। उस सुन्दर पर को देखकर देवताओं ने गरुड़ का नाम सुपर्ण रक्खा।

गरुड़ ने कहा, हे इन्द्र! तीनों लोक को मैं उठा सकता हूं और हज़ार इन्द्र भी आवें तो मेरा क्या कर सकते हैं? गरुड़ का यह वचन सुनकर इन्द्र ने कहा, हे गरुड़! तू अमृत को क्या करेगा, हमको दे दे। जिन सर्पों को तू अमृत देना चाहता है, वे अमृत पान करते ही अजर अमर

हो जायँगे, तो देवताओं को और सब जगत् को पीड़ा देंगे। यह सुनकर गरुड़ने कहा, हे इन्द्र! मैं जहां पर इस अमृत को स्थापन करूं वहां से तुम हर लाना। गरुड़ का यह वचन सुनकर प्रसन्न होकर इन्द्र ने कहा, हे गरुड़! तुमसे हम प्रसन्न हैं, वर मांग। तब गरुड़ ने कहा, हे इन्द्र! जिन सर्पों ने मेरी माता को छल से दासी बनाया, वे मेरे भक्ष्य हों। इन्द्र ने गरुड़ को यही वर दिया। गरुड़ अमृत लेकर चला। इन्द्र उसके पीछे २ गये।

गरुड़ने माता के समीप पहुँचकर सर्पों से कहा कि यह अमृत मैं ले आया हूं, कुशों के ऊपर इस अमृतघट को रखता हूं। तुम स्नानकर, पवित्र होकर, इस अमृत को पान करना। अब मेरी माता को छोड़ दो। सर्प अमृतघट देखकर प्रसन्न हो गये और गरुड़ की माता विनता को छोड़ दिया। सर्प सब स्नान करने के हेतु गये। इस अवसर में इन्द्र आकर अमृत को उठा ले गये। इतने में सर्प भी स्नान करके आये, तो

देखा कि अमृत नहीं है। तब वे उन कुशों को चाटने लगे जिन पर अमृतघट रक्खा था। कुशों के चाटने से सर्पों की जिह्वा चीरी गई, उसी दिन से सर्प द्विजिह्व कहाये और अमृत के स्पर्श होने से कुश भी पवित्र माने गये।

इस प्रकार अपनी माता को दासीभाव से छुटाकर गरुड़ ने कद्रू को शाप दिया कि तैंने मेरी माता को छल से दासी बनाया, इसलिये तू पति की सेवा के योग्य न होगी। गरुड़ यह शाप देकर चला गया। कद्रू और विनता दोनों कश्यपजी के समीप गईं। कद्रू को देखकर कश्यपजी क्रोध से बोले, हे कद्रू! तैंने छल से विनता को जीता, इसलिये तू हमारी सेवा के योग्य नहीं है। जो स्त्री, पुरुष छल से जीते, वह महापातकी होता है। उसके साथ भाषण करने से भी पातक लगता है। इसलिये तेरे साथ सम्भाषण करने से हम भी पातकी हो जायँगे। छली मनुष्य जिस पंक्ति में भोजन करे वह पंक्ति नरक को जाती है। छली पुरुष का मुख देखकर

सूर्य, जल अथवा अग्नि को देखे तब शुद्ध होता है। छली पुरुष के समीप रहने से अवश्य नरक में वास होता है। इसलिये हे दुष्टे! हमारे आश्रम से तू शीघ्र ही चली जा।

कश्यपजी ने इतना कहकर विनता को अङ्गीकार कर लिया। कद्रू पति का यह रूक्ष वचन सुनकर रोती हुई उनके चरणों पर जा गिरी, परन्तु कश्यपजी ने उसका अपराध क्षमा नहीं किया। तब विनता ने प्रार्थना की, हे महाराज! आप मेरी इस बहिन का अपराध क्षमा करें। इसने भूल से यह अपराध किया, इसलिये आपको कृपा करके क्षमा ही करना चाहिये, क्योंकि साधु पुरुष दयालु होते हैं। विनता का यह वचन सुनकर कश्यपजी बोले, हे विनते! हम तेरी शपथ खाकर कहते हैं कि जब तक यह दुष्टा इस पातक का प्रायश्चित्त न करेगी, हम कदापि ग्रहण न करेंगे। तब विनता ने फिर प्रार्थना की, हे महाराज! आप ही प्रायश्चित्त बतावें, जिससे यह आपकी सेवा के योग्य हो।

तब कश्यपजीने क्षणमात्र ध्यान धरकर कहा कि दक्षिणसमुद्र के तटपर फुल्लग्राम के समीप क्षीरसरोवर नाम का एक तीर्थ है। वहां जाकर यह स्नान करे, तब शुद्ध होगी और चाहे हज़ार प्रायश्चित्त करे तो शुद्ध नहीं हो सकती। पति का यह वचन सुनकर अपने पुत्रों को संग लेकर कद्रू क्षीरसरोवर को चली। कुछ दिनों में वहां पहुँचकर उपवास कर संकल्पपूर्वक तीन दिन तक स्नान किया। चौथे दिन स्नान करने लगी, तब आकाशवाणी हुई। हे कद्रू! इस तीर्थ के प्रभाव से तू छलदोष से निवृत्त होगई और गरुड़ का शाप भी जाता रहा। अब तू जाकर पति की शुश्रूषा कर, पति भी तुझे ग्रहण करेगा।

यह आकाशवाणी सुनकर प्रसन्न चित्त होकर तीर्थ की प्रदक्षिणा कर, अपने पुत्रों-समेत कश्यपजी के समीप आई। कश्यपजी ने भी उसको शुद्ध जानकर अङ्गीकार किया। इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले, हे मुनिवर्य! क्षीरकुण्ड का यह प्रभाव हमने वर्णन किया। जो

इस अध्याय को पढ़े अथवा श्रवण करे वह क्षीरकुण्ड के स्नानफल को प्राप्त होता है और अश्वमेध आदि यज्ञ करने का, सहस्र गोदान का और गङ्गा आदि तीर्थों में स्नान करने का फल पाकर उत्तम गति पाता है।

अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त।

उन्तालीसवाँ अध्याय।

कपितीर्थ का माहात्म्य तथा रम्भा अप्सरा की कथा।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! अब हम कपितीर्थ का माहात्म्य वर्णन करते हैं। वह तीर्थ लोकों के कल्याण के हेतु वानरों ने बनाया है। रावण को मारकर जब हनुमान् आदि वानर गन्धमादनपर्वत में आये, तब उन्होंने यह तीर्थ बनाया। उसमें सबने स्नान किया और तीर्थ को यह वर दिया कि इस तीर्थ में जो पुरुष स्नान करें, वे सब पातकों से छूटकर मुक्ति पावें और उनको नरक, दारिद्र्य आदि का भय न हो। जो यह विचार करे कि मैं कपितीर्थ को जाऊंगा और इस निमित्त सौ पैर भी चले वह अवश्य

सद्गति को प्राप्त हो। यह वर देकर सब वानरों ने रामचन्द्रजी से प्रार्थना की कि आप भी हमारे इस तीर्थ को उत्तम वर देवें।

तब रामचन्द्रजी ने अपने भक्त वानरों की प्रार्थना सफल करने के लिये यह वर दिया कि इस तीर्थ में स्नान करने से गङ्गा, प्रयाग आदि तीर्थों के स्नान का फल, गोसहस्र दान, अग्निष्टोम आदि यज्ञ, गायत्री आदि मन्त्रों के जप, चारों वेद के पारायण और शिव, विष्णु आदि देवताओं के पूजन का फल अवश्य प्राप्त होगा। रामचन्द्रजी के यह वर देने के अनन्तर शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, वायु, चन्द्रमा, आदित्य, निर्ऋति, साध्य, वसु, विश्वेदेव आदि सब देवता, सनकआदि योगी, नारदआदि देवर्षि, अत्रि, भृगु, कुत्स, गौतम, पाराशर, कण्व, अगस्त्य, सुतीक्ष्ण, विश्वामित्र आदि सब मुनिवर उस तीर्थ की प्रशंसा करने लगे। सबोंने भक्ति से उस कपितीर्थ में स्नान किया और सबोंने यह कहा कि यह कपितीर्थ सब लोकोंमें प्रसिद्ध होगा।

इतना कहकर सूतजी बोले, हे मुनिवर्य! मोक्षकी इच्छावाले पुरुषों को अवश्य ही कपितीर्थ में स्नान करना चाहिये। इस तीर्थ का माहात्म्य हम कहां तक वर्णन करें। विश्वामित्रमुनि के शाप से शिला हुई रम्भा इस तीर्थ के प्रभाव से फिर अपने रूप को प्राप्त हुई। यह सुनकर मुनिवरों ने पूछा, हे सूतजी! रम्भा को विश्वामित्रमुनि ने किस प्रकार शाप दिया और शिला होकर वह कपितीर्थ में किस प्रकार पहुँची, यह आप वर्णन करें। तब सूतजी कहने लगे, हे मुनिवर्य! पूर्वकाल में कुशिकवंश के बीच विश्वामित्र नामक एक राजा हुआ है। एक समय वह बहुतसी सेना को साथ लेकर अपने राज्य को देखने निकला। बहुत देश देशान्तर देखता हुआ वह वशिष्ठजी के आश्रम में पहुँचा। वशिष्ठजी ने कामधेनु के प्रभाव से राजा का और उसकी सेना का भलीभाँति सत्कार किया। भाँति २ के भोजन सबको कराये।

राजा विश्वामित्र ने कामधेनु का प्रभाव

देखकर वशिष्ठजी से कामधेनु की याचना की। परन्तु वशिष्ठजी ने कामधेनु न दी। तब राजा ने बलात्कार से कामधेनु को हरना चाहा। परन्तु कामधेनु के शरीर से इतने म्लेच्छगण उत्पन्न हुये कि उन्होंने विश्वामित्र की सेना का संहार कर दिया। तब राजा विश्वामित्र वशिष्ठजी से पराजित होकर हिमालय में जाकर तप करनेलगा और शिवजी को प्रसन्नकर, उनसे सब अस्त्र पाये। फिर राजा विश्वामित्र वशिष्ठजी के आश्रम में आकर वशिष्ठजी पर अस्त्र छोड़नेलगा। वशिष्ठजी ने अपने ब्रह्मदण्ड द्वारा सब अस्त्रों को निष्फल कर दिया।

तब विश्वामित्र बहुत लज्जित हुआ और ब्राह्मण बनने के लिये तप करने में प्रवृत्त हुआ। पूर्व आदि तीन दिशाओं में जहां तप करनेलगा, वहांहीं विघ्न हुआ। तब उत्तरदिशा में हिमालयपर्वत के बीच कौशिकी नदी के तटपर तप करनेलगा। निराहार, जितेन्द्रिय और जितश्वास होकर, दिव्य हज़ार वर्ष पर्यन्त तप किया।

ग्रीष्मऋतु में पञ्चाग्नि तापता, शिशिरऋतु में जलशय्या में सोता और वर्षाऋतु में निरावरणस्थान में रहता था। इस प्रकार विश्वामित्र ने ऊपर को भुजा उठाकर एक हज़ार दिव्य वर्ष तक अत्युग्र तप किया। तब देवता बहुत व्याकुल हुये और सबने रम्भा को बुलाकर कहा, हे रम्भे! हिमालयपर्वत में जाकर विश्वामित्र को अपने कटाक्षों से मोहित कर। जिस प्रकार उसके तप में विघ्न हो, ऐसा उपाय कर। देवताओं का यह वचन सुनकर, हाथ जोड़कर, भय से कांपती हुई, रम्भा कहने लगी, हे महाराज! विश्वामित्रमुनि महाक्रूर है। वह मुझे अवश्यही शाप देगा। इसलिये आप सब मुझे ऐसे क्रूरकर्म में आज्ञा न देवें, मैं आपकी दासी हूं, आप मेरी रक्षा करें।

रम्भा का यह वचन सुनकर इन्द्र ने कहा, हे रम्भे! भय मतकर। तेरी सहायता के लिये वसन्त और कामदेव को साथ लेकर मैं भी आता हूं। तू चलकर अपने रूप से विश्वामित्र को

वशकर। इन्द्रकी आज्ञा पाकर रम्भा विश्वामित्र के आश्रमको गई। वहां जाकर विश्वामित्र के सम्मुख खड़ी होकर हाव भाव करनेलगी और वसन्तऋतु चारोंओर छागया। कोकिल मीठे २ शब्द बोलनेलगे। यह सब देखकर विश्वामित्र के मन में संशय हुआ। फिर योगबल से जाना कि यह सब कर्म इन्द्रका है और रम्भाको देखकर विश्वामित्र मुनि ने कहा, हे रम्भे! तू हमारे तप में विघ्न करने आई है, इसलिये शिला हो जा और बहुत कालतक शिलाभाव को प्राप्त होकर एक ब्राह्मण द्वारा तू इस शाप से मुक्त होगी। इतना कहतेही रम्भा शिला होगई। विश्वामित्र मुनि बहुत काल तपकर वशिष्ठजी के वाक्य से ब्राह्मण हुये। रम्भा को शिला हुये बहुत काल व्यतीत हुआ।

उसी आश्रम में अगस्त्यमुनिका शिष्य श्वेतमुनि मोक्ष की इच्छा से तप करनेलगा। उसके तप में अङ्गारका नाम की एक राक्षसी नित्य विघ्न करती। मूत्र, विष्ठा आदि लाकर आश्रम

में डालदेती और अनेक प्रकार के उपद्रव से नित्य ही मुनि को त्रास देती थी। एक दिन श्वेतमुनि ने क्रोधकर वह शिला, जो रम्भा होगई थी उठाई और वायव्यास्त्र मन्त्र पढ़कर उस राक्षसी पर चलाई। आगे २ राक्षसी और पीछे २ शिला, सब दिशाओं में घूमी। अन्त में राक्षसी व्याकुल होकर दक्षिण समुद्र के तटपर कपितीर्थ में घुस गई। वह शिला भी उसके ऊपर तीर्थ में गिरी। गिरतेही वह राक्षसी चूर्ण होगई और शिला भी तीर्थ का जल स्पर्श होतेही रम्भा हो गई। देवताओं ने उसके ऊपर पुष्पवृष्टि की। इतने में आकाश से एक विमान आया। रम्भा वस्त्र, भूषण आदि से अलंकृत होकर उर्वशी आदि अपनी सखियों-समेत विमान में बैठकर कपितीर्थ की प्रशंसा करती हुई स्वर्ग को चली गई। वह राक्षसी पूर्वजन्म में घृताची नाम की एक अप्सरा थी और अगस्त्य मुनि के शाप से राक्षसी होगई थी। वह भी कपितीर्थ में प्राण त्यागनेसे अपने रूप को प्राप्त होकर रम्भा के साथही वि-

मान में बैठकर, स्वर्ग को गईं । इस भांति शिला और राक्षसी, अगस्त्यजी के शिष्य, श्वेतमुनिके प्रसाद द्वारा और कपितीर्थ के प्रभाव से अपने पूर्वरूप को प्राप्त हुइ । इस कारण, हे मुनिवर्य ! सब प्रकार से कपितीर्थ में स्नान करना चाहिये। जो पुरुष भक्ति से इस अध्याय को पढ़ें, अथवा श्रवण करें वे कपितीर्थ के स्नानफल को प्राप्त होकर सद्गति पाते हैं ।

उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ।

चालीसवाँ अध्याय ।

गायत्रीतीर्थ और सरस्वतीतीर्थ का माहात्म्य तथा ब्रह्माजी की कथा ।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! महापुण्य को देनेवाला और नरकक्लेश का नाश करनेवाला गायत्री और सरस्वती का माहात्म्य हम वर्णन करते हैं। जिसके पढ़ने और सुनने से महापातक की निवृत्ति हो । गायत्री और सरस्वती में जो मनुष्य स्नानकरें, वे कभी गर्भवास का दुःख नहीं भोगते और मुक्त होते हैं । गन्धमादन पर्वत में

ब्रह्मपत्नी गायत्री और सरस्वती के सन्निधान से दो तीर्थ हैं । इतना सुनकर मुनिवरों ने पूछा, हे सूतजी ! गन्धमादनपर्वत में किस कारण से गायत्री और सरस्वती का सन्निधान हुआहै, यह आप वर्णन करें । तब सूतजी कहनेलगे, हे मुनिवर्य ! पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने काम के वश होकर अपनी पुत्री सरस्वती को चाहा था । वह अपने पिता का दुस्संकल्प जानकर लज्जा से हरिणी होगई । ब्रह्माजी हरिण का रूप धरकर उसके पीछे लगे । तब सब देवता ब्रह्माजी की बहुत निन्दा करनेलगे ।

शिवजी भी ब्रह्माजी का यह दुराचार देखकर क्रोधसे धनुष् बाण लेकर व्याध का रूप धरकर उनके पीछे लगे और एक बाण ऐसा मारा कि हरिणरूप ब्रह्माजी भूमिपर गिरगये । उनके देह से एक तेजपुञ्ज निकलकर आकाश को गया, वही मृगशिरानक्षत्र होगया । आर्द्रा नक्षत्र के रूप से शिवजी स्थित हुये, जो अब तक भी मृगशिरानक्षत्र के पीछे मृग व्याध-रूप

से आकाश में देख पड़ते हैं। इस प्रकार ब्रह्माजी के मृतक होने के अनन्तर अतिशोकातुर होकर गायत्री और सरस्वती विचार करके ब्रह्माजी के पुनर्जीवन के लिये शिव-क्षेत्र गन्धमादनपर्वत में जाकर तप करनेलगीं। उन्होंने स्नान के लिये अपने २ नाम से एक २ तीर्थ बनाया। तीन काल उन तीर्थों में स्नानकर, काम क्रोधआदि त्याग जितेन्द्रिय होकर, शिवजी का ध्यान करतीहुईं, दोनों पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करतीं। इस भांति अपने पति ब्रह्माजी के जीवन के हेतु बहुत कालतक उग्र तप किया। तब श्रीमहादेव-जी प्रसन्न हुए और गणेश, कार्त्तिकेय, नन्दी, भृङ्गी आदि सहित गायत्री और सरस्वती के सम्मुख प्रकट हुए। उनको देखकर भक्ति से दोनों स्तुति करनेलगीं।

गायत्रीसरस्वत्यावूचतुः। नमो दुर्वारसंसारध्वान्तध्वंसैकहेतवे। ज्वलज्ज्वालावलीभीमकालकूटविषादिने ॥ १ ॥ जगन्मोहनपञ्चास्त्रदेहनाशैकहेतवे। जगदन्तकरक्रूरयमान्तक नमोस्तुते ॥ २ ॥ गङ्गातरङ्गसंपृक्तजटामण्डलधारिणे।

नमस्तेस्तु विरूपाक्ष बालाशीतांशुधारिणे ॥ ३ ॥ पिनाक-भीमटङ्कारत्रासितत्रिपुरौकसे। नमस्ते विविधाकारजगत्स्रष्टृ-शिरश्छिदे ॥ ४ ॥ शान्तामलकृपादृष्टिसंरक्षितमृकण्डुज। नमस्ते गिरिजानाथ रक्षावां शरणागते ॥ ५ ॥ महादेव जगन्नाथ त्रिपुरान्तक शङ्कर। वामदेव महादेव रक्षावां शरणागते ॥ ६ ॥

श्रीमहादेवजी ने यह स्तुति सुनकर प्रसन्न होकर कहा, हे गायत्रि! हे सरस्वति! हम तुमसे प्रसन्न हैं, जो वर चाहती हो मांगो। तब उन दोनों ने यह प्रार्थना की कि हे नाथ! आप हमारे पिता और हम दोनों आपकी पुत्री हैं। अब आप ऐसी अनुग्रह करें कि जिससे हमारे पति ब्रह्माजी जी उठें और फिर हमारा उनका समागम होजाय। उनकी यह प्रार्थना सुनकर शिवजी ने अपने गणों के हाथ ब्रह्माजी का शरीर वहाँ मँगवाया और शिर भी मँगवाया। फिर गायत्री और सरस्वती के सम्मुखही शिवजी ने ब्रह्माजी का शिर धड़ से जोड़कर, उनको जिलादिया। ब्रह्माजी उठ खड़े हुए जैसे सोकर

उठें और भक्ति से शिवजी की स्तुति करनेलगे।

ब्रह्मोवाच॥ नमस्ते देवदेवेश करुणाकर शङ्कर। पाहिमां कृपया शम्भो निषिद्धाचरणात्प्रभो। मा प्रवृत्तिर्भवेद् भूयो रक्ष मां त्वं तथा सदा।

ब्रह्माजी की यह प्रार्थना सुनकर शिवजी ने कहा, हे ब्रह्माजी! अब ऐसा प्रमाद कभी मत करना। जो पुरुष उत्पथ में चलें उनको हम दण्ड देते हैं, इसीलिए आपको भी दण्ड दिया। इतनी बात ब्रह्माजी से कहकर गायत्री और सरस्वती से कहा कि तुम्हारे तप के प्रभाव से ब्रह्माजी का पुनर्जीवन हुआ। अब तुम सब ब्रह्म-लोक को जाओ और तुम्हारे सन्निधान से इन दोनों कुण्डों में स्नान करनेवाले पुरुषों की मुक्ति होगी। तुम दोनों के नाम से ये दोनों तीर्थ प्रसिद्ध होंगे। ये दोनों तीर्थ सब तीर्थों को शुद्ध करनेवाले होंगे।

इन तीर्थोंमें स्नान करने से महापातकों का नाश, सब मनोरथों की सिद्धि, हमारा और विष्णुजी का प्रसाद भी होगा। इन दोनों तीर्थों

के तुल्य न कोई तीर्थ हुआ न होगा। गायत्री जप से रहित, वेदाभ्यास, पञ्चयज्ञ नित्यानुष्ठान आदि से वर्जित पुरुष भी इन कुण्डों में स्नान करने से उन कर्मों के फल को प्राप्त होंगे। पातकी पुरुष भी इनमें स्नानकर शुद्ध होजायँगे। इतना कहकर शिवजी तो अन्तर्धान हुये और गायत्री, सरस्वती सहित ब्रह्माजी ब्रह्मलोक को गये। इतना कहकर सूतजी बोले, हे मुनिवर्य! इस प्रकार गन्धमादनपर्वत में गायत्री और सरस्वती का सन्निधान हुआ है। जो पुरुष इस अध्याय को भक्ति से पढ़ता है, अथवा श्रवण करता है, वह दोनों तीर्थों के स्नानफल को प्राप्त होकर अवश्य सद्गति पाता है।

चालीसवाँ अध्याय समाप्त।

इकतालीसवाँ अध्याय।

राजा परीक्षित् और कश्यपनाम ब्राह्मण की कथा और गायत्रीतीर्थ व सरस्वतीतीर्थ का माहात्म्य।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! गायत्रीतीर्थ और सरस्वतीतीर्थ का प्रभाव हम और भी वर्णन

करते हैं। कश्यप नाम का एक ब्राह्मण नरकप्रद बड़े पाप से इन तीर्थों में स्नानकर निवृत्त हुआ। मुनियों ने पूछा, हे सूतजी! कश्यप कौन था? उसने क्या पाप किया और किस प्रकार मुक्त हुआ, यह आप कृपा करके वर्णन करिए। आपका वचनरूप अमृत पान करते करते हमको तृप्ति नहीं होती। यह वचन सुनकर सूतजी कहने लगे, हे मुनिवर्य! गायत्री और सरस्वती के माहात्म्य का एक इतिहास हम वर्णन करते हैं, जिसके सुनने से सब पातक नाश हो जाते हैं। अभिमन्यु का पुत्र राजा परीक्षित् धर्म से हस्तिनापुर में राज्य करता था, वह साठ वर्ष की अवस्था में एक दिन आखेट के लिये वन में गया। वहाँ एक मृग के पीछे लगा हुआ अपनी सेना से अलग होकर दूर चला गया और क्षुधा तृषा से भी बहुत व्याकुल था।

आगे एक मुनि समाधि लगाये हुए बैठे थे, उनसे राजा ने पूछा, हे मुनिवर्य! मेरे बाण से बेधित मृग आपने देखा या नहीं, राजा का यह

वचन सुनकर मुनि ने कुछ उत्तर न दिया, तब धनुष्के अग्रभाग से एक मराहुआ सर्प उठाकर राजा ने मुनि के गले में डाल दिया और आप अपनी राजधानी को चला आया। उस मुनि के पुत्रका शृङ्गी नाम था, उसके मित्र कृशाख्य ने शृङ्गीसे कहा, तेरा पिता गलेमें मराहुआ सर्प डाले बैठा है, अब तू झूठा अहंकार मत कर। यह वचन सुनकर शृङ्गीने बड़ा क्रोध किया और राजा परीक्षित् को शाप दिया, जिस दुष्ट ने मेरे पिता के गले में सर्प डाला है, उसको सात दिन के भीतर तक्षक नाग डसेगा और वह मर जायगा, इस प्रकार मुनिपुत्र ने शाप दिया। यह बात उसके पिता शमीकऋषि ने समाधि खुलने के अनन्तर सुनी तब अपने पुत्र से कहा, तैंने सम्पूर्ण प्रजा रक्षक राजा परीक्षित् को क्यों ऐसा शाप दिया, विना राजा के राज्य में हम क्योंकर रह सकेंगे। क्रोध से बड़ा पाप होता है, दया से सुख मिलता है। जो पुरुष क्रोध को क्षमा से निवृत्त करता है, वह दोनों लोकों में सुख

पाता है। क्षमावान् पुरुष सदा सुख पाते हैं।

इतना कहकर शमीकऋषिने अपने शिष्य गौरमुख से कहा, तू जाकर राजा परीक्षित् से कहना कि मेरे पुत्र ने आपको शाप दिया है। गुरु की यह आज्ञा पाकर गौरमुख ने जाकर राजा परीक्षित् से कहा, हे राजन्! आप शमीकमुनि के गले में मरा हुआ सर्प डाल आये हैं, इसलिये उनके पुत्र ने शाप दिया है कि सात दिन के भीतर तक्षक नाग के डसने से आपकी मृत्यु होगी। यह बात कहने के लिये मेरे गुरु ने मुझ को भेजा है। इतना कहकर गौरमुख भी अपने आश्रम को चला गया और राजा भी अत्यन्त व्याकुल होकर गङ्गा के मध्य अत्यन्त ऊंचे स्तम्भ के ऊपर एक मण्डप अर्थात् मंच बनवाया और उसमें बैठकर अनेक गारुड़ी, मान्त्रिक, चिकित्सक आदि अपने समीप रक्खे और बहुत से ब्रह्मवेत्ता ऋषि राजा के समीप बैठे। उस अवसर में कश्यप नाम एक ब्राह्मण यह बात सुन कर राजा परीक्षित् के समीप चला। वह सब मान्त्रि-

कों में उत्तम था और इस अभिप्राय से आया कि तक्षक के विष से राजा की रक्षा कर बहुत सा धन पाऊंगा।

उसी अवसर में तक्षक भी ब्राह्मण का रूप धरकर हस्तिनापुर को चला आता था। उसने मार्ग में कश्यप को देखकर पूछा, हे ब्राह्मण! तू कहां जाता है। तब कश्यप ने कहा कि राजा परीक्षित् को आज तक्षक नाग डसेगा, उसका विष निवृत्त करने के लिये मैं जाता हूं। तब तक्षक ने कहा, हे ब्राह्मण! तक्षक मैं ही हूं, मेरे काटे हुए पुरुष पर किसी का मन्त्र तन्त्र नहीं चल सकता है, जो तुझ में सामर्थ्य हो, तो मैं इस वटवृक्ष को डसकर भस्म करता हूँ और तू इसको जीवित कर, इतना कह कर तक्षक ने उस वृक्ष को डसा। डसते ही वह वृक्ष भस्म हो गया और एक मनुष्य जो उस वृक्ष पर पहिले से चढ़ा हुआ था, वह भी भस्म हो गया, उस को तक्षक और कश्यप दोनों नहीं जानते थे। कश्यप ने कहा, अब मेरे मन्त्र की शक्ति को

देखो। इतना कहकर कश्यप ने वटवृक्ष को मन्त्र के प्रभाव से फिर जिला दिया और जो मनुष्य वृक्ष के साथ जल गया था वह भी जी उठा। तब तक्षक ने कहा, हे कश्यपमुनि! कुमार का वचन मिथ्या न हो, वैसा करना चाहिये। राजा से तू जितना धन चाहता है, उससे भी द्विगुणधन मुझ से ले ले और अपने घर को लौट जा।

इतना कहकर तक्षक ने बहुत से उत्तम रत्न कश्यप को दिये और कश्यप ने भी ज्ञान दृष्टि से जाना, राजा परीक्षित् की आयु समाप्त होचुकी है, इस धन को क्यों छोड़ते हो। यह विचार कर तक्षक का दिया बहुत सा धन ले कर, अपने आश्रम को चला आया। तक्षक ने अपने सर्पों से कहा, तुम मुनिवेष धारण कर राजा परीक्षित् के पास जावो और उत्तम उत्तम फल राजा को दो। तक्षक की यह आज्ञा पाकर वे सर्प मुनिवेष धारण कर राजा के समीप पहुँचे और अनेक उत्तम फल राजा को दिये। उनमें

एक फल के बीच तक्षक भी छोटा सा कीट का रूप धारण कर बैठ गया। राजा ने वे फल मन्त्रियों को बांट दिये और सब से बड़ा फल अपने हाथ में रक्खा। इतने में सूर्य अस्त होने लगे, राजा ने उस फल में एक रक्तवर्ण का कीट देखकर कहा कि आज सात दिन व्यतीत हो गये, ऋषि का वचन मिथ्या न होना चाहिये, इसलिये यह छोटा सा कीट मुझे काट ले।

यह कहकर राजा ने वह कीट अपनी ग्रीवा पर रखलिया, रखते ही वह कीट तक्षक होगया और राजा का सम्पूर्ण शरीर लपेटकर ऐसा डस लिया कि उस महल समेत राजा भस्म होगया और समीप के जो लोग तक्षक को देखते ही भाग गयेथे वे बचगये। राजाकी मृत्यु के अनन्तर सब और्ध्वदैहिक कृत्य कराके मन्त्रियों ने परीक्षित् के पुत्र जनमेजय को गद्दी पर बैठाया। कश्यप भी अपने आश्रम में गया, परन्तु सब ब्राह्मणों ने उसका तिरस्कार किया और कहा, ऐसे धर्मात्मा राजा की रक्षा तैंने न की और

धन के लोभ से लौट आया। कश्यप भी अत्यन्त व्याकुल हुआ और जिस नगर, ग्राम तथा आश्रम में जाता था, वहां ही उसकी सब निन्दा करते थे। तब वह अतिदुःखी होकर शाकल्यमुनि की शरण में गया और प्रार्थना की, हे महाराज! सब ब्राह्मण, मुनि, बन्धु, मित्र आदि मेरी निन्दा करते हैं, इसका कारण मैं नहीं जानता। ब्रह्म-हत्या, सुरापान, गुरुस्त्रीगमन, सुवर्ण की चोरी आदि कोई भी महापातक मैंने नहीं किये और न कभी महापातकी पुरुषों का मैंने संसर्ग ही किया और न कोई ऐसे उपपातक ही मैंने किये फिर वे किसलिये मेरी निन्दा करते हैं जो आप इसका कारण जानते हों, तो मुझ से कृपाकर कहिए। कश्यप का यह वचन सुनकर क्षणमात्र ध्यानकर शाकल्यमुनि बोले, हे कश्यप! राजा परीक्षित् की रक्षा के लिये तू चला, और तक्षक से धन लेकर मार्ग से ही लौट आया। जो मनुष्य चिकित्सा करने की सामर्थ्य रखता हुआ भी विष रोग आदि से पीड़ित मनुष्य की रक्षा न करे, वह ब्रह्मघातक

होता है। क्रोध से, काम से, भय से, लोभ से, मात्सर्य से, मोह से जो समर्थ होकर भी विष, शस्त्र, रोग आदि से पीड़ित मनुष्य की रक्षा न करे, वह ब्रह्मघातक, सुवर्णस्तेयी, गुरुदारागामी, सुरापान करने वाला और संसर्ग दोष दुष्ट भी गिनाजाता है। कन्या बेचनेवाले, रस बेचनेवाले, घोड़े, हाथी बेचनेवाले, कृतघ्न, विश्वसाघातक आदि सबका प्रायश्चित्त है; परन्तु जो समर्थ होकर भी आर्त की रक्षा न करे, उसका कुछ प्रायश्चित्त नहीं है। उस मनुष्य के साथ भोजन तथा सम्भाषण भी न करे और उसका मुख भी न देखे उसके साथ सम्भाषण करने से महापातक लग जाता है।

राजा परीक्षित् परमविष्णुभक्त, धर्मात्मा, महायोगी और चारों वर्णों की रक्षा करनेवाला था। तूने तक्षक का वचन माना और राजा की रक्षा न की इसी कारण सब तेरी निन्दा और तिर-स्कार करते हैं। यद्यपि राजा परीक्षित् की आयु समाप्त होगई थी तथापि जब तक श्वास रहे तब तक उपाय करना चाहिये; क्योंकि काल की गति

विलक्षण है। कदाचित् बचजाय यह प्राचीन वैद्यों का निश्चय है, तू चिकित्सा करने में समर्थ होकर भी मार्ग से लौट गया और राजा की रक्षा न की, इसलिये राजा का पाप तुझको लगा। शाकल्यमुनि का यह वचन सुनकर कश्यप ने प्रार्थना की, हे महाराज! आप कोई ऐसा उपाय बतलावें,जिससे यह पातकनिवृत्त हो। आप दयालु हैं और मैं आपकी शरण में प्राप्त हुआ हूँ। कश्यप की यह प्रार्थना सुनकर क्षणमात्र ध्यानकर शाकल्यमुनि बोले, हे कश्यप! इस पातक के निवृत्त होने के लिये हम एक उपाय कहते हैं, उसको आप शीघ्रही करिए। दक्षिण समुद्रके बीच सेतु के मध्य गन्धमादनपर्वत पर गायत्री और सरस्वती नामक दो तीर्थ हैं, वहां तू स्नान करते ही शुद्ध हो जायगा। उन तीर्थों का पवन लगते ही सब पाप निवृत्त होजाते हैं, इसलिये तू भी शीघ्र ही जाकर स्नानकर कश्यप शाकल्यमुनि की यह आज्ञा पाकर उनको प्रणाम किया और गन्धमादनपर्वत की ओर चला। वहां जाकर गायत्री,

सरस्वती, दण्डपाणि और भैरव को प्रणामकर, संकल्पपूर्वक दोनों तीर्थों में स्नान किया। स्नान करते ही कश्यप निष्पाप होगया और तीर्थ के तीरपर बैठकर जप करने लगा। थोड़े काल के अनन्तर आभरणों से भूषित, गायत्री और सावित्री प्रकट हुईं। उनको देखकर कश्यप ने भक्ति से प्रणाम किया और पूछा कि तुम दोनों कौन हो? तब वे बोलीं कि हे कश्यप! हम दोनों गायत्री और सरस्वती हैं। नित्य तीर्थरूप से यहाँ निवास करती हैं। इन दोनों तीर्थों में स्नान करने से हम तुझ पर प्रसन्न हुई हैं, जो वर चाहे, वह मांग। इन तीर्थों में जो स्नान करता है, उसको हम अभीष्ट वर देती हैं यह उनका वचन सुन कश्यप स्तुति करनेलगा।

कश्यप उवाच॥ चतुराननगेहिन्यौ जगद्धात्र्यौ नमाम्यहम्। विद्यास्वरूपे गायत्रीसरस्वत्यौ शुभे उभे ॥१॥ सृष्टिस्थित्यन्तकारिण्यौ जगतां वेदमातरौ। हव्यकव्यस्वरूपे च चन्द्रादित्यविलोचने ॥ २ ॥ सर्वदेवाधिपे वाणी गायत्र्यौ सततं भजे। गिरिजा कमला चापि युवामेव जगद्धिते ॥ ३ ॥ युष्मद्दर्शनमात्रेण जगत्सृष्ट्यादिकल्पनम्। युष्मन्निमेषे सततं

जगतां प्रलयो भवेत् ॥ ४ ॥ उन्मेषे सृष्टिरभवद्धो गाय-
त्रिसरस्वति । युवयोर्दर्शनादद्य कृतार्थोभवमाशु वै ॥ ५ ॥

यह स्तुतिकर कश्यप ने प्रार्थना की कि सब मुनि और उत्तम ब्राह्मण मुझे निष्पाप जानकर अङ्गीकार करें और अब कभी मेरी बुद्धि पाप कृत्य में न लगे । सदा धर्म में ही तत्पर रहूँ, यह वर मुझे आप कृपा करके दीजिए । यह वचन सुनकर बोलीं, हे कश्यप ! ये सब बातें तुझ को हमारी अनुग्रह से प्राप्त होंगी । इतना कहकर अपने अपने तीर्थ में दोनों अन्तर्धान होगईं और कश्यप भी कृतार्थ होकर अपने देश को आया और सब ब्राह्मणों ने उसको निष्पाप जानकर अङ्गीकार किया । सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! इसप्रकार गायत्री और सरस्वती में स्नानकर कश्यप बड़े पातक से छूट गया । जो पुरुष भक्ति से इस अध्याय को पढ़े अथवा सुने, वह गायत्री और सरस्वती के स्नानफल को प्राप्त होकर सब पापों से छूटे ॥

इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।

बयालीसवाँ अध्याय ।

गन्धमादनपर्वत के ऋणमोचन आदि सब तीर्थोंका माहात्म्य ।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! सेतु के मध्य और भी जो तीर्थ हैं, उन का वैभव हम वर्णन करते हैं । ऋणमोचन नाम एक तीर्थ है, जिसमें स्नान करने से तीन प्रकार का ऋण निवृत्त होता है । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णों पर ऋषि, देवता और पितरों का ऋण होता है । ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान न करे तो ऋषियों का ऋण रहता है । यज्ञ न करे, तो देवताओं का ऋण और पुत्र उत्पन्न न करने से पितरों का ऋण रहता है । ब्रह्मचर्य, यज्ञ और पुत्रोत्पादन विना ही ऋणमोचनतीर्थ में स्नान करने से मनुष्य, ऋषि, देवता और पितरों के ऋण से छूट जाता है । ऋषि, देवता और पितर ब्रह्मचर्य आदि से वैसे सन्तुष्ट नहीं होते, जैसे ऋणमोचन में स्नान करने से होते हैं और जो दरिद्री पुरुष धनाढ्यों के ऋणसे ग्रस्त हो, वह भी इसतीर्थमें स्नान करे, तो ऋण से निवृत्त होकर धनाढ्य हो

जाताहै । यहां स्नानकरने से ऋणमुक्ति होती है, इसीसे इसका नाम ऋणमोचन है । ऋषि पुरुषों को अवश्य ही इस तीर्थ में स्नान करना चाहिये । इस तीर्थ के समान तीर्थ न हुआ और न होगा । यहां एक तीर्थ पाण्डवों का बनाया है । पांचो पाण्डवोंने भोग और मोक्ष के लिये वहां अनेकों यज्ञकिये, इसलिये उस तीर्थ का नाम पञ्चपाण्डव हुआ । दशसहस्र कोटि तीर्थ सदा पञ्चपाण्डव तीर्थ में निवास करते हैं । आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुद्गण आदि सब देवता उस तीर्थ में निवास करते हैं । इस तीर्थ में स्नान करके जो पुरुष देवता और पितरों का तर्पण करता है, वह सब पापों से छूटकर ब्रह्मलोक को जाता है । जो पुरुष इस तीर्थ के तट पर एक ब्राह्मण को भी भोजन कराता है, वह दोनों लोकों में सुखी रहता है । चारों वर्णों में से कोई भी मनुष्य इस तीर्थ में स्नान करता है, वह फिर नीच योनि में नहीं जन्म लेता । पर्व में जो मनुष्य पाण्डवतीर्थ में स्नान करते हैं, वे

कभी नरक को नहीं देखते हैं । जो सायंकाल और प्रातःकाल इस तीर्थ का स्मरण करते हैं, वे गङ्गा आदि तीर्थों के स्नानफल को प्राप्त करते हैं ।

गन्धमादनपर्वत पर इन्द्र आदि देवताओं ने दैत्यों का नाश होने के लिये एक देवतीर्थ बनाया है । उसमें स्नान करने से सब पाप नाश होते हैं और अक्षय स्वर्गवास होता है । स्त्री अथवा पुरुष के जन्मभर के किये हुये सब पाप देवतीर्थ में स्नान करते ही नष्ट हो जाते हैं, सब देवताओं में जैसे विष्णुभगवान् प्रधान हैं इसी प्रकार सब तीर्थों में देवतीर्थ मुख्य है । सौ वर्ष पर्यन्त अग्निहोत्र करने से जो पुण्य होता है वही देवकुण्ड में एक बार स्नान करने से प्राप्त होता है । देवतीर्थ पर निवास करना, दान देना, जप आदि कर्म करना, और भक्ति से देवतीर्थ में स्नान करना, ये सब बातें बहुत दुर्लभ हैं । देवतीर्थ में जाने से अश्वमेध का फल प्राप्त होता है । वहां दो चार दिन निवास करे तो उत्तम सिद्धि को प्राप्त करे, और जन्म मरण से

छूटजावे, तीन दिन स्नान करने से वाजपेययज्ञ का फल प्राप्त होता है। देवतीर्थ के स्मरण करने से सब पाप निवृत्त हो जाते हैं।

इस तीर्थ पर देवता और पितरों का अर्चन करने से सब मनोरथ सिद्ध होते हैं और सब यज्ञों का फल प्राप्त होता है। इस तीर्थ के तुल्य कोई तीर्थ न हुआ न होगा। दोनों लोकों में, कल्याण की इच्छावाले पुरुषों को, विशेष करके मुमुक्षु पुरुषों को देवतीर्थ में अवश्य ही स्नान करना चाहिये। देवतीर्थ का यह माहात्म्य हमने संक्षेप से वर्णन किया। विस्तार से कहां तक वर्णन करें।

अब रामसेतु में सुग्रीवतीर्थ का माहात्म्य कहते हैं। सुग्रीवतीर्थ में स्नान करने से अश्वमेध का फल प्राप्त होकर, सूर्यलोक में निवास होता है, सहस्र गोदान का फल होता है, ब्रह्महत्या आदि पाप निवृत्त होते हैं, वेदपारायण का फल होता है। वहां स्नानकर देवता पितरों का तर्पण करे, तो आठ अग्निष्टोमयज्ञ का फल प्राप्त होता

है। सुग्रीवतीर्थ में स्नान करने से मनुष्य जातिस्मर होता है, इसलिये अवश्यही सुग्रीवतीर्थ में स्नान करना चाहिये। सुग्रीवतीर्थ का यह माहात्म्य कहा। नलतीर्थ का वैभव अब वर्णन करते हैं। नलतीर्थ में स्नान करने से मनुष्य सब पापों से निवृत्त होकर अग्निष्टोम आदि यज्ञों का फल पाकर स्वर्ग में निवास करता है। तीन दिन उपवास करे और नलतीर्थ में देवता और पितरों का तर्पण करे तो अतिरात्र, अश्वमेध आदि यज्ञके फल को पाकर, सूर्यके तुल्य प्रकाशित होता है।

अब नीलतीर्थ का माहात्म्य वर्णन करते हैं। यह तीर्थ अग्नि के पुत्र नील ने बनाया है। नीलतीर्थ में स्नान करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर स्वर्णयज्ञ का सौगुणा फल पाकर अग्निलोक को जाता है। गवाक्षतीर्थ में स्नान करे तो कभी नरक का भय न हो। अङ्गदतीर्थ में स्नान करने से मनुष्य देवत्व को प्राप्त होता है। इसप्रकार गज, गवय, शरभ, कुमुद, पनस आदि

वानरों के बनाये तीर्थ गन्धमादन में हैं । उनमें स्नान करने से मोक्ष प्राप्त होता है । विभीषण के बनाये तीर्थ में स्नान करे तो पाप, दुःख, रोग, कुम्भीपाक आदि नरकों का भय, दुःस्वप्न, दारिद्र्य आदि नाश को प्राप्त होते हैं । वहां स्नान करनेवाला मनुष्य सर्व पापों से छूटकर वैकुण्ठ को जाता है । विभीषण के मन्त्रियों ने चार तीर्थ बनाये हैं । उनमें स्नान करने से सब पाप निवृत्त होते हैं ।

गन्धमादनपर्वत में रामनाथ महादेव का सेवन करने के लिये सरयू नदी वहां निवास करती है । उसमें स्नान करने से सब यज्ञ, तप, तीर्थ, दान आदि का फल प्राप्त होता है । दश-सहस्र कोटि तीर्थ गन्धमादन में निवास करते हैं । गङ्गा आदि नदी, सातों समुद्र, ऋषियों के आश्रम, पुण्यवन, शिव, विष्णु आदि क्षेत्र सब गन्धमादन में निवास करते हैं । तेंतीस कोटि देवता, पितर, मुनि, यक्ष, किन्नर आदि सब रामसेतु में निवास करते हैं । सूतजी कहते हैं,

हे मुनिवर्य ! यह गन्धमादन के सब तीर्थों का माहात्म्य हमने वर्णन किया । जो पुरुष इस अध्याय को पढ़े अथवा श्रवणकरे वह सब पापों से छूटकर मोक्ष को प्राप्त होता है ।

बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ।

तैंतालीसवाँ अध्याय ।

रामेश्वर का माहात्म्य, अष्टविध भक्ति का वर्णन तथा रामेश्वर के पूजन आदि का फल ।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! अब हम रामनाथ का माहात्म्य वर्णन करते हैं । इस माहात्म्य के सुनने से मनुष्य सब पापों से छूट जाते हैं । रामचन्द्रजी के स्थापन किये लिङ्ग का जो मनुष्य दर्शन करता है, वह मुक्ति पाता है । सत्ययुग में जो पुण्य दश वर्ष में साधन कर सकते थे, वह त्रेतायुग में एक वर्ष में, द्वापर में एक मास में और कलियुग में एक दिन में सिद्ध हो सकता है । वह पुण्य कोटिगुण एक२ निमेष में रामनाथ के दर्शन से प्राप्त होता है । रामेश्वरलिङ्ग में सब तीर्थ, सब देवता, ऋषि, पितर, मुनि आदि

निवास करते हैं। जो पुरुष नित्य रामेश्वर का स्मरण-कीर्तन करते हैं वे सब पापों से छूट कर सच्चिदानन्द स्वरूप साम्ब शिव में लीन हो जाते हैं और कभी उन मनुष्यों को यमयातना नहीं होती। जो पुरुष रामनाथलिङ्ग का एक बार भी पूजन करते हैं; वे मनुष्य नहीं, साक्षात् रुद्र हैं। जो पुरुष रामेश्वर का पूजन नहीं करते हैं वे कभी संसार के दुःख से नहीं छूटते। जो पुरुष रामेश्वर का स्मरण निरन्तर करता है उसको दान, व्रत, तप, यज्ञ आदि करने की कुछ अपेक्षा नहीं। जो पुरुष रामेश्वर का स्मरण नहीं करते हैं, वे अज्ञानी, जड़, मूक, बधिर तथा नेत्रहीन होते हैं और उनके धन, संतान, क्षेत्र आदि की सदा हानि होती है।

जिसने रामेश्वरलिङ्ग के दर्शन किये हैं, उसने गया, प्रयाग, काशी आदि तीर्थों का फल प्राप्त किया। जो पुरुष अतिदुर्लभ मनुष्यजन्म पाकर रामेश्वर का दर्शन तथा पूजन करते हैं, उनका जन्म सफल है। रामेश्वरलिङ्ग का पूजन करने-

वाले मनुष्य को ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवताओं की कुछ आकांक्षा नहीं रहती। जो मनुष्य रामेश्वर को प्रणाम तथा प्रदक्षिणा करते हैं, वे कभी दुःख नहीं पाते और यमलोक को भी नहीं जाते। सहस्रों ब्रह्महत्या आदि पाप रामेश्वर का दर्शन करते ही नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य स्वर्गसुख भोगना चाहें, वे सदा रामेश्वर का पूजन करें। कोटि जन्मों के किये हुए पाप रामेश्वर के दर्शन से ही नाश हो जाते हैं। जो मनुष्य लोभ से, भय तथा संसर्ग से एक बार भी रामेश्वर का स्मरण अथवा पूजन करते हैं, वे कभी भी दुःख नहीं पाते। रामेश्वर का कीर्तन तथा पूजन से अवश्यही शिवसायुज्य प्राप्त होता है। जिसभांति अग्नि काष्ठ को दग्ध कर देती है उसी प्रकार रामेश्वर का दर्शन पापों को भस्म करता है।

रामेश्वर की भक्ति आठ प्रकार की है। रामेश्वर के भक्तों में स्नेह रखना, पूजा देखकर प्रसन्न होना, आप पूजन करना, रामेश्वर के अर्थ

देहकी चेष्टा करना, रामेश्वर कथा सुननेमें आदर, रामेश्वर स्मरण से शरीर में रोमाञ्च और अश्रुपातआदि होना, रामेश्वरका स्मरण करते रहना और रामेश्वर के आश्रय से जीना यह आठ प्रकार की भक्ति यदि म्लेच्छ में भी हो तो वह मुक्ति का भागी होता है । देवता में अनन्यभक्ति, ब्रह्मज्ञान और वेदांत शास्त्र श्रवण से जितेन्द्रिय मुनिवरों को प्राप्त होती है वह मुक्ति विना ज्ञान, विना वैराग्य और विना कायक्लेश के सब वर्ण तथा सब आश्रम के मनुष्यों को रामेश्वर के दर्शन मात्र से मिल सक्ती है । कृमि, कीट, देवता, मनुष्य, बड़े तपस्वी मुनि रामेश्वर का दर्शन करने से तुल्य ही गति पाते हैं । पापी पुरुष पाप का भय न करें, पुण्य करने वाले पुण्य का गर्व न रक्खें, रामेश्वर दर्शन करने के पीछे सब समान हैं ।

जो भक्ति से रामेश्वर का दर्शन करता है, उसकी तुल्यता चार वेद जानने वाला ब्राह्मण भी नहीं कर सकता । रामेश्वर का भक्त यदि

चाण्डाल भी मिले तो, वेदवेत्ता ब्राह्मण को छोड़ कर सब दान उसको देना चाहिये । जो गति ऊर्ध्वरेता योगीश्वरों की होती है, वही रामेश्वर दर्शन करने वालों को प्राप्त होती है । रामेश्वर में निवास करने वाले सब मनुष्य मरण के अनन्तर साक्षात् शिवस्वरूप होते हैं । जो मनुष्य रामेश्वर की यात्रा करते हैं उनके एक एक पद में अश्वमेध का फल प्राप्त होता है । रामेश्वर में जो एक ग्रास भर अन्न भी ब्राह्मण को देवे, वह सप्तद्वीपवती भूमि के दान फल को पाता है । रामनाथ को जो पुरुष भक्ति से पत्र, फल, जल अर्पण करते हैं, रामनाथ महादेव उसकी सदा रक्षा करते हैं । रामनाथ का पूजन, भक्ति, स्मरण, स्तुति आदि सब अति दुर्लभ हैं ।

जो पुरुष भक्ति से रामनाथ की शरण में प्राप्त होते हैं, वे दोनों लोकों में लाभ और जय पाते हैं । जिसका चित्त दिन रात रामनाथ में लगा रहे, वह धन्य है । जो मनुष्य रामेश्वर

का पूजन नहीं करते, वे भोग, मोक्ष नहीं पाते। पूजन करने वाले ही भुक्ति और मुक्ति पाते हैं। रामेश्वर पूजन से अधिक कोई पुण्य नहीं है। जो पुरुष रामेश्वर के साथ द्वेष करता है, वह दशहज़ार ब्रह्म हत्याओं से लिप्त होता है और उसके साथ सम्भाषणमात्र से नरक में वास होता है। सब देव और यज्ञ रामनाथ के ही हैं, इस कारण सबको छोड़ कर रामनाथ की शरण में जाना चाहिये। रामनाथ की शरण में प्राप्त हुए पुरुष सब पापों से छूटकर शिवलोक को जाते हैं। जो फल यज्ञ, तप, दान, तीर्थस्नान आदि करने से मिलता है, उससे कोटिगुणा फल रामेश्वर के दर्शन से होता है। दो घड़ी रामनाथ का स्मरण मात्र से सौ पीढ़ी समेत शिवलोक में प्राप्त होता है। जो पुरुष दिन भर रामनाथ का दर्शन करता है वह सब संसार का सुख भोग कर अंत में रुद्र बनता है। जो प्रातःकाल उठकर रामनाथ का स्मरण करता है उसको साक्षात् शिव जानना

चाहिए। रामनाथ के दर्शन करनेवाले पुरुष के दर्शन करने से सब पाप निवृत्त हो जाते हैं। मध्याह्न को रामनाथ का दर्शन करे, तो हज़ारों सुरापान-पातक नष्ट होते हैं। सायंकाल को दर्शन करने से गुरुदारगमनपातक निवृत होते हैं। सायंकाल के समय उत्तम स्तोत्रों से रामेश्वर की स्तुति करे, तो हज़ार सुवर्ण-स्तेयपातक नाश को प्राप्त होते हैं। धनुष्कोटि में स्नान और रामेश्वर का दर्शन यदि एक बार भी करले तो गंगा आदि तीर्थों की कुछ अपेक्षा नहीं रहती है। जो वस्तु रामनाथ की सेवा से न प्राप्त हो, वह किसी प्रकार से भी नहीं प्राप्त हो सकती है। जो मनुष्य रामनाथ का दर्शन कभी नहीं करता, उसको वर्णसंकर जानना चाहिए। जो प्रातःकाल उठकर तीन बार रामनाथ शब्द को उच्चारण करता है, उसका पूर्व दिन का किया पाप निवृत्त हो जाता है। रामनाथ के होते मनुष्य दूसरे की क्यों याचना करते फिरते हैं। रामनाथ की

कृपा होने से सब क्लेश निवृत्त हो जाते हैं जिस प्रकार सूर्योदय होते ही अन्धकार दूर हो जाता है। जो पुरुष प्राण त्याग के समय रामनाथ का स्मरण करे वह फिर जन्म नहीं लेता और साक्षात् शिव हो जाता है। जो पुरुष (हे रामनाथ! हे करुणानिधे! हे भक्तवत्सल!) इत्यादि वाक्य उच्चारण किया करे, उसको कभी कलियुग की बाधा नहीं होती, वह माया में लिप्त नहीं होता, और काम क्रोध आदि भी उसको पीड़ा नहीं देते। जो पुरुष काष्ठ से रामनाथ का मन्दिर बनावे, वह तीनकोटि कुलसहित स्वर्ग को जाता है। ईंटों से बनावे तो वैकुण्ठ पावे। पत्थर से मन्दिर बनावे तो ब्रह्मलोक को जावे। स्फटिकआदि उत्तम शिलाओं से रामनाथ का मन्दिर बनावे तो उत्तम विमान में बैठकर शिव लोक को जावे। ताम्र से रामनाथ का मन्दिर बनावे तो शिवसालोक्य पावे। चांदी से बनावे तो शिवसायुज्य मिले। सुवर्ण का मन्दिर बनवावे तो शिवसारूप्य पावे। धनवान् सुवर्ण का

बनवावे और दारिद्र्य पुरुष मृत्तिका का मन्दिर बनवावे तो दोनों को तुल्य ही फल मिलता है। रामनाथ के स्नान कराने के समय और तीन काल आरती के समय, जो पुरुष अनेक प्रकार के बाजे बजावें, वे सब पापों से छूटकर रुद्रलोक को प्राप्त होते हैं। जो पुरुष रामनाथ के स्नान समय में रुद्राध्याय, चमक, पुरुषसूक्त, त्रिसुपर्ण, पञ्चशान्ति, पावमान आदि का पाठ करता है वह कभी नरक नहीं देखता। गोदुग्ध, दधि, घृत, पञ्चगव्य से जो रामनाथ को स्नान करावे, वह नरक नहीं देखता। घृत से स्नान करावे तो करोड़ों जन्म के पाप निवृत्त होजाते हैं। दुग्ध से स्नान करावे तो इक्कीस कुलसहित शिवलोक को प्राप्तहो। दही से स्नान करावे तो विष्णुलोक में प्राप्त हो जो मनुष्य रामेश्वरलिङ्ग को तिलतैल से अभ्यङ्ग कराता है, वह कुबेर के समीप निवास करता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक एक बार भी रामनाथ को इक्षुरस से स्नान कराता है, वह चन्द्रलोक को प्राप्त होता है। बड़हर और आम्र के रस से

स्नान कराने से पितृलोक में निवास करता है। नारिकेल के जल से स्नान कराने से ब्रह्महत्या आदि पाप निवृत्त होते हैं। पके केलों से रामनाथ लिङ्ग को लेपन करे, तो सब पापों से छूटकर वायुलोक को प्राप्त होता है। वस्त्र से छनेहुये जल से रामनाथ को स्नान करावे, तो वरुणलोक में निवास करता है। चन्दनयुक्त जल से स्नान करावे, तो गन्धर्वलोक को प्राप्त होताहै। कमलादि पुष्पों से सुगन्धित और सुवर्ण युक्त जल से स्नान करावे, तो इन्द्र के समीप निवास हो। पाटल, उत्पल, कह्लार आदि से वासित जल से स्नान करावे तो सब पापों से छूट जाय और भी सुगन्ध पुष्पों से वासित जल से स्नान कराने से शिवलोक की प्राप्ति होती है। इलायची, कपूर आदि से सुगन्ध जल से रामेश्वर को स्नान करावे, तो अग्निलोक में जाय तथा सुखपूर्वक निवास करे। रामनाथ के अभिषेक के लिये जो मृत्तिका के घट देवे, वह सुखपूर्वक सौ वर्ष आयुर्दाय भोगता है। ताम्र के घट देवे तो स्वर्ग

को जाता है। चांदी के कुम्भ देवे तो ब्रह्मलोक को प्राप्तहोता है। सुवर्ण के कलश देने से शिव-लोक मिले और रत्नकुम्भ अभिषेक के हेतु देने से शिवजी के समीप निवास करता है। जो दूध देनेवाली गौ रामेश्वर को अर्पण करे, वह अश्व-मेध यज्ञ का फल पाकर शिवलोक में निवास करता है। जो मनुष्य स्नान के समय रामनाथ और धनुष्कोटि का स्मरण करता है, वह सेतु-स्नान का फल पाता है। जो मनुष्य रामनाथ के मन्दिर को कली पुतवाकर श्वेत करदेवे, उसके पुण्य फल को हम सौ वर्ष में भी नहीं वर्णन कर सकते। जो रामनाथ के मन्दिर का जीर्णोद्धार करता है। वह ब्रह्महत्या आदि पापों से छूटता है और नया मन्दिर बनाने से भी सौगुणा अधिक पुण्य पाता है। रामनाथ के आगे जो दीप जलावे, वह अविद्यारूप अन्ध-कार से छूटकर ब्रह्मसायुज्य को प्राप्त होता है। जो रामेश्वर को घृत, तेल, मूंग, चावल, गुड़, खांड़ आदि अर्पण करे, वह इन्द्र के समीप

निवास करता है। रामनाथ के दर्शन, स्पर्श, स्मरण, पूजन आदि से सब पाप नाश को प्राप्त होते हैं। जो पुरुष दर्पण और घण्टा रामनाथ को चढ़ावे वह उत्तम विमान में बैठकर शिवलोक को जाता है। जो मनुष्य रामनाथ के भेरी, मृदङ्ग, पणव, वंशी आदि बाजे अर्पण करे वह भी उत्तम विमान में बैठकर शिवलोक को प्राप्त हो। जो मनुष्य रामनाथ के निमित्त थोड़ा भी देवे, वह अनन्तगुण होजाता है। जो जन्म भर रामेश्वर क्षेत्र में रहता है, वह अवश्यही मुक्ति पाता है। आयुर्दाय, यौवन, सम्पत्ति, पुत्र, स्त्री आदि कोई पदार्थ जगत् में स्थिर नहीं हैं। राजा धन क्षेत्रआदि को हरलेते हैं, इसलिये मनुष्य को इन सबका मोह छोड़कर रामेश्वर की शरण में अवश्य प्राप्त होना चाहिए। जो पुरुष उत्तम ग्राम रामेश्वर को अर्पण करे, वह साक्षात् शिवस्वरूप ही हो जाता है। सब पात्रों में उत्तम पात्र रामेश्वर हैं, इसलिये सब पदार्थ रामेश्वर को अर्पण करने चाहिये। राम-

नाथ के दर्शन पर्यन्त ही सब पातक रहते हैं। जो पुरुष रामेश्वर को पंखा, ध्वजा, छत्र, चामर, चन्दन, गुग्गुल, ताम्र, चाँदी, सोने आदि के घट और भी उत्तम २ सामग्री अर्पण करते हैं, वे जन्मान्तर में चक्रवर्ती राजा होते हैं। रामेश्वर के पूजन के हेतु जो भक्ति से पुष्प लाते हैं, वे अश्वमेधादि यज्ञों का फल पाते हैं। रामेश्वर का दर्शन, श्रवण, पूजन, स्मरण आदि करनेवाले पुरुषों को कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं। जो पुरुष रामनाथ को जाते हैं, उनके पातक भयभीत हो जाते हैं। रामनाथ का दर्शन करनेवाले पुरुषों को वेद, शास्त्र, तीर्थ, यज्ञ आदि से कुछ प्रयोजन नहीं। जो पुरुष रामेश्वर को चन्दन, केसर, कस्तूरी, गुग्गुल, राल आदि धूप अर्पण करे वह धनाढ्य और वेद-शास्त्र का जाननेवाला होता है। मोतियों के हार और उत्तम २ वस्त्र जो रामनाथ को अर्पण करे, वह कभी दुर्गति नहीं भोगता है। जो रामनाथ को गङ्गाजल से स्नान करावे उसका शिवजी भी सत्कार करते

हैं । जब तक वृद्धावस्था न प्राप्त हो, इन्द्रिय शिथिल न हो जायँ, मृत्यु न आ पहुँचे, तब तक रामेश्वर की शरण में प्राप्त हो जाना चाहिये । सब पुराण और धर्मशास्त्रों में रामेश्वर की पूजा के तुल्य कोई धर्म नहीं है । रामेश्वर का सेवन करनेवाले पुरुष बहुत कालतक संसार-सुख भोगकर अन्त में मुक्ति पाते हैं । सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! रामनाथ का थोड़ा सा वैभव हमने वर्णन किया । जो पुरुष इसको भक्ति से पढ़े, अथवा श्रवण करे, वह धनुष्कोटि स्नान और रामनाथ के दर्शन करने का फल पाकर, सद्गति को प्राप्त होता है ।

तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।

चवालीसवाँ अध्याय ।

रावण आदि के वध की कथा तथा रामेश्वर के स्थापन का कारण ।

शौनक आदि ऋषि पूछते हैं, हे सर्वपुराणज्ञ सूतजी ! आपके मुख-कमल से यह सेतुमाहात्म्य और रामेश्वर का वैभव सुनकर, हम

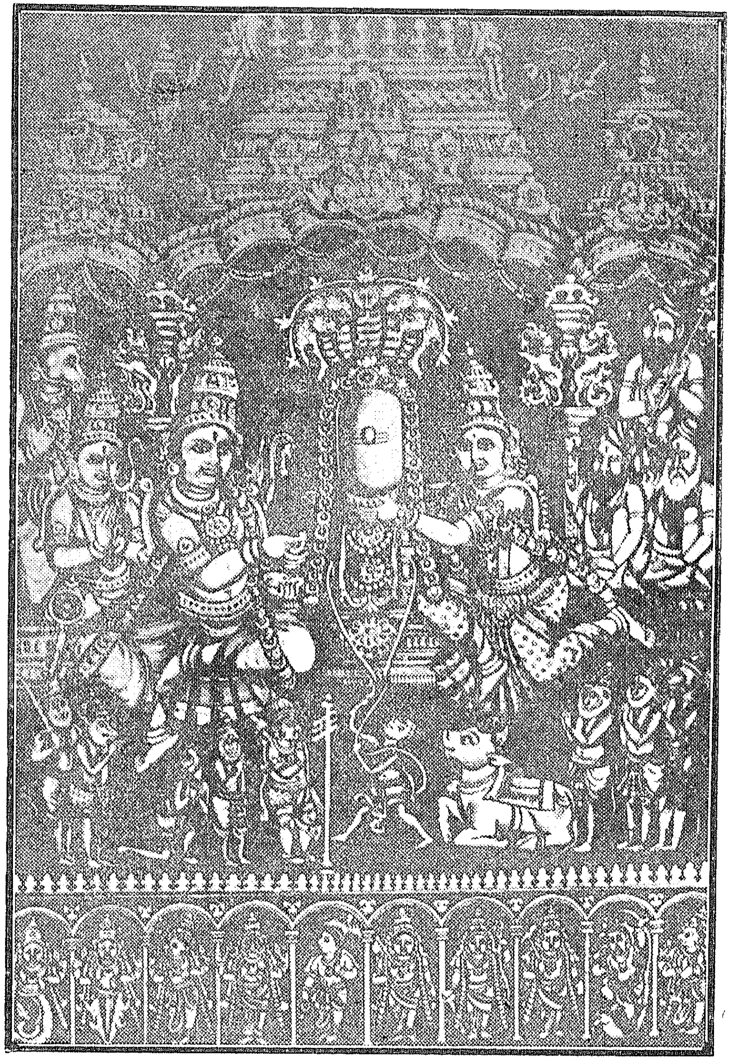

श्रीरामचन्द्र के द्वारा श्रीरामेश्वरजी की प्रतिष्ठा ।

कृतार्थ हुये। अब आप यह वर्णन करें कि श्री-रामचन्द्रजी ने रामेश्वर का स्थापन किस प्रकार किया और किस समय किया। मुनियों का यह प्रश्न सुनकर सूतजी कहने लगे, हे मुनिवर्य! गन्धमादनपर्वत में रामचन्द्रजी ने रामेश्वर का स्थापन जिस लिये किया, हम वर्णन करते हैं। रामचन्द्रजी की भार्या सीता को रावण हर ले गया। तब वानरों की सेना सहित रामचन्द्रजी महेन्द्र पर्वत पर पहुँचे। समुद्र को देखा और सेतु बांध पूर्णमासी के दिन सायंकाल के समय समुद्र पार कर, बेलापर्वत पर पहुँचे। रावण लङ्का में अपने महल के ऊपर बैठा था। सुग्रीव ने जाकर रावण का मुकुट उतार लिया। रावण मुकुट उतरने से लज्जित होकर महल के भीतर चला गया। रामचन्द्रजी ने सेना का डेरा किया। तब रावण के अनुचर पर्वण, पूतना, जृम्भ, खर, क्रोधवश, हरिप्रारुज, चारुज, प्रहस्त आदि अदृश्य होकर रामचन्द्रजी की सेना में आये, परन्तु विभीषण ने उनको प्रकट कर दिया, इस-

लिये वे सब वानरों के हाथ से मारे गये। रावण यह बात न सह सका, इससे युद्ध करने के हेतु निकला। तब रामचन्द्रजी भी रावण के साथ युद्ध करने निकले और युद्ध होने लगा। लक्ष्मण मेघनाद का, सुग्रीव विरूपाक्ष का, अङ्गद खर्वट का, नल पौण्ड्र का, पनस पुटश का, परस्पर युद्ध प्रवृत्त हुआ और भी वानर और राक्षसों का द्वन्द्वयुद्ध होने लगा। वानरों ने बहुत से राक्षस मारे। तब रावण के पुत्र इन्द्रजित् ने रामचन्द्र और लक्ष्मण को नागपाश से बांध लिया। उस समय गरुड़ ने आकर उनको छुटाया। प्रहस्त और विभीषण का युद्ध होता था। प्रहस्त ने बड़े वेग से विभीषण पर गदा का प्रहार किया, परन्तु विभीषण हिमालयपर्वत की भांति स्थिर रहा। फिर विभीषण ने आठ घण्टाओं से शोभित शक्ति प्रहस्त पर चलाई, जिसके लगते ही प्रहस्त का शिर उड़ गया और वृक्ष की भांति भूमि पर गिर पड़ा। उसको गिरे देख कर धूम्राक्ष नाम दैत्य

वानर सेना की ओर चला। उसको देखकर भय से वानरसेना भगी। तब हनुमान्जी ने उसको मार गिराया।

राक्षसों ने यह सब वृत्तान्त रावण से कहा। तब रावण ने कुम्भकर्ण को जगाया और युद्ध करने के हेतु भेजा। उसको लक्ष्मण ने ब्रह्मास्त्र से मारा। दूषण के छोटे भाई वज्रवेग और प्रमाथीको हनुमान् और नील ने मारे। जो रावण के तुल्य पराक्रमी थे। वज्रदंष्ट्र को विश्वकर्मा के पुत्र नल ने और अकम्पन को कुमुद नाम वानर ने यमलोक को भेजा। अतिकाय और त्रिशिरा को लक्ष्मण ने, देवान्तक और नरान्तक को सुग्रीव ने, कुम्भकर्ण के दोनों पुत्रों को हनुमान् ने तथा मकराक्ष को विभीषण ने मारा। तब रावण ने अपने पुत्र इन्द्रजित् को युद्ध की आज्ञा दी। वह भी जाकर अदृश्य होकर आकाश में स्थित होकर वानरों का संहार करने लगा। कुमुद, अङ्गद, सुग्रीव, नल, जाम्बवान् आदि वानर भूमि पर गिरे।

रामचन्द्रजी को भी उस समय बड़ा क्षोभ हुआ। तब विभीषण ने प्रार्थना की, हे महाराज! कुबेर का भेजा हुआ एक यक्ष जल लेकर आया है, उस जल को नेत्र में लगाने से अदृश्य भूत देख पड़ते हैं।

विभीषण का यह वचन सुन कर वह जल रामचन्द्रजी ने लिया और लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान्, अङ्गद, मैन्द, द्विविद आदि सबको दिया। उन सब ने नेत्र धोये, तब आकाश में इन्द्राजित् को देखा। लक्ष्मण और इन्द्रजित् का ऐसा घोर युद्ध होने लगा, जैसे इन्द्र और प्रह्लाद का पूर्वकाल में हुआ था। तीसरे दिन लक्ष्मण ने इन्द्रजित् को मारा। उसके साथ जो सेना थी उसका वानरों ने संहार किया। रावण प्रिय पुत्र के मर जाने पर क्रोध और शोक से पीड़ित होकर, रथ में बैठ कर, युद्ध करने के हेतु आया। रावण ने जानकी को मारना चाहा था, परन्तु विन्ध्य ने उसको निवारण किया। इतने में इन्द्र का सारथि मातलि रामचन्द्रजी के लिये रथ

लाया। तब रामचन्द्रजी इन्द्र के भेजे हुए रथ में बैठकर रावण से युद्ध करने लगे और ब्रह्मास्त्र से रावण को मारा। रावण के मारने से सब ऋषि रामचन्द्रजी को आशीर्वाद देने लगे। देवता, सिद्ध, विद्याधर, स्तुति और पुष्पवृष्टि करने लगे। रामचन्द्रजी लङ्का का राज्य विभीषण को देकर सीता और लक्ष्मण-सहित पुष्पक विमान पर चढ़कर गन्धमादनपर्वत में पहुँचे। वहां आकर सीता का अग्नि में शोधन किया। उसी स्थान पर सीता, लक्ष्मण, हनुमान्, विभीषण, सुग्रीव, अङ्गद आदि रामचन्द्रजी सहित स्थित थे। तब दण्डकारण्य के सब मुनि अगस्त्यमुनिसहित वहां आये और रामचन्द्रजी की स्तुति करने लगे।

मुनय ऊचुः॥ नमस्ते रामचन्द्राय लोकानुग्रहकारिणे॥ अरावणं जगत्कर्तुमवतीर्णाय भूतले॥ १॥ ताटकादेहसंहर्त्रे गाधिजाध्वररक्षिणे॥ नमस्ते जितमारीच सुबाहुप्राणहारिणे॥ २॥ अहल्यामुक्तिसंदायिपादपङ्कजरेणवे॥ नमस्ते हरकोदण्डलीलाभञ्जनकारिणे॥ ३॥ नमस्ते मैथिलीपाणि-

ग्रहणोत्सवशालिने ॥ नमस्ते रेणुकापुत्रपराजयविधायिने ॥४॥ सहलक्ष्मणसीताभ्यां कैकेय्यास्तु वरद्वयात् ॥ सत्यं पितृवचः कर्तुं नमो वनमुपेयुषे ॥५॥ भरतप्रार्थनादत्तपादुकायुगलायते ॥ नमस्ते शरभङ्गस्य स्वर्गप्राप्त्येकहेतवे ॥ ६ ॥ नमो विराधसंहर्त्रे गृध्रराजसखाय ते ॥ मायामृगमहाक्रूरमारीचाङ्गविदारिणे ॥७॥ रावणापहृता सीता युद्धत्यक्तकलेवरम् ॥ जटायुषं तु संदह्य तत्कैवल्यप्रदायिने ॥८॥ नमः कबन्धसंहर्त्रे शबरीपूजिताङ्घ्रये । प्राप्तसुग्रीवसख्याय कृतबालिवधाय ते ॥ ९ ॥ नमः कृतवते सेतुं समुद्रे वरुणालये ॥ सर्वराक्षससंहर्त्रे रावणप्राणहारिणे॥१०॥ संसाराम्बुधिसंतारपोतपादाम्बुजाय ते ॥ नमो भक्तार्तिसंहर्त्रे सच्चिदानन्दरूपिणे ॥ ११ ॥ नमस्ते रामभद्राय जगतामृद्धि-हेतवे ॥ रामादिपुण्यनाम्ने च जगतां पापहारिणे ॥ १२ ॥ नमस्ते सर्वलोकानां सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे ॥ नमस्ते करुणामूर्ते भक्तरक्षणदीक्षित ॥ १३ ॥ ससीताय नमस्तुभ्यं विभीषण-सुखप्रद ॥ लङ्केश्वरवधाद्राम पालितं हि जगत्त्वया ॥ १४ ॥ रक्ष रक्ष जगन्नाथ पाह्यस्माञ्जानकीपते ॥

इस प्रकार मुनियों ने स्तुति की। सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! जो पुरुष इस स्तोत्र को तीन काल पढ़े, वह भोग और मोक्ष पाता है। यात्रा के समय पढ़े तो मार्ग में किसी प्रकार का

भय नहीं होता। इस स्तोत्र के पाठ से भूत, वेताल, रोग, पाप, दुःख आदि क्षय को प्राप्त होते हैं। इस स्तोत्र के पाठ से पुत्र, धन, मोक्ष आदि सब पदार्थ मिलते हैं। मुनियोंकी की हुई स्तुति सुनकर रामचन्द्रजी ने कहा, हे मुनिवर्य! सब जीव शुद्धि के लिये हमारी प्राप्ति चाहते हैं और जो हमारे दर्शन पावे, वह मुक्त हो जाता है, तो भी हम भक्ति से शान्तचित्त और जगत् के हित में प्रवृत्त साधुओं को प्रणाम ही करते हैं। हम ब्राह्मणों के भक्त हैं, इसलिये सदा ब्राह्मणों का सेवन करते हैं। अब एक बात हम आपसे पूछते हैं, आप सब कृपा करके हमसे कहें। पुलस्त्यमुनि के पुत्र, रावण के वध से जो पाप हमको हुआ, उसका आप प्रायश्चित्त बतावें। जिसके करने से हम निष्पाप हो जायँ।

रामचन्द्रजी का यह वचन सुनकर मुनि बोले, हे महाराज! आप जगत्प्रभु हैं। आप को कुछ पातक नहीं, तो भी लोकों के कल्याण के हेतु और पाप की शंका निवृत्त करने के अर्थ

इस गन्धमादनपर्वत में आप शिवलिङ्ग स्थापन करें। शिवलिङ्ग स्थापन के फल को ब्रह्माजी भी नहीं वर्णन कर सकते, मनुष्य की तो क्या शक्ति है। आप के स्थापन किये लिङ्ग के दर्शन का फल, काशी विश्वनाथ के दर्शन फल से कोटिगुणित होगा और आपके नाम से यह लिङ्ग प्रसिद्ध होगा, इसलिये आप विलम्ब न करें। मुनियों का यह वचन सुनकर हनुमान् को रामचन्द्रजी ने आज्ञा दी, हे वायुपुत्र! शीघ्र ही कैलासमें जाकर एक उत्तम शिवलिङ्ग ले आवो। हनुमान्जी रामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर, भुजाओं का शब्दकर, गन्धमादन को कँपाकर आकाश को उड़े और क्षणमात्र में कैलासपर्वत पर पहुँचे, परन्तु वहां लिङ्गरूप महादेव न मिले। तब लिङ्ग प्राप्ति के हेतु हनुमान्जी ऊर्ध्वबाहु, जितेन्द्रिय होकर श्वास रोककर तप करने लगे।

कुछ काल के अनन्तर प्रसन्न होकर शिवजी ने हनुमान् को एक उत्तम लिङ्ग दिया, परन्तु हनुमान्जी के आगमन में विलम्ब होने से

मुनिवरों ने रामचन्द्रजी से कहा कि मुहूर्तकाल आगया और हनुमान् शिवलिङ्ग लेकर नहीं आया, इसलिये सीताजी ने लीला करके जो बालू का शिवलिङ्ग बनाया है, उसको आप स्थापन कीजिये। मुनियों का यह वचन रामचन्द्रजी ने अङ्गीकार किया और ज्येष्ठमास, शुक्लपक्ष, दशमी तिथि, बुधवार, हस्तनक्षत्र, व्यतीपातयोग, गरकरण, आनन्दयोग, कन्या के चन्द्र और वृष के सूर्य में सीता-सहित रामचन्द्रजी ने रामेश्वरलिङ्ग का स्थापन किया और भक्ति से पूजन किया। तब पार्वती-सहित शिवजीने प्रत्यक्ष होकर रामचन्द्रजी से कहा, हे रामचन्द्रजी! आपके स्थापन किये इस लिङ्ग का जो पुरुष दर्शन करेंगे, वे महापातकों से निवृत्त होंगे।

धनुष्कोटितीर्थ में स्नान कर, जो रामेश्वर का दर्शन करेंगे, उनके अनेक जन्मों के पाप नाश को प्राप्त होंगे। शिवजी ने यह वर दिया कि रामेश्वर के आगे रामचन्द्रजी ने नन्दिकेश्वर को स्थापन किया और धनुष् के अग्र भाग से

भूमि को भेदन कर, शिवजी के अभिषेक के लिये एक कूप बनाया। उसका नाम धनुष्कोटि हुआ। जिसका माहात्म्य हम पहिले वर्णन कर चुके हैं। उस तीर्थ के जल से शिवजी को स्नान कराया। फिर सब देवता, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा और वानरों ने एक एक शिवलिङ्ग स्थापन किया। सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! जिस प्रकार रामचन्द्रजी ने शिवलिङ्ग स्थापन किया, वह हमने आपके सम्मुख वर्णन किया। जो इस अध्याय को पढ़े अथवा श्रवण करे, वह रामेश्वर के दर्शन का फल पाकर शिव सायुज्य पाता है।

चवालीसवाँ अध्याय समाप्त।

पैंतालीसवाँ अध्याय।

हनुमान्जी की अद्भुत कथा तथा हनुमान्जी के प्रति रामचन्द्रजी का ब्रह्मज्ञान उपदेश।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! उसी अवसर में हनुमान्जी भी उत्तम शिवलिङ्ग लेकर आ पहुँचे और रामचन्द्र, सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि को प्रणाम किया और देखा कि रामचन्द्-

हनुमान्जी का श्रीसीताजी के द्वारा स्थापित किये हुए शिवलिङ्ग के उखाड़ने का प्रयत्न करना।

जी ने शिवलिङ्ग स्थापन कर दिया, तब हनुमान्-जी को बड़ा क्रोध हुआ और कहने लगे, हे रामचन्द्रजी ! मेरा जन्म वृथा है। मेरा ऐसा पुत्र किसी स्त्री के न हो, जो इतना दुःख भोगता फिरे। पहिले तो आपकी सेवा में खिन्न हुआ, फिर राक्षसों के साथ युद्ध में अति दुःख भोगा और सबसे अधिक क्लेश यह हुआ कि आपने मेरा अनादर किया। सुग्रीव ने भार्या के लिए आपकी सेवा की। विभीषण ने राज्य के लिए, परन्तु मैंने किसी प्रयोजन के लिये आपका सेवन नहीं किया। विना हेतु दिनरात आपका सेवन करता हूं। हजारों वानरों को बचाकर आपने मुझे आज्ञा दी, तब मैं कैलास में गया। वहां तपकर शिवजी को प्रसन्न किया और अति उत्तम शिवलिङ्ग लेकर आपके समीप पहुँचा। परन्तु आपने और ही लिङ्ग स्थापन कर दिया और हमारा यह परिश्रम वृथा हुआ। मेरा यह शरीर केवल भूमि का भार है। मैं मन्द भाग्य इस दुःख को नहीं सह सकता। क्या करूं

और कहां जाऊं, मैं शरीर त्यागता हूं, तब यह अनादर का दुःख निवृत्त होगा।

यह कहकर हनुमान्‌जी रामचन्द्रजीके चरणों पर गिर पड़े। तब उनका दुःख निवृत्त करने के लिये हँसकर रामचन्द्रजी कहने लगे। हे हनुमन्! हम अपना और पराया सब व्यवहार जानते हैं। अपने कर्म से ही सब जीव उत्पन्न होते हैं और मरते हैं। अपने कर्मों से ही जीव नरक को जाते हैं और परमात्मा निर्गुण है। हे हनुमन्! इस प्रकार तत्त्व का निश्चयकर शोक को त्याग दे। लिङ्गत्रय से मुक्त, निराश्रय, निराकार, निरञ्जन, ज्योतिःस्वरूप आत्मा को देख। तत्त्वज्ञान के बाधक शोक को मत कर। सदा तत्त्वज्ञान में निष्ठा रख, स्वयंप्रकाश आत्मा का सदा ध्यान कर, देह में ममता छोड़ धर्म को भज, हिंसा को त्याग, साधु पुरुषों का सेवनकर, इन्द्रियों को जीत, परनिन्दा को छोड़, शिव, विष्णु आदि देवताओं का सदा पूजनकर, सत्य बोल, शोक का त्याग कर, प्रत्यक् ब्रह्म की एकता जान, भले बुरे की भ्रान्ति छोड़।

पदार्थों को उत्तम जानने से उनमें राग उत्पन्न होता है। पदार्थों को बुरा समझने से द्वेष होता है। राग-द्वेष के वश में होकर जीव अनेक प्रकार के धर्म-अधर्म करते हैं, जिनसे देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्षआदि योनियों में जन्म लेते हैं और स्वर्ग, नरक को जाते हैं। जिस शरीर के स्पर्श से चन्दन, अगुरु, कर्पूर आदि सुगन्ध द्रव्य मलिन हो जाते हैं, वह शरीर क्योंकर उत्तम माना जाय। भक्ष्य भोज्य पदार्थ जिसके संग से विष्ठा हो जाते हैं, उत्तम शीतल जल जिसके संग से मूत्र हो जाता है, वह शरीर किस प्रकार शोभन हो सकता है। श्वेत वस्त्र जिसके संग से मलिन हो जाते हैं, वह शरीर शोभन किस भांति हो।

हे हनुमन्! इस संसारसमुद्र में कोई सुख नहीं है। पहिले जीव जन्म लेकर बालक होता है, पीछे तरुण और वृद्ध होकर मृत्युवश होता है और फिर जन्म लेता है। अज्ञान से जीव दुःख भोगता है और ज्ञान से सुख पाता है।

अज्ञान का नाश कर्म से नहीं होता, केवल ज्ञान से होता है। ज्ञान भी वेदान्तवाक्यों द्वारा विरक्त-पुरुष को होता है और को नहीं हो सकता। ज्ञान के अधिकारी को गुरुकृपा से ही ज्ञान प्राप्त होता है। जिस मनुष्य के हृदय से सब संकल्प निवृत्त हो जायँ, वह परब्रह्म को पाता है और जीवन्मुक्त होता है। जागते, सोते, बैठते, चलते, भोजन करते सब अवस्थाओं में काल, जीवों का ग्रास करता है। सब संग्रहों का अंत क्षय है। सब उच्चता का अन्त गिरना है तथा सब समागमों का अन्त वियोग है। इसी प्रकार जीवन का अन्त मरण है। जिस प्रकार पके हुये फलों को गिरने का भय होता है, उसी प्रकार जीवोंको मरण का भय है। जिस प्रकार बहुत दृढ़ घर कुछ काल में जीर्ण होकर गिर जाता है, उसी प्रकार शरीर भी जीर्ण होकर मृत्युवश होता है।

हे हनुमन्! दिन राति व्यतीत होने से मनुष्यों की आयुर्दाय नित्य बीतती चली जाती है, इसलिये आत्मा का शोच कर, बातों का क्या शोच करता है? बैठे रहो, चाहे दौड़ते फिरो, आयुर्दाय तो क्षीण होती ही है। मृत्यु जीवों के साथ ही चलता है, साथ ही बैठता है। दूर देश को जावो, तो भी साथ ही जाता है। शरीर में बलि पड़जाती है, शिर के बाल श्वेत हो जाते हैं, वृद्धावस्था में श्वास, कास आदि अनेक रोग शरीर को जीर्ण कर डालते हैं। जिस प्रकार समुद्र में अनेक काष्ठ इकट्ठे होजाते हैं और फिर इधर-उधर बिखर जाते हैं, इसी प्रकार संसार में पुत्र, स्त्री, धन, बन्धु, गृह, क्षेत्र आदि पदार्थ इकट्ठे होजाते हैं और फिर चले भी जाते हैं।

जिस भांति मार्ग में कई पथिक साथ होजाते हैं और थोड़ी दूर साथ चलकर अपने अपने रास्ते लगते हैं, इसी प्रकार पुत्र, स्त्री आदि का समागम है। शरीर के साथ ही मृत्यु भी नियत किया जाता है। मृत्यु से बचने का कोई उपाय नहीं है। जीव कर्म के वश होकर एक शरीर को त्याग कर दूसरे को धारता है। प्राणियों का वास एक स्थान में कभी नहीं रह सकता है, सब

अपने अपने कर्मवश से वियोग को प्राप्त होतेहैं। शरीर के ही जन्म-मरण होते हैं, आत्मा के नहीं होते। आत्मा सदा निर्विकार है, इसलिये हे कपीश्वर! सद्रूप निर्मलब्रह्म का चिन्तन कर। तेरे किये और हमारे किये कर्म में कुछ भेद मत समझ। हमने जो लिङ्ग स्थापन किया, उसको तू अपने लाये लिङ्ग का स्थापन समझ। तेरे आगमन में विलम्ब होने से, हमने सीता का बनाया बालू का लिङ्ग स्थापन कर दिया। इसमें तू कुछ दुःख और शोक मत कर।

हे हनुमन्! कैलास से लाये हुये लिङ्ग को तू स्थापन कर। यह लिङ्ग तीन लोक में तेरे नाम से प्रसिद्ध होगा। प्रथम तेरे स्थापन किये लिङ्ग का दर्शन करके सब मनुष्य रामेश्वर का दर्शन करेंगे। तूने बहुत से ब्रह्मराक्षस मारे हैं, उस पाप की निवृत्ति के लिये अपने नाम से इस लिङ्ग को स्थापन कर। जो साक्षात् शिवजी के दिये हुए इस लिङ्ग का दर्शन कर, रामेश्वर का दर्शन करेंगे, वे कृतकृत्य होंगे। जो दूर देश में रहकर भी

इन दोनों लिङ्गों का स्मरण करेंगे, वे सायुज्यमुक्ति पावेंगे। जो पुरुष हनुमदीश्वर और रामेश्वर का दर्शन करेंगे, वे सब यज्ञ और तप का फल पावेंगे। हमने, सीता ने, लक्ष्मण ने, तैंने, सुग्रीव ने, नलने, नील ने, जाम्बवान् ने, विभीषण ने, इन्द्रादि देवताओं ने और शेषनागादि नागों ने, जो लिङ्ग स्थापन किये इन ग्यारह लिङ्गों में सदा सदाशिव का सन्निधान रहेगा। तू भी अपने पापकी शुद्धि के लिये लिङ्ग स्थापन कर। जो तू हमारे स्थापन किये हुए लिङ्गको उखाड़ सके, तो हम तेरे लाये लिङ्गको स्थापन करें, परन्तु हमारे स्थापन किये हुए लिङ्गको कौन उखाड़ सकताहै। इसलिङ्गकी जड़ सातों पाताल भेदन कर नीचे चलीगई है। तू अपने लाये हुए लिङ्गको शीघ्र स्थापन कर, शोक मत कर। रामचन्द्रजी का यह वचन सुनकर हनुमान्जी ने विचार किया कि इस बालू के लिङ्ग को उखाड़ देना क्या बड़ी बातहै, इसलिये इसको उखाड़कर अभी अपने लायेहुए लिङ्गको स्थापन करता हूं। हनुमान्जी ने मन में यह विचारकर

सब देवता, मुनि, वानर आदि और रामचन्द्र, लक्ष्मण, सीताजी के देखते २ दोनों हाथों से उस लिङ्ग को पकड़ा और उखाड़ने के लिये बहुत बल किया, परन्तु वह लिङ्ग न हिला। तब किलाकिला शब्द करके और पूँछ को भूमि में पटककर सब बल लगाया, तो भी वह लिङ्ग न हिला। फिर पूंछ में लिङ्ग को लपेट और दोनों हाथ भूमि पर रख कर आकाश को हनुमान्जी उछले। तब सातों द्वीपों सहित पृथ्वी कांप उठी, परन्तु लिङ्ग नहीं उखड़ा और हनुमान्जी की पूँछ लिङ्ग से छूट गई, इसलिये वे एक कोस पर जाकर गिरे और उनके आंख, नाक, कान, मुख और गुदा से ऐसा रुधिर बहा कि उस रुधिर से एक रक्तकुण्ड बन गया। हनुमान्जी को इसप्रकार गिरे देखकर सबजगत्में हाहाकार हुआ और रामचन्द्रजी लक्ष्मण, सीता और वानरों सहित दौड़कर हनुमान्जी के समीप गये। उस समय गन्धमादन-पर्वत में राम लक्ष्मण ऐसे शोभित थे, मानो रात के समय तारागणों से युक्त सूर्य और चन्द्रमा

शोभित हों। उन्होंने जाकर हनुमान्जीको देखा कि मूर्च्छित हुये पड़े हैं और मुख से रुधिर बहता है, शरीर चूर्ण होगया है। उनको देखकर सब वानर हाहाकार कर मूर्च्छित हुये। सीता ने अपने हाथ से हनुमान्जी को स्पर्शकिया और रामचन्द्रजी हनुमान् को अपनी गोद में सुला कर अश्रुपात करते हुये हनुमान्जी के अङ्गों पर हाथ फेरने लगे।

पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त।

छियालीसवाँ अध्याय।

हनुमान्जी को रामचन्द्रजी ने जिस प्रकार आश्वासन किया, उसका वर्णन और हनुमान्जी का बनाया रामस्तोत्र और सीतास्तोत्र, हनुमत्कुण्ड तथा हनुमदीश्वर महादेव का माहात्म्य वर्णन।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! रामचन्द्रजी कहने लगे, हे हनुमन्! पम्पासर के तट पर हम दीनदशा को प्राप्त हो रहे थे, उस समय तूने हमारा आश्वासन किया और सुग्रीव से मित्रता कराई। तुझे देखकर हम अपने माता पिता का भी स्मरण नहीं करते हैं, क्योंकि तूने

हमारे ऊपर अनेक उपकार किये और हमारे प्रयोजन के लिये समुद्र पारकर मैनाकपर्वत को तलप्रहार किया और नागों की माता सुरसा को जीता तथा छाया ग्रहण करनेवाली महाक्रूरा राक्षसी को मारा। सायंकालके समय सुवेलपर्वत पर पहुँच कर, लङ्का को जीतकर रावण के महल में गया और निर्भय होकर सारी रात लङ्का में सीता को ढूँढतारहा, परन्तु कहीं भी सीता को न देखा, तब अशोकवाटिका में गया। वहाँ सीताको सन्देश देकर और हमारे लिये सीता से चूड़ामणि लेकर, अशोकवाटिका के वृक्षों को तोड़ा और अस्सीसहस्र किन्नर नाम राक्षसों को हमारे अर्थ मारा, जो राक्षस अतिबली थे। फिर प्रहस्त के पुत्र जम्बुमाली को, सात मन्त्रिपुत्रों को, पांच सेनापतियों को और रावण के पुत्र अक्ष को तूने युद्ध में मारा। तब इन्द्रजित् तुझे बांधकर रावण की सभा में लेगया। वहां तूने रावण का अतिअनादर किया और लङ्कापुरीको भस्मकरके फिर ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचा। हे हनुमन्!

हमारे अर्थ तूने बहुत क्लेश भोगे, अब तू भूमि पर गिरा है, इसलिये हमको बहुत शोक है। हे हनुमन्! जो तू मरजायगा, तो हम भी अभी प्राण त्यागेंगे। फिर हमको सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न तथा राज्य से कुछ प्रयोजन नहीं। हे वत्स! शीघ्र उठकर हमारे भोजन के लिये कन्दमूल, स्नान के लिये जल का कलश और शयन के लिये शय्या बिछाकर मृगचर्म तथा दर्भ हमारे लिये लाओ। ब्रह्मास्त्र से बँधे हुये हमको तूने छुटाया और औषध लाकर लक्ष्मण को जीवित किया। तेरी ही सहायता से मैंने रावण कुम्भकर्ण आदि बड़े बड़े पराक्रमी राक्षसों को मारा और सीता को लाया। हे वायुपुत्र! हे सीता-शोकनाशक! हमको और लक्ष्मण तथा जानकी को अयोध्या में पहुँचाये विना ही क्यों त्याग करता है। इसभाँति हनुमान् का मुख देखते और दीनवचन कहते हुये, रामचन्द्रजी अश्रुपात करने लगे और इतना अश्रुपात किया कि हनुमान् का शरीर आर्द्र हो गया और धीरे धीरे हनुमान्

की भी मूर्च्छा खुली और देखा कि साक्षात् नारायण रावण के भय से लोक रक्षा के अर्थ मनुष्यरूप धारणकर जानकी और लक्ष्मण के सहित वानरों से वेष्टित नीलमेघ के समान जिनका वर्ण, कमल के समान नेत्र, जटामण्डल से शोभित, देवता, ऋषि, पितर आदि से स्तुत, अतिदयालु श्रीरामचन्द्रजी मुझे गोद में लिये बैठे हैं, तब हनुमान्जी उठे और रामचन्द्रजी के चरणकमलों को प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर भक्ति से स्तुति करने लगे ।

हनुमानुवाच ॥ नमो रामाय हरये विष्णवे प्रभविष्णवे ॥ आदिदेवाय देवाय पुराणाय गदाभृते ॥ १ ॥ विष्टरे पुष्पके नित्यं निविष्टाय महात्मने ॥ प्रहृष्टवानरानीकजुष्टपादाम्बुजाय ते ॥ २ ॥ निष्पिष्टराक्षसेन्द्राय जगदिष्टविधायिने ॥ नमः सहस्रशिरसे सहस्रचरणाय च ॥ ३ ॥ सहस्राक्षाय शुद्धाय राघवाय च विष्णवे ॥ भक्तार्तिहारिणे तुभ्यं सीतायाः पतये नमः ॥ ४ ॥ हरये नारसिंहाय दैत्यराजविदारणे ॥ नमस्तुभ्यं वराहाय दंष्ट्रोद्धृतवसुंधर ॥ ५ ॥ त्रिविक्रमाय भवते बलियज्ञविभेदिने ॥ नमो वामनरूपाय महामन्दरधारिणे ॥ ६ ॥ नमस्ते मत्स्यरूपाय त्रयीपालनकारिणे ॥ नमः परशुरामाय

क्षत्रियान्तकराय ते ॥ ७ ॥ नमस्ते राक्षसघ्नाय नमो राघवरूपिणे ॥ महादेवमहाभीममहाकोदण्डभेदिने ॥ ८ ॥ क्षत्रियान्तकरक्रूरभार्गवत्रासकारिणे ॥ नमोऽस्त्वहल्यासंतापहारिणे चापहारिणे ॥ ९ ॥ नागायुतबलोपेतताटकादेहदारिणे ॥ शिलाकठिनविस्तारबालिवक्षोविभेदिने ॥ १० ॥ नमो मायामृगोन्मादकारिणे ज्ञानहारिणे ॥ दशस्यन्दनदुःखाब्धिशोषणागस्त्यरूपिणे ॥ ११ ॥ अनेकोर्मिसमाधूतसमुद्रमदहारिणे ॥ मैथिलीमानसाम्भोजभानवे लोकसाक्षिणे ॥ १२ ॥ राजेन्द्राय नमस्तुभ्यं जानकीपतये हरे ॥ तारकब्रह्मणे तुभ्यं नमो राजीवलोचन ॥ १३ ॥ रामाय रामचन्द्राय वरेण्याय सुखात्मने ॥ विश्वामित्रप्रियायेदं नमः खरविदारिणे ॥ १४ ॥ प्रसीद देवदेवेश भक्तानामभयप्रद ॥ रक्ष मां करुणासिन्धो रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥ १५ ॥ रक्ष मां वेदवचसामप्यगोचर राघव ॥ पाहि मां कृपया राम शरणं त्वामुपैम्यहम् ॥ १६ ॥ रघुवीर महामोहमपाकुरु ममाधुना ॥ स्नाने चाचमने भुक्तौ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ॥ १७ ॥ सर्वावस्थासु सर्वत्र पाहि मां रघुनन्दन ॥ महिमानन्तव स्तोतुं कः समर्थो जगत्त्रये ॥ १८ ॥ त्वमेव त्वं महत्त्वं वै जानासि रघुनन्दन ॥

इस प्रकार रामचन्द्रजी की स्तुति करके हनुमान्जी सीताजी की स्तुति करने लगे ।

हनुमानुवाच ॥ जानकि त्वां नमस्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ दारिद्र्यदुःखसंहर्त्रीं भक्तानामिष्टदायिनीम् ॥ १ ॥ विदेहराजतनयां राघवानन्दकारिणीम् ॥ भूमेर्दुहितरं विद्यां नमामि प्रकृतिं शिवाम् ॥ २ ॥ पौलस्त्यैश्वर्यसंहर्त्रीं भक्ताभीष्टां सरस्वतीम् ॥ पतिव्रताधुरीणां त्वां नमामि जनकात्मजाम् ॥ ३ ॥ अनुग्रहपरामृद्धिमनघां हरिवल्लभाम् ॥ आत्मविद्यात्रयी रूपामुमारूपां नमाम्यहम् ॥ ४ ॥ प्रासादाभिमुखां लक्ष्मीं क्षीराब्धितनयां शुभाम् ॥ नमामि चन्द्रभगिनीं सीतां सर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥ ५ ॥ नमामि धर्मनिलयां करुणां वेदमातरम् ॥ पद्मालयां पद्महस्तां विष्णुवक्षस्स्थलालयाम् ॥ ६ ॥ नमामि चन्द्रनिलयां सीतां चन्द्रनिभाननाम् ॥ आह्लादरूपिणीं सिद्धिं शिवां शिवकरीं सतीम् ॥ ७ ॥ नमामि विश्वजननीं रामचन्द्रेष्टवल्लभाम् ॥ सीतां सर्वानवद्याङ्गीं भजामि सततं हृदा ॥ ८ ॥

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! इस प्रकार भक्ति से हनुमान्‌जी सीता और रामचन्द्रजी की स्तुतिकर, आनन्द से अश्रुपात करते हुए मौन होगये। हनुमान्‌जी के किये इन दोनों स्तोत्रों को जो पुरुष भक्ति से पढ़े, वह बड़ा ऐश्वर्य पाता है। इस स्तोत्र के पाठ से धन, धान्य, क्षेत्र, दूध देनेवाली गौ, आयुर्दाय, विद्या, पुत्र, उत्तम स्त्री

और सद्गति प्राप्त होती हैं। इस स्तोत्र के पाठ से ब्रह्महत्या आदि पाप निवृत्त होते हैं। नरक का भय नहीं होता। देहान्त होने पर मुक्ति मिलती है। रामचन्द्रजी हनुमान्‌जी की की हुई स्तुति सुनकर प्रसन्न होकर कहने लगे, हे वायुपुत्र ! तुमने अज्ञान से यह साहस किया। इस लिङ्ग को ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवता भी नहीं उखाड़ सकते। महादेवजी की अवज्ञा करने से तुम मूर्च्छितहोकर गिरे। फिर कभी सदाशिव से द्रोह मतकरना। आज से लेकर यह कुण्ड तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध होगा। इस कुण्ड में स्नान करने से महापातकों का नाश होगा।

महादेवजी की जटा से गोदावरी नदी निकली है, उसमें स्नान करने से हज़ार अश्वमेध का फल होता है। उससे सौगुणा अधिक पुण्य सरस्वती यमुना और गङ्गा में स्नान करने से होता है। जहां ये तीनों मिली हैं अर्थात् प्रयाग में वहां स्नान करने से सहस्रगण पुण्य होता है। उतना ही पुण्य इस तुम्हारे कुण्ड में

स्नान करने से प्राप्त होगा। मनुष्यजन्म पाकर हनुमत्कुण्ड के तट पर जो पुरुष श्राद्ध न करे, उसके पितर निराश होकर जाते हैं और उस पुरुष पर देवता, ऋषि और पितरों का कोप होता है। हनुमत्कुण्ड के तट पर जो हवन और दान न करे, उसका जीवन वृथा है और वह दोनों लोकों में दुःख पाता है। जो पुरुष हनुमत्कुण्ड के तट पर जल और तिलों से पितरों का तर्पण करे, उसके पितर आनन्द को प्राप्त होते हैं और घृतकुल्या पीते हैं।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! रामचन्द्रजी का यह वचन सुनकर और उनकी आज्ञा पाकर रामेश्वर के उत्तरभाग में हनुमान्जी का लाया हुआ लिङ्ग स्थापन किया। रामेश्वरलिङ्ग में हनुमान्जी की पूँछ लपेटने के तीन चिह्न अद्यापि देख पड़ते हैं। सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! जिसप्रकार रामचन्द्रजी ने रामेश्वर का स्थापन किया, वह हमने वर्णन किया। जो पुरुष इस अध्याय को पढ़े अथवा सुने, वह सब पापों से छूटकर शिवलोक को जाता है।

छियालीसवाँ अध्याय समाप्त।

सैंतालीसवाँ अध्याय।

रावण के जन्म आदि का वर्णन और रामचन्द्रजी को रावण के वध करने से ब्रह्महत्या लगने का वर्णन।

शौनक आदि ऋषि पूछते हैं, हे सूतजी! रावण राक्षस के मारने से रामचन्द्रजी को ब्रह्महत्या क्यों लगी। ब्रह्महत्या तो ब्राह्मण के वध करने से लगती है। रावण तो ब्राह्मण था ही नहीं फिर किसप्रकार उसके वध से रामचन्द्रजी को हत्या लगी, यह आप वर्णन करें। तब सूतजी कहने लगे हे मुनिवर्य! ब्रह्माजी के पुत्र पुलस्त्य और पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा हुये। विश्रवामुनि ने बहुत काल अतिदुष्कर तप किया। उस काल में बड़ा पराक्रमी सुमाली नाम का एक दैत्य अतिरूपवती अपनी कन्या को साथ लिये हुए, पाताल से आकर, भूमि पर बिचरता था। उसने विश्रवा के पुत्र कुबेर को पुष्पक विमान में बैठे देखा और मन में विचार किया यदि ऐसा भाग्यशाली पुत्र हमारे भी हो, तो हमारी वृद्धि सब प्रकार से हो। यह मन में

विचारकर अपनी पुत्री कैकसी से कहा, हे पुत्रि! अब तू युवावस्था में प्राप्त हुई, इसलिये तेरा विवाह होना चाहिये। तरुणकन्या का विवाह न करने से माता, पिता दुर्गति को प्राप्त होते हैं। प्रत्याख्यान के भय से तुझे कोई नहीं मांगता। कौन वर तुझे वरेगा, यह मैं नहीं जानता। अब तू ब्रह्माजी के पौत्र और पुलस्त्यमुनि के पुत्र विश्रवामुनि को आप जाकर वर ले, जिससे कुबेर के तुल्य पुत्र तेरे भी हो।

पिता का यह वचन सुनकर कैकसी विश्रवामुनि की कुटी में गई और लज्जा से मुख नीचे कर बैठ गई। उस सन्ध्याकाल में विश्रवामुनि अग्निहोत्र करते थे। उन्होंने अतिरूपवती कैकसी को देखकर पूछा, हे भद्रे! तू किसकी पुत्री है और किस कार्य के लिये यहां आई है। यह सब यथार्थ कह? तब कैकसी बड़ी विनय से हाथ जोड़ नम्र होकर कहने लगी, हे महाराज! आप तप के प्रभाव से मेरा सब अभिप्राय जानते हैं। मैं सुमाली दैत्य की कन्या कैकसी हूँ, पिता

की आज्ञा से आपके समीप आई हूँ और मेरा अभिप्राय आप जान लेवें। कैकसी का यह वचन सुनकर क्षणमात्र ध्यानकर, विश्रवामुनि ने कहा, हे कैकसि! तेरा अभिप्राय हमने जाना। तू पुत्र के लिये हमारे पास आई है, परन्तु तू इस अति दारुण सन्ध्याकाल में हमारे समीप आई, इस लिये तेरे पुत्र अतिक्रूर राक्षस उत्पन्न होंगे।

मुनि का यह वचन सुनकर फिर कैकसी ने विनय से प्रार्थना की, हे महाराज! आपके संग से तो ऐसे पुत्र न उत्पन्न होने चाहिये। तब फिर मुनि ने कहा कि अच्छा, सबसे पिछला पुत्र हमारे वंश के योग्य धर्मात्मा और शास्त्रवेत्ता होगा। मुनि का यह वचन सुनकर प्रसन्न होकर कैकसी वहां रही और कुछ काल के अनन्तर उसके एक अतिभयंकर पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसके दश शिर, बीस भुजा, बड़ी दाढ़, लालरंग के केश, अति कृष्ण वर्ण और बड़ा शरीर था। उसका नाम विश्रवामुनि ने रावण रक्खा फिर कुम्भकर्ण उत्पन्न हुआ। वह रावण

से भी अधिक क्रूर था। पीछे शूर्पणखा नाम की एक अतिक्रूरा राक्षसी कैकसी के गर्भ से उत्पन्न हुई। सबके पीछे बड़ा धार्मिक और शास्त्रवेत्ता विभीषण नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

रावण कुम्भकर्ण आदि विश्रवामुनि के पुत्र थे, इसलिये उनके मारने से रामचन्द्रजी को ब्रह्महत्या लगी। उस हत्या की निवृत्ति के लिये रामचन्द्रजी ने वैदिकविधान से रामेश्वर का स्थापन किया। रामचन्द्रजी ने भी रामेश्वरलिङ्ग को स्थापन कर, अपने को कृतार्थ माना। जहां रामचन्द्रजी की ब्रह्महत्या निवृत्त हुई, वहां ब्रह्म-हत्याविमोचन नामक तीर्थ हुआ। वहां स्नान करने से ब्रह्महत्या निवृत्त होती है। उस तीर्थ के समीप छायारूप रावण अब तक देख पड़ता है। उसके आगे एक नागलोक का बिल है। रामचन्द्रजीने उस हत्या को नागलोक के बिल में प्रवेश करा दिया और उस बिल पर मण्डप बनाकर भैरव को स्थापित किया। भैरव के भयसे ब्रह्महत्या बिलके बाहर न निकल सकी, निरुद्यम

होकर बैठ गई। रामेश्वरलिङ्ग के दक्षिण भाग में पार्वतीजी हैं। लिङ्ग के दोनों ओर सूर्य और चन्द्र हैं। सम्मुखभाग में अग्नि निवास करता है। आठो दिक्पाल अपनी २ दिशा में रामनाथ के सेवन के लिये स्थित हैं। गणपति कार्तिकेय और वीरभद्र आदि गण रामेश्वर के आसपास विद्यमान हैं।

रामेश्वर की सेवा के लिये सब देवता, मुनि, नाग, सिद्ध, गन्धर्व, अप्सरा आदि भक्तिपूर्वक वहां निवास करते हैं। बहुत से वेदवेत्ता ब्राह्मण रामचन्द्रजी ने रामेश्वर का पूजन करने के लिये वहां नियुक्त किये हैं। उन ब्राह्मणों का भोजन, वस्त्र, दक्षिणा आदि से अवश्य पूजन करना चाहिये। उन ब्राह्मणों के प्रसन्न होने से देवता मुनि और पितर सन्तुष्ट होते हैं। रामचन्द्रजी ने उन ब्राह्मणों को बहुत से ग्राम दिये। रामचन्द्र जी ने रामेश्वर के भोग के लिये बहुत सा धन और हज़ारों ग्राम, भूषण, वस्त्र, रत्न, वाहन आदि दिये। सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! रामेश्वर

का प्रभाव कहां तक वर्णन करें। गङ्गा यमुना भी अपना पाप निवृत्त करनेके अर्थ निरन्तर जिनका सेवन करती हैं। जो पुरुष इस अध्याय को भक्ति से पढ़े अथवा सुने वह विष्णुसायुज्य पाता है।

सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त।

अड़तालीसवाँ अध्याय।

पाण्ड्यदेश के शङ्करनाम राजा और शाकल्यमुनि की कथा तथा रामेश्वर प्रशंसा।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! रामनाथ के प्रभाव की एक कथा हम वर्णन करते हैं, जिसके श्रवण करनेसे सब पातक दूर होजाते हैं। पूर्वकाल में पाण्ड्य देश का एक शङ्कर नाम राजा हुआ है। वह बड़ा धार्मिक, ब्रह्मण्य यज्ञ करनेवाला सत्यप्रतिज्ञ, वेदवेदाङ्ग जाननेवाला, वैदिकधर्म में तत्पर, चारोंवर्ण और आश्रमों की रक्षा में सावधान, शिव, विष्णु आदि देवताओं का पूजक और बड़ा दानी था। वह एक दिन व्याघ्र, महिष, सूकर आदि जीवों से भरे वन में मृगया खेलनेगया और सेनासहित वन में जाकर मृगों

को मारने लगा। सेना के मनुष्य भी सिंह आदि जीवों को मारते थे।

उसी वन में गुफाके बीच एक शान्तचित्त मुनि, व्याघ्रचर्म ओढ़ समाधि लगाये हुए बैठे थे और उनकी पत्नी भी सेवा के लिये मुनि के समीप थी। राजा ने जाना कि कोई व्याघ्र गुफा में बैठा है, यह जानकर एक बाण ऐसा मारा कि मुनि और मुनिपत्नी की देह में पार होगया। तब उनका एक बालक था, वह विलाप करने लगा, हे मातः! हे पितः! मुझ को छोड़कर तुम कहां गये। मैं किसकी शरण जाऊँ, मुझे कौन पढ़ावेगा, भोजन कौन देगा, आचार कौन सिखावेगा और हे मातः! तेरी भांति मेरा लालन कौन करेगा, किस दुष्ट ने विना अपराध तुमको मार दिया, इस प्रकार ऊंचे स्वर से विलाप करने लगा।

राजा उसका शब्द सुनकर वहां गया और सब मुनि वहां आकर एकत्र हुये। मुनिवरों ने देखा कि मुनि और मुनिपत्नी मरे पड़े हैं और

बालक विलाप कर रहा है । तब सब उसका अश्वासन करने लगे, हे बालक! धनवान्, दरिद्री, मूर्ख, पण्डित, पुष्ट, कृश, दुर्जन, सज्जन आदि चाहे जैसा पुरुष हो, मृत्यु से कोई नहीं बचता। वन, पर्वत, नगर, ग्राम आदि किसी स्थल में रहो, वहीं मृत्यु जा पहुँचती है । हे वत्स! गर्भ में स्थित कोई मृत्युवश होते हैं, कोई जन्मते ही मर जाते हैं । कितने बाल्यावस्था में मृतक होते हैं। कोई तरुण होकर और कोई वृद्ध होकर यमलोक को जाते हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और यति सब मृत्यु के वश होते हैं, कोई बच नहीं सकता । ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता, गन्धर्व, नाग, राक्षस और भी सब जीव विलय होजाते हैं, इसलिये हे बालक! तू माता-पिता के मरने से शोक मत कर । एक सच्चिदानन्द परब्रह्म का जन्म-मरण नहीं होता और वह न घटता है न बढ़ता । यह देह नव छिद्रों से युक्त मल का भाण्ड है । रुधिर, पूय, विष्ठा, मूत्र आदि से भरा है । जल बुद्बुद् के तुल्य क्षणभंगुर

है । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मात्सर्य, हिंसा, असूया, अशौच आदि का निवासस्थान है । जो पुरुष इस देह को उत्तम समझें वे मूढ़ और दुर्बुद्धि हैं । अनेक छिद्रों से युक्त यह देह घट के तुल्य है; इसमें प्राणरूप पवन इतने दिन रुका रहा यही आश्चर्य है । हे बालक! तू माता-पिता का शोक मतकर । वे तो अपने कर्म के वश होकर देह को त्याग गये और तू कर्म वश से यहां विद्यमान है । जब तेरे कर्म क्षय होंगे, तब तू भी मृत्यु के वश होगा । जिस काल में तेरे माता-पिता उत्पन्न हुये, उस समय तू नहीं उत्पन्न हुआ था। इसलिये तेरा गमन उनके साथ किस प्रकार हो सकता है । जो तेरी गति उनके तुल्य हो, तो जहां वे गये, वहां तू भी जा सकता है । मृतक पुरुषों के बान्धव जो अश्रुपात करते हैं, वह परलोक में मृतक पुरुषों को पान करने पड़ते हैं। इस कारण रोदन मतकर, धैर्य धर और इनका प्रेतकार्य वैदिकविधान से कर । इन दोनों की मृत्यु बाण लगने से हुई है, इसलिये इनके

अस्थि रामेश्वर क्षेत्र में रामसेतु के समीप डाल। उसी स्थान पर इनका सपिण्डीकरण आदि कर, तब यह अपमृत्युशेष निवृत्त होगा।

मुनियों का यह वचन सुनकर शाकल्यमुनि के पुत्र जाङ्गल ने अपने माता-पिता का पितृमेध किया। दूसरे दिन उनके अस्थि लेकर हालास्य-क्षेत्र में पहुँचा और कुछ दिन में रामेश्वरक्षेत्र में जा पहुँचा। वहां रामसेतु के समीप माता-पिता के अस्थि डाले और एक वर्ष वहां रहकर सब कृत्य किया। वर्ष समाप्ति में मुनि पुत्र ने स्वप्न देखा कि उसके माता-पिता चतुर्भुज होकर शंख, चक्र, गदा, पद्म धारे, गरुड़ पर चढ़े, तुलसी की माला और कौस्तुभमणि से भूषित, देख पड़े। उनको देखकर मुनि पुत्र बहुत प्रसन्न हुआ और अपने आश्रम में पहुँच कर सब वृत्तान्त उन मुनीश्वरों से कहा। मुनि भी सुनकर प्रसन्न हुये, परन्तु सब ने राजा शङ्कर से कहा, हे पाण्ड्य देश के राजन्! तूने क्रूरता और मूर्खता से स्त्रीहत्या और ब्राह्मणहत्या की। इसलिये तू

अग्नि में प्रवेशकर और किसी प्रकार से तेरी शुद्धि नहीं, चाहे जितने प्रायश्चित्त कर। तेरे सम्भाषण से हजारों ब्रह्महत्या लगती हैं, इस-लिये हे दुष्ट! तू हमारे आगे से चला जा।

मुनियों का यह वचन सुनकर राजा बोला, हे मुनिवर्य! आप मुझपर अनुग्रह करो। मैं अभी अग्नि में प्रवेश करता हूं। इतना कहकर राजा ने अपने मन्त्रियों को बुलाकर कहा, हे मन्त्रियो! मुझ से ब्रह्महत्या और स्त्रीहत्या अज्ञान से बन पड़ी, उसकी निवृत्ति के लिये मुनियों की आज्ञा से मैं अग्नि में प्रवेश करूंगा, इसलिये काष्ठ लाकर मुझे चिता बना दो और मेरे पुत्र सुरुचि को गद्दी पर बैठा दो। इस बात का कुछ शोक मत करो, दैव बलवान् है। राजा का यह वचन सुनकर मन्त्री रोदन करनेलगे और बोले, हे महाराज! आपने हम को पुत्रवत् पालन किया। अब आपके विना हम नगर में प्रवेश न करेंगे। हम भी आपके आगे ही अग्नि में प्रवेश करेंगे। मन्त्रियों का यह वचन सुनकर राजा ने कहा,

हे मन्त्रियो ! मुझ ऐसे महापानकी के साथ दग्ध होना उचित नहीं, मैं अब राजसिंहासन के योग्य नहीं । अब तुम सुमति को सिंहासन पर बैठा कर उसकी सेवा में रहो और मेरेलिये शीघ्र ही चिता बना दो, विलम्ब मत करो। राजा की यह दृढ़ आज्ञा पाकर मन्त्रियों ने चिता बनाकर अग्नि प्रज्वलित की ।

राजा ने अग्नि को प्रज्वलित देखकर स्नान किया और अग्नि तथा मुनिवरों की प्रदक्षिणा कर, हृदय में साम्ब सदाशिव का ध्यान करता हुआ राजा अग्नि में प्रवेश करने लगा । तब आकाशवाणी हुई, हे राजन् ! अग्नि में प्रवेश मत कर । ब्रह्महत्या निवृत्ति के हेतु मैं तुझे एक उपाय बताता हूं, सावधान होकर सुन । दक्षिण समुद्र के तट पर गन्धमादनपर्वत में रामचन्द्रजी के स्थापन किये रामेश्वर के लिङ्ग का एक वर्ष पर्यन्त तीन काल सेवन कर । प्रद- क्षिणा, नमस्कार, महाभिषेक आदि कर। भांति भांति के नैवेद्य लगाकर चन्दन, अगरु, कर्पूर

आदि से लिङ्ग का पूजन कर । दोभार गोघृत, दोभार गोदुग्ध और द्रोणभर शहद से नित्य रामेश्वर का अभिषेक कर । पायस का नैवेद्य लगाकर और तिलतैल से नित्य दीपक प्रज्व- लित कर । इस प्रकार रामेश्वर का सेवन करने से स्त्रीहत्या और ब्रह्महत्या निवृत्त हो जा- यगी। रामेश्वर का दर्शन करने से सौभ्रूणहत्या और सुरापान, सुवर्णस्तेय, गुरुस्त्रीगमन, ब्रह्म- हत्या आदि हजारों महापातक तत्क्षण निवृत्त होजाते हैं। रामेश्वर की सेवा यदि बनपड़े, तो गया प्रयाग आदि तीर्थों से कुछ प्रयोजन नहीं, इसलिये हे राजन् ! शीघ्र जाकर रामनाथ की सेवा कर, विलम्ब मत कर। इतना कह कर आकाशवाणी बन्द होगई ।

सब मुनियों ने राजा से कहा, हे महाराज ! आप शीघ्र रामेश्वर को जावो । हमने रामेश्वर का माहात्म्य विना जाने आपको यह प्राय- श्चित्त बतलाया । मुनियों का यह वचन सुन- कर, प्रसन्न होकर, थोड़ी सी सेना साथ लेकर

राजा रामेश्वर को चला । वहां पहुँचकर जितेन्द्रिय और जितक्रोध होकर, एकबार भोजन का नियम कर, तीनकाल रामेश्वर का सेवन करने लगा । दशभार सुवर्ण रामनाथ को अर्पण किया । नित्य रामेश्वर का महापूजन करता और नियम से धनुष्कोटि में स्नानकर ब्राह्मणों को दान देता था । इसप्रकार आकाशवाणी की आज्ञानुसार एक वर्ष पर्यन्त राजा ने उग्र तप किया । वर्ष के अन्त में भक्तिपूर्वक राजा शङ्करजी की स्तुति करनेलगा ।

शङ्कर उवाच ॥ नमामि रुद्रमीशानं रामनाथमुमापतिम् ॥ पाहि मां कृपया देव ब्रह्महत्यां दहाशु मे ॥ १ ॥ त्रिपुरघ्न महादेव कालकूटविषादन ॥ रक्ष मां त्वं दयासिन्धो ब्रह्महत्यां विमोचय ॥ २ ॥ गङ्गाधर विरूपाक्ष रामनाथ त्रिलोचन ॥ मां पालय कृपादृष्ट्या छिन्धि मत्पातकं विभो ॥३॥ कामारे कामसंदायिन् भक्तानां राघवेश्वर ॥ कटाक्षं पातय मयि शुद्धं मां कुरु धूर्जटे ॥ ४ ॥ मार्कण्डेय भयत्राण मृत्युञ्जय शिवाव्यय ॥ नमस्ते गिरिजार्धाय निष्पापं कुरु मां सदा ॥ ५ ॥ रुद्राक्षमालाभरण चन्द्रशेखर शङ्कर ॥ वेदोक्त-

सम्यगाचारयोग्यं मां कुरु ते नमः ॥ ६ ॥ सूर्यदन्तभिदे तुभ्यं भारतीनासिकाच्छिदे ॥ रामेश्वराय देवाय नमो मे शुद्धिदो भव ॥ ७ ॥ आनन्दं सच्चिदानन्दं रामनाथं वृषध्वजम् ॥ भूयो भूयो नमस्यामि पातकं मे विनश्यतु ॥ ८ ॥ इति ॥

इस प्रकार स्तुति करते करते राजा के मुख से अति भयंकर ब्रह्महत्या निकली । जिसका नील वस्त्र, रक्तकेश, अतिक्रूर स्वरूप था । उस ब्रह्महत्या को शिवजी की आज्ञा से भैरवजी ने मार दिया और रामेश्वर भगवान् ने प्रसन्न होकर राजा से कहा, हे राजन्! तेरे इस स्तोत्र से हम बहुत प्रसन्न हैं, जो वर चाहे मांग । जो दोष स्त्रीहत्या और ब्रह्महत्या का तुझको लगा था, वह निवृत्त होगया, अब पूर्ववत् राज्य कर । जो पुरुष हमारी सेवा करते हैं, हम उनके ब्रह्महत्या आदि पातक निवृत्त करदेते हैं । हमारे सेवन करनेवाले मनुष्य जन्म-मरण से छूटजाते और अन्त में सायुज्यमुक्ति पाते हैं । जो मनुष्य इस स्तोत्र से हमारी स्तुति करेंगे, उनके सब पातक निवृत्त करदेंगे । हे राजन्! तेरी भक्ति और

स्तुति से हम प्रसन्न हुये, वर मांग। शिवजी की यह आज्ञा पाकर राजा ने प्रार्थना की, हे नाथ! आपके दर्शन से ही मैं कृतार्थ हुआ, अब क्या वर मांगूं। मार्कण्डेय का भय हरनेवाले आपके चरणारविन्द का दर्शन किया, अब और वर नहीं चाहता। आप के चरणों में दृढ़ भक्ति हो और जन्म-मरण से छूटजाऊं। जो मनुष्य मेरे किये इस स्तोत्र को पढ़ें, वे आपकी सेवा का फल पाकर सब पापों से छूटें।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! शिवजी ने ये सब वर राजा को दिये और रामनाथलिङ्ग में आप अन्तर्धान हो गए। राजा कृतार्थ होकर रामनाथ को प्रणामकर, अपनी सेना-सहित राजधानी को चला। मार्ग में सब मुनिवरों से यह वृत्तान्त कहा। मुनिवरों ने राजा का अभिषेक किया। राजा अपनी राजधानी में आकर पुत्र और मन्त्रियों-सहित धर्मराज्य करने लगा और बहुत काल तक राज्य कर, अन्त में रामनाथ के सायुज्य को प्राप्त हुआ। हे मुनिवर्य!

राजा का चरित और रामनाथ का प्रभाव हमने वर्णन किया। इस अध्याय को जो भक्ति से पढ़े, अथवा श्रवण करे, वह रामनाथ के सायुज्य को प्राप्त होता है।

अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त।

उंचासवाँ अध्याय।

रामचन्द्र लक्ष्मण आदि के कहे हुए रामेश्वर महादेव के अनेक स्तोत्र।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! अब हम रामनाथ के स्तोत्र वर्णन करते हैं, आप श्रद्धा से श्रवण करो। रामेश्वर का स्थापन कर, रामचन्द्रजी ने, लक्ष्मण ने, सीता ने, सुग्रीव आदि वानरों ने, अगस्त्य आदि ऋषियों ने और ब्रह्मा-आदि देवताओं ने जो स्तुति की है, हम क्रम-पूर्वक कथन करते हैं, जिनके श्रवणमात्र से मनुष्य मुक्त होजाते हैं।

श्रीराम उवाच ॥ नमो महात्मने तुभ्यं महामायाय-शालिने ॥ स्वपदाम्बुजभक्तार्तिहारिणे सर्पहारिणे ॥ १ ॥

नमो देवाधिदेवाय रामनाथाय साक्षिणे ॥ नमो वेदान्तवेद्याय योगिनां तत्त्वदायिने ॥ २ ॥ सर्वदानन्दपूर्णाय विश्वनाथाय शंभवे ॥ नमो भक्तभयच्छेदहेतुपादाब्जरेणवे ॥ ३ ॥ नमस्तेऽखिलनाथाय नमः साक्षात्परात्मने ॥ नमस्तेऽद्भुतवीर्याय महापातकनाशिने ॥ ४ ॥ कालकालाय कालाय कालातीताय ते नमः ॥ नमोऽविद्यानिहन्त्रे ते नमः पापहराय च ॥ ५ ॥ नमः संसारतप्तानां तापनाशैकहेतवे ॥ नमो मद्ब्रह्महत्याविनाशिने च विषाशिने ॥ ६ ॥ नमस्ते पार्वतीनाथ कैलासनिलयाव्यय ॥ गङ्गाधर विरूपाक्ष मां रक्ष सकलापदः ॥ ७ ॥ तुभ्यं पिनाकहस्ताय नमो मदनहारिणे ॥ भूयो भूयो नमस्तुभ्यं सर्वावस्थासु सर्वदा ॥ ८ ॥ इति ॥

यह स्तोत्र रामचन्द्रजीने कहा, अब लक्ष्मणजी का कहा हुआ स्तोत्र कहते हैं।

लक्ष्मण उवाच ॥ नमस्ते रामनाथाय त्रिपुरघ्नाय शंभवे ॥ पार्वतीजीवितेशाय गणेशस्कन्दसूनवे ॥ १ ॥ नमस्ते सूर्यचन्द्राग्निलोचनाय कपर्दिने ॥ नमः शिवाय सोमाय मार्कण्डेयभयच्छिदे ॥ २ ॥ नमः सर्वप्रपञ्चस्य सृष्टिस्थित्यन्तहेतवे ॥ नमः उग्राय भीमाय महादेवाय साक्षिणे ॥ ३ ॥ सर्वज्ञाय वरेण्याय वरदाय वराय ते ॥ श्रीकण्ठाय नमस्तुभ्यं पञ्चपातकभेदिने ॥ ४ ॥ नमस्तेऽस्तु परानन्दसत्यविज्ञान-

रूपिणे ॥ नमस्ते भवरोगघ्न स्तायूनां पतये नमः ॥ ५ ॥ पतये तस्कराणां ते वनानां पतये नमः ॥ गणानां पतये तुभ्यं विश्वरूपाय साक्षिणे ॥ ६ ॥ कर्मणा प्रेरितः शम्भो जनिष्ये यत्र यत्र तु ॥ तत्र तत्र पदद्वन्द्वे भवतो भक्तिरस्तु मे ॥ ७ ॥ असन्मार्गे मतिर्मा भूद्भवतः कृपया मम ॥ वैदिकाचारमार्गे च रतिः स्याद्भवते नमः ॥ ८ ॥ इति ॥

यह स्तुति लक्ष्मणजी ने की अब सीताजी का कहा हुआ स्तोत्र कहते हैं।

सीतोवाच ॥ परमकारण शंकर धूर्जटे गिरिसुतास्तनकुङ्कुमशोभित ॥ मम पतौ परिदेहमतिं सदा नविषमां परपूरुषगोचरा ॥ १ ॥ गङ्गाधर विरूपाक्ष नीललोहित शङ्कर ॥ रामनाथ नमस्तुभ्यं रक्ष मां करुणाकर ॥ २ ॥ नमस्ते देवदेवेश नमस्त करुणालय ॥ नमस्ते भवभीतानां भवभीतिविमर्दन ॥ ३ ॥ नाथ त्वदीयचरणाम्बुजचिन्तनेन निर्धूय भास्करसुताद्भयमाशु शम्भो ॥ नित्यत्वमाशु गतवान्स मृकण्डुपुत्रः किंवा न सिद्ध्यति तवाश्रयणात्परेश ॥ ४ ॥ परेश परमानन्द शरणागतपालक ॥ पातिव्रत्यं मम सदा देहि तुभ्यं नमोनमः ॥ ५ ॥ इति ॥

अब हनुमान् का कहा हुआ स्तोत्र कहते हैं।

देवदेव जगन्नाथ रामनाथ कृपानिधे ॥ त्वत्पादाम्भोरुह-

गता निश्चला भक्तिरस्तु मे ॥ १ ॥ यं विना न जगत्सत्ता तज्ज्ञानमपि नो भवेत् ॥ नमः सज्ज्ञानरूपाय रामनाथाय शंभवे ॥ २ ॥ इति ॥

अब अङ्गद आदि के कहे हुए स्तोत्र कहते हैं।

अङ्गद उवाच ॥ यस्य भासा जगद्भानं यत्प्रकाशं विना जगत् ॥ न भासते नमस्तस्मै रामनाथाय शंभवे ॥ १ ॥ इति ॥ जाम्बवानुवाच ॥ सर्वानन्दस्सदानन्दो भासते परमार्थतः ॥ नमो रामेश्वरायास्मै परमानन्दरूपिणे ॥ १ ॥ इति ॥ नील उवाच ॥ यद्देशकालदिग्भेदैरभिन्नं सर्वदा द्वयम् ॥ तस्मै रामेश्वरायास्मै नमो भिन्नस्वरूपिणे ॥ १ ॥ इति ॥ नल उवाच ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाना यदविद्या विजृम्भिताः ॥ नमोऽविद्याविहीनाय तस्मै रामेश्वराय ते ॥ १ ॥ इति ॥ कुमुद उवाच ॥ यत्स्वरूपापरिज्ञानात्प्रधानं कारणत्वतः ॥ कल्पितं कारणायास्मै रामनाथाय शंभवे ॥ १ ॥ इति ॥ पनस उवाच ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादि यदविद्याविजृम्भितम् ॥ जाग्रदादिविहीनाय नमोऽस्मै ज्ञानरूपिणे ॥ १ ॥ इति ॥ गज उवाच ॥ यत्स्वरूपापरिज्ञानात्कार्याणां परमाणवः ॥ कल्पिताः कारणत्वेन तार्किकापसदैर्वृथा ॥ १ ॥ तमहं परमानन्दं रामनाथं महेश्वरम् ॥ आत्मरूपतया नित्यमुपास्ये सर्वसाक्षिणम् ॥ २ ॥ इति ॥ गवाक्ष उवाच ॥

अज्ञानपाशबद्धानां पशूनां पाशमोचकम् ॥ रामेश्वरं शिवं शान्तमुपैमि शरणं सदा ॥ १ ॥ इति ॥ गवय उवाच ॥ स्वाध्यस्तं जगदाधारं चन्द्रचूडमुमापतिम् ॥ रामनाथं शिवं वन्दे संसारामयभेषजम् ॥ १ ॥ इति ॥ शरभ उवाच ॥ अन्तःकरणमात्मेति यदज्ञानाद्विमोहितैः ॥ भण्यते रामनाथं तमात्मानं प्रणमाम्यहम् ॥ १ ॥ गन्धमादन उवाच ॥ रामनाथमुमानाथं गणनाथं त्रियम्बकम् ॥ सर्वपातकशुद्ध्यर्थमुपास्ये जगदीश्वरम् ॥ १ ॥ इति ॥ सुग्रीव उवाच ॥ संसाराम्भोधिमध्ये मां जन्ममृत्युजलेभये ॥ पुत्रदारधनक्षेत्रवीचिमालासमाकुले ॥ १ ॥ मज्जद्ब्रह्माण्डखण्डे च पतितं नाप्तपारकम् ॥ क्रोशंतमवशं दीनं विषयव्यालकातरम् ॥ २ ॥ व्याधिनक्रसमुद्विग्नतापत्रयझषार्दितम् ॥ मां रक्ष गिरिजानाथ रामनाथ नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥ इति ॥ विभीषण उवाच ॥ संसारवनमध्ये मां विनष्टनिजमार्गके ॥ व्याधिचौरेऽवसिंहे च जन्मव्याघ्रेलयोरगे ॥ १ ॥ बाल्ययौवनवार्द्धक्यमहाभीमान्धकूपके ॥ क्रोधेर्ष्यालोभवह्नौ च विषयक्रूरपर्वते ॥ २ ॥ त्रासभूकण्टकाढ्ये च सीदन्तं मामनाथकम् ॥ शोभनां पदवीं शंभो नय रामेश्वराधुना ॥ ३ ॥ इति ॥ सर्वे वानरा ऊचुः ॥ निन्द्यानिन्द्यासु सर्वत्र जनित्वा योनिषु प्रभो ॥ कुम्भीपाकादिनरके पतित्वा च पुनस्तथा ॥ १ ॥ जनित्वा च पुनर्योनौ

कर्मशेषेण कुत्सिते ॥ संसारे पतितानस्मान् रामनाथ दयानिधे ॥ २ ॥ अनाथान् विवशान्दीनान् क्रोशतः पाहि शङ्कर ॥ नमस्तेऽस्तु दयासिन्धो रामनाथ महेश्वर ॥३॥ इति ॥ ब्रह्मोवाच॥ नमस्ते लोकनाथाय रामनाथाय शम्भवे ॥ प्रसीद मम सर्वेश मदविद्यां विनाशय॥ १ ॥ इति ॥ इन्द्र उवाच॥ यस्य शक्तिरुमादेवी जगन्माता त्रयीमयी ॥ तमहं शङ्करं वन्दे रामनाथमुमापतिम् ॥ १ ॥ इति ॥ यम उवाच ॥ पुत्रौ गणेश्वरस्कन्दौ वृषो यस्य च वाहनम् ॥ तं वै रामेश्वरं सेवे सर्वाज्ञाननिवृत्तये ॥ १ ॥ इति ॥ वरुण उवाच ॥ यस्य पूजाप्रभावेण जितमृत्युर्मृकण्डुजः ॥ मृत्युञ्जयमुपास्येऽहं रामनाथं हृदा तु तम् ॥ १ ॥ इति ॥ कुबेर उवाच ॥ ईश्वराय लसत्कर्णकुण्डलाभरणाय ते ॥ लाक्षारुणशरीराय नमो रामेश्वराय वै ॥१॥ इति ॥ आदित्य उवाच ॥ नमस्तेऽस्तु महादेव रामनाथ त्रियम्बक ॥ दक्षाध्वरविनाशाय नमस्ते पाहि मां शिव ॥ १ ॥ इति ॥ सोम उवाच ॥ नमस्ते भस्मदिग्धाय शूलिने सर्पमालिने ॥ रामनाथ दयाम्भोधे श्मशाननिलयाय ते ॥ १ ॥ इति ॥ अग्निरुवाच ॥ इन्द्राद्यखिलदिग्पालसंसेवितपदाम्बुज ॥ रामनाथाय शुद्धाय नमो दिग्वाससे सदा ॥ १ ॥ इति ॥ वायुरुवाच ॥ हराय हरिरूपाय व्याघ्रचर्माम्बराय च ॥ रामनाथ नमस्तुभ्यं ममाभीष्टप्रदो भव ॥१॥

इति ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ अहंतासाक्षिणे नित्यं प्रत्यगद्वयवस्तुने ॥ रामनाथ ममाज्ञानमाशु नाशय ते नमः ॥ १ ॥ इति ॥ शुक्र उवाच ॥ वञ्चकानामलक्ष्याय महामन्त्रार्थरूपिणे ॥ नमोद्वैतविहीनाय रामनाथाय शम्भवे ॥ १ ॥ इति ॥ अश्विनावूचतुः ॥ आत्मरूपतयानित्यं योगिनां भासते हृदि ॥ अनन्यभावनेद्याय नमस्ते राघवेश्वर ॥ १ ॥ इति ॥ अगस्त्य उवाच ॥ आदिदेव महादेव विश्वेश्वर शिवाव्यय ॥ मम नाथाम्बिकानाथ प्रसीद वृषभध्वज ॥ १ ॥ अपराधसहस्रं मे क्षमस्व परमेश्वर ॥ ममाहमिति पुत्रादावहन्तां मम मोचय ॥ २ ॥ इति ॥ सुतीक्ष्ण उवाच ॥ क्षेत्राणि रत्नानि धनानि दारा मित्राणि वस्त्राणि गजाश्वपुत्राः ॥ नैवोपकाराय हि रामनाथ मह्यं प्रयच्छत्वमतो विरक्तिम् ॥ १ ॥ इति ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ श्रुतानि शास्त्राण्यपि निष्फलानि त्रय्यप्यधीताविफलैवनूनम् ॥ त्वयीश्वरे चेन्न भवेद्धि भक्तिः श्रीरामनाथे शिवमानुषस्य ॥ १ ॥ इति ॥ गालव उवाच ॥ दानानि यज्ञा नियमास्तपांसि गङ्गादितीर्थेषु निमज्जनानि ॥ रामेश्वरं त्वां न नमन्ति ये तु व्यर्थानि तेषामिति निश्चयोऽत्र ॥ १ ॥ वशिष्ठ उवाच ॥ कृत्वापि पापान्यखिलानि लोकस्त्वामेत्य रामेश्वर भक्तियुक्तः ॥ नमेत चेत्तानिलयं व्रजेयुर्यथान्धकारा रवितेजसाद्धा ॥ १ ॥ इति ॥ अत्रिरुवाच ॥

दृष्ट्वा तु रामेश्वर मे कदापि स्पृष्ट्वा नमस्कृत्य भवन्तमीशम् ॥
पुनर्न गर्भं स नरः प्रयायात्किंत्वद्वयं ते लभते स्वरूपम् ॥ १ ॥
इति ॥ अङ्गिरा उवाच ॥ यो रामनाथं मनुजो भवन्तमुपेत्य
बन्धून् प्रणमन् स्मरेत ॥ संतारयेत्तानपि सर्वपापात् किम-
द्भुतन्तस्य कृतार्थतायाम् ॥ १ ॥ इति ॥ गौतम उवाच ॥
श्रीरामनाथेश्वरगूढमेतद्रहस्यभूतं परमं विशोकम् ॥ त्वत्पादमूलं
भजतां नृणां ये सेवां प्रकुर्वन्ति हि तेऽपि धन्याः ॥ १ ॥
शतानन्द उवाच ॥ वेदान्तविज्ञानरहस्यविद्भिर्विज्ञेयमेतद्धि
मुमुक्षुभिस्तु ॥ शास्त्राणि सर्वाणि विहाय देव त्वत्सेवनं
यद्रघुवीरनाथ ॥ १ ॥ इति ॥ भृगुरुवाच ॥ रामनाथ तव पाद-
पङ्कजद्वन्द्वचिन्तनविधूतकल्मषः ॥ निर्भयं व्रजति सत्सुखाद्वयं
त्वां स्वयं प्रभममोघचिद्घनम् ॥ १ ॥ इति ॥ कुत्स उवाच ॥
रामनाथ तव पादसेवनं भोगमोक्षवरदं नृणां सदा ॥ रौरवा-
दिनरकप्रणाशनं कः पुमान्न भजते रसग्रहः ॥ १ ॥ इति ॥
काश्यप उवाच ॥ रामनाथ तव पादसेविनां किं व्रतैरुततपो-
भिरध्वरैः॥वेदशास्त्रजपचिन्तया च किं स्वर्गसिन्धुपयसापि किं
फलम् ॥ १ ॥ श्रीरामनाथ त्वमागत्य शीघ्रं ममोत्क्रान्तिकाले
भवान्या च साकम् ॥ मां प्रापय स्वात्मपदारविन्दं विशोकं
विमोहं सुखं चित्स्वरूपम् ॥ २ ॥ इति ॥ गन्धर्वा ऊचुः ॥
रामनाथत्वमस्माकं भजतां भवसागरे ॥ अपारदुःखकल्लोले

न त्वत्तोऽन्या गतिर्हि नः ॥ १ ॥ इति ॥ किन्नरा ऊचुः ॥
रामनाथ भवारण्यव्याधिव्याघ्रभयानके ॥ त्वामन्तरेण
नास्माकं पदवीदर्शको भवेत् ॥ १ ॥ इति ॥ यक्षा ऊचुः ॥
रामनाथेन्द्रियारातिबाधा नो दुःसहाः सदा ॥ ता विनेतुं
सहायस्त्वमस्माकं भव धूर्जटे ॥ १ ॥ इति ॥ नागा ऊचुः ॥
अचिन्त्यमहिमानं त्वां रामनाथ वयं कथम् ॥ स्तोतुमल्प-
धियः शक्ता भविष्यामोऽम्बिकापते ॥ १ ॥ इति ॥ किंपुरुषा
ऊचुः ॥ नानायोनौ च जननं मरणं चाप्यनेकशः ॥
विनाशाय तथाज्ञानं रामनाथ नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥ इति ॥
विद्याधरा ऊचुः॥अम्बिकापतये तुभ्यमसङ्गाय महात्मने॥ नमस्ते
रामनाथाय प्रसीद वृषभध्वज ॥ १ ॥ इति ॥ वसव ऊचुः ॥
रामनाथ गणेशाय गणवृन्दार्चिताङ्घ्रये ॥ गङ्गाधराय गुह्या-
य नमस्ते पाहि नः सदा ॥ १ ॥ इति ॥ विश्वेदेवा ऊचुः ॥
ज्ञप्तिमात्रैकनिष्ठानां मुक्तिदाय सुयोगिनाम् ॥ रामनाथाय
साम्बाय नमोऽस्मान्रक्ष शङ्कर ॥ १ ॥ इति ॥ मरुत ऊचुः ॥
परतत्त्वाय तत्त्वानां तत्त्वभूताय वस्तुतः ॥ नमस्ते राम-
नाथाय स्वयंभानाय शम्भवे ॥ १ ॥ इति ॥ साध्या ऊचुः ॥
स्वातिरिक्तविहीनाय जगत्सत्ताप्रदायिने ॥ रामेश्वराय देवाय
नमोऽविद्याविभेदिने ॥ १ ॥ इति ॥ सर्वे देवा ऊचुः ॥
सच्चिदानन्दसम्पूर्णाद्वैतवस्तुविवर्जितम् ॥ ब्रह्मात्मानं स्वयं

भानुमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥ १ ॥ इति ॥ अविक्रियमस-
ङ्गश्च परिशुद्धं सनातनम् ॥ आकाशादिप्रपञ्चानां साक्षिभूतं
सनातनम् ॥ २ ॥ प्रमातीतं प्रमाणानामपि बोधप्रदायिनम् ॥
आविर्भावतिरोभावसङ्कोचरहितं सदा ॥ ३ ॥ स्वस्मिन्नध्य-
स्तरूपस्य प्रपञ्चस्यास्य साक्षिणम् ॥ निर्लेपं परमानन्दं
निरस्तसकलक्रियम् ॥ ४ ॥ भूमानन्दं महात्मानं चिद्रूपं
भोगवर्जितम् ॥ रामनाथं वयं सर्वे स्वपातकविशुद्धये ॥ ५ ॥
चिन्तयामः सदा चित्ते स्वात्मानन्दबुभुत्सवः ॥ रक्षास्मा-
न्करुणासिन्धो रामनाथ नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥ रामनाथाय
रुद्राय नमः संसारहारिणे ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिरूपेण विभिन्नाय
स्वमायया ॥ ७ ॥ इति ॥ विभीषणसचिवा ऊचुः ॥ वरदाय
वरेण्याय त्रिनेत्राय त्रिशूलिने ॥ योगिध्येयाय नित्याय
रामनाथाय ते नमः ॥ १ ॥ इति ॥

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! रामचन्द्र लक्ष्मण आदि के मुख से स्तुति सुनकर, प्रसन्न होकर, रामेश्वर प्रभु ने कहा, हे रामचन्द्रजी ! हे लक्ष्मणजी ! हे सीते ! हे सुग्रीव आदि वानरो ! आप सब के कहे हुए इस स्तोत्राध्याय को जो पढ़ें, सुनें और सुनावें, वे सब हमारे

भगवान् श्रीसेतुमाधव का श्रीरामेश्वरजी के ऊपर चढ़ाने के लिए गङ्गाजल का लाना ।

पूजन का फल पावेंगे । धनुष्कोटितीर्थ में स्नान करने का और एक वर्ष पर्यन्त रामसेतु के वास का भी फल प्राप्त होता है । गन्धमादन के सब तीर्थों में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है, वह इस अध्याय के पठन से प्राप्त होगा । इस अध्याय को पठन करनेवाला मनुष्य जन्म, मरण, जरा, रोग आदि के भय से छूटकर हमारे सायुज्य को प्राप्त होगा ।

उञ्चासवाँ अध्याय समाप्त ।

पचासवाँ अध्याय ।

सेतुमाधव के वैभव का वर्णन तथा गुणनिधि राजा और लक्ष्मीजी की अद्भुत कथा ।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! अब हम सब पाप हरनेवाला सेतुमाधव का वैभव वर्णन करते हैं, आप भक्ति से श्रवण करें । पूर्वकाल में चन्द्रवंश में उत्पन्न पुण्यनिधि नाम का एक राजा हालास्येश्वर करके भूषित मथुरापुरी में हुआ है । वह एक समय अपने पुत्र को राज्य सौंप कर चतुरङ्गिणी सेना और अपने अन्तःपुर

समेत स्नान के लिये रामसेतु को चला। वहां पहुँच कर संकल्पपूर्वक धनुष्कोटि में स्नान किया। राजा भी वहां के सब तीर्थों में स्नानकर भक्तिपूर्वक पुण्यनिधि रामेश्वर का सेवन करने लगा। राजा ने वहां पर विष्णुभगवान् की प्रीति के लिये यज्ञ भी किया। यज्ञान्तस्नान धनुष्कोटि में कर और रामेश्वर का पूजन आदि कर, अपनी राजधानी में आकर राज्य करने लगा।

कुछ काल के अनन्तर लक्ष्मी विष्णुभगवान् के साथ विनोद से विवाद कर, राजा की भक्ति-परीक्षा के लिये आठ वर्ष की कन्या बनकर धनुष्कोटितीर्थ पर आकर स्थित होगईं। राजा भी उस अवसर में वहां पर स्नान करने आया था। राजाने स्नानकर, तुलापुरुष आदि सब दान दिये और राजधानी को चलने लगा। तब उस परमसुन्दरी कन्या को देखा और पूछा, हे कन्ये! तू किसकी पुत्री है और हे वत्से! यहां अकेली किस काम के लिये आई है और कहां से आई है? राजा का यह वचन सुनकर

कन्या ने कहा कि मेरे माता पिता बान्धव आदि कोई नहीं है और मैं अनाथा हूं, इसलिये हे महाराज! आपकी पुत्री होकर मैं आपके घर में रहना चाहती हूं परन्तु जो मुझे हठ से आकर्षण करे उसको आप दण्ड देवें। राजा ने कन्या का यह वचन सुनकर कहा, हे पुत्रि! जो तू कहेगी वह सब करूंगा। मेरे भी केवल एक पुत्र है कन्या नहीं है, इसलिये मेरी पुत्री होकर रह। जिस वर में तेरी रुचि होगी उसी को तुझे दे दूंगा। राजा का यह वचन सुनकर प्रसन्न हो कर कन्या राजा के साथ गई। राजा ने अपनी रानी विन्ध्यावली से कहा, हे प्रिये! यह हम दोनों की पुत्री है। इसको अपने समीप रक्खो। सब प्रकार से इसकी रक्षा करना। राजा की यह आज्ञा पाकर रानी ने उस कन्या को अपने समीप रक्खा और पुत्रीकी भांति उसका पालन-पोषण करने लगी।

कुछ समय बीतने पर विष्णुभगवान् गरुड़ पर चढ़ कर लक्ष्मी को ढूंढ़ने के हेतु निकले।

बहुत देशोंमें घूमे, परन्तु कहीं लक्ष्मी न मिलीं तब रामसेतु पर पहुँचे, उसी अवसर में वह कन्या भी अपनी सखियों समेत उपवन में पुष्प बीनने आई थी। विष्णुभगवान् ब्राह्मण का रूप धारण किये, गङ्गाजल की काँवर कन्धे पर रख कर, रुद्राक्ष और विभूति धारण किये शिव नाम जपते वहां आये और उस कन्या को देखा। कन्या उनको देख कर स्तब्ध होगई। ब्राह्मण, रूपधारी विष्णुभगवान् ने उस कन्या का हाथ पकड़कर खींचा, तब वह कन्या ऊंचे स्वर से पुकारी। कन्या का पुकारना सुनकर राजा वहां दौड़ा आया और कन्या से पूछा, हे पुत्रि! तुझे किस ने छेड़ा। तब कन्या ने कहा, हे पितः! एक ब्राह्मण ने मुझे हठ से पकड़ा, तब मैंने आक्रोश किया। अब वह ब्राह्मण निर्भय होकर, एक वृक्ष के नीचे बैठा है। राजा ने कन्या का यह वचन सुनकर, क्रोधकर, उस ब्राह्मण को पकड़वाया और हथकड़ी बेड़ी पहिनाकर रामनाथ के समीप एक मण्डप में क़ैद कर दिया और

कन्या को आश्वासन कर, अपने साथ ले गया।

राजा ने रात्रि के समय स्वप्न में उस ब्राह्मण को देखा कि शंख, चक्र, गदा, पद्म, कौस्तुभमणि, पीताम्बर और भांति २ के भूषण धारण किए, शेषशय्या पर सोता है और नारद, गरुड़ विष्वक्सेन आदि किंकर सेवा में खड़े हैं और अपनी कन्या को देखा कि कमल के ऊपर बैठी हाथ में कमल लिये है। सुवर्ण कमलों की माला और भांति २ के रत्नजटित भूषणों से अलंकृत है। दिग्गज जिसका अभिषेक कर रहे हैं। यह कौतुक स्वप्न में देख कर राजा उठा और कन्या के घर में गया। वहां देखा तो कन्या उसी रूप में बैठी है, जो राजा ने स्वप्न में देखा था। प्रभात होते ही राजा कन्या को साथ लेकर, रामनाथ मन्दिर के समीप गया। ब्राह्मण को जहां क़ैद कर रक्खा था, ब्राह्मण को भी उसी रूप में देखा, जो स्वप्न में देखा था। तब राजा विष्णुभगवान् को जानकर स्तुति करने लगा।

पुण्यनिधिरुवाच ।। नमस्ते कमलाकान्त प्रसीद गरुडध्वज ।।

शार्ङ्गपाणे नमस्तुभ्यमपराधं क्षमस्व मे ॥ १ ॥ नमस्ते पुण्डरीकाक्ष चक्रपाणे श्रियःपते ॥ कौस्तुभालंकृताङ्गाय नमः श्रीवत्सलक्षण ॥ २ ॥ नमस्ते ब्रह्मपुत्राय दैत्यसंघविदारिणे ॥ अशेषभुवनावासनाभिपङ्कजशालिने ॥ ३ ॥ मधुकैटभसंहर्त्रे रावणान्तकराय ते ॥ प्रह्लादरक्षिणे तुभ्यं धरित्रीपतये नमः ॥४॥ निर्गुणायाप्रमेयाय विष्णवे बुद्धिसाक्षिणे ॥ नमस्ते श्रीनिवासाय जगद्धात्रे परात्मने ॥ ५ ॥ नारायणाय देवाय कृष्णाय मधुविद्विषे ॥ नमः पङ्कजनाभाय नमःपङ्कजचक्षुषे ॥ ६ ॥ नमः पङ्कजहस्ताय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥ भूयो भूयो जगन्नाथ नमः पङ्कजमालिने ॥ ७ ॥ दयामूर्ते नमस्तुभ्यमपराधं क्षमस्व मे ॥ मया निगडपाशाभ्यां यः कृतो मधुसूदन ॥ ८ ॥ अनयस्त्वं स्वरूपं तान् दैत्यांस्त्वदपराधिनः ॥ अतो मदपराधो यं क्षन्तव्यो मधुसूदन ॥ ९ ॥

इस प्रकार विष्णुभगवान् की स्तुतिकर, राजा पुण्यनिधि महालक्ष्मी की स्तुति करनेलगा।

राजोवाच ॥ नमो देवि जगद्धात्रि विष्णुवक्षस्स्थलालये ॥ नमोऽब्धिसम्भवे तुभ्यं महालक्ष्मि हरिप्रिये ॥ १ ॥ सिद्ध्यै पुष्ट्यै स्वधायै च स्वाहायै सततं नमः ॥ सन्ध्यायै च प्रभायै च धात्र्यै भूत्यै नमो नमः ॥ २ ॥ श्रद्धायै चैव मेधायै सरस्वत्यै नमो नमः ॥ यज्ञविद्ये महाविद्ये गुह्यविद्येऽति-

शोभने ॥ ३ ॥ आत्मविद्ये च देवेशि मुक्तिदे सर्वदेहिनाम् ॥ त्रयीरूपे जगन्मातर्जगद्रक्षाविधायिनि ॥ ४ ॥ रक्ष मां त्वं कृपादृष्ट्या सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि ॥ भूयो भूयो नमस्तुभ्यं ब्रह्ममात्रे महेश्वरि ॥ ५ ॥

इस प्रकार लक्ष्मीजी की स्तुति कर, राजा भगवान् से प्रार्थना करने लगा, हे भगवन्! मैंने बड़ा अपराध किया कि आपके चरणों में बेड़ी डाली। परन्तु यह अपराध मैंने अज्ञान से किया, इसलिये आप क्षमा करें। सब जगत् आपका पुत्र है और आप सबके पिता हैं। पिता को पुत्रों का अपराध क्षमा करना चाहिये। आपने बड़े अपराधी दैत्यों को अपना स्वरूप दिया, इसलिये मेरा अपराध भी आप क्षमा करें। पूतना आपके मारने के लिये आई, उसको आपने सद्गति दी, इस कारण मेरे ऊपर भी कृपादृष्टि कीजिये। सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! राजा का यह वचन सुनकर विष्णुभगवान् बोले, हे राजन्! भय मत कर, हम भक्तों के वश हैं। हमारी प्रीति के लिये तैंने बड़ा यज्ञ

किया, इसलिये हे राजन्! तू हमारा भक्त है और हम तेरे वश हैं। हम भक्तों के अपराध सदा क्षमा करते हैं। तेरी भक्ति की परीक्षा के लिये हमने लक्ष्मी को भेजा। तैंने लक्ष्मी की भली भांति रक्षा की, इसलिये हम तुझ पर प्रसन्न हैं। लक्ष्मी हमारा रूप है, जो इसका भक्त हो, वह हमारा भक्त होता है। जो इससे विमुख हो, वह हमारा द्वेषी है। तूने इसका भक्ति से पूजन किया, उससे हमारा भी पूजन हुआ। इसलिये हे राजन्! तूने हमारा कोई अपराध नहीं किया, तूने लक्ष्मी की रक्षा के लिये हमारा बन्धन किया, इसलिये हम बहुत प्रसन्न हैं। यह लक्ष्मी जगन्माता है, इसकी रक्षा के लिये हमारा बन्धन किया, यह हमको अति प्रिय है, इसलिये हे राजन्! कुछ भय मत कर। यह लक्ष्मी तेरी कन्या है।

यह तो भगवान् ने कहा और लक्ष्मीजी बोलीं, हे राजन्! मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूं। मैं और विष्णुभगवान् दोनों विनोद कलह करके

यहां आये और तेरे योग से तथा भक्ति से हम बहुत प्रसन्न हुये। हमारी कृपा से हे राजन्! सदा तुझको सुख होगा। तू चक्रवर्ती राजा होगा और हमारे चरणों में दृढ़ भक्ति होगी। सदा धर्म में बुद्धि रहेगी और पाप में कभी आसक्ति न होगी, देहान्त में हमारा सायुज्य मिलेगा। विष्णुभगवान् ने कहा, हे राजन्! जिस प्रकार तूने हमको निगड़ से बांधा, अब हम इसी रूप से यहां निवास करेंगे। हम ने ही सेतु बांधा है, इसकी रक्षा के लिये हम सेतुमाधव नाम से यहां रहेंगे। रामनाथ, शिवजी और ब्रह्माजी भी सेतु की रक्षा के लिये यहां निवास करेंगे। इन्द्रादि लोकपाल यहां निवास करेंगे। सब उपद्रव निवृत्त करने के लिये और सबके मनोरथ सिद्ध करने के अर्थ सेतुमाधव नाम से हम यहां स्थित होंगे। तेरी निगड़ से बँधे हमको जो सेवन करेंगे, वे हमारा सायुज्य पावेंगे। हमारे और लक्ष्मी के इस चरित को जो पढ़ेंगे, वे कभी दारिद्र्य को नहीं प्राप्त होंगे

और ऐश्वर्य पावेंगे । तेरे कहे हुए हमारे स्तोत्र को जो पढ़ेंगे तथा सुनेंगे अथवा लिखकर घर में रक्खेंगे, वे जन्म मरण के क्लेश से अवश्य छूट जायँगे । इतना कह कर विष्णु भगवान् वहां पूर्णरूप से स्थित होगये । राजा भी विष्णु भगवान् का महापूजन कर और रामनाथ का सेवनकर, अपने राज्य को गया । राजा अपने पुत्र को मथुरा का राज्य सौंप कर आप रामनाथक्षेत्र में निवास करनेलगा और देह के अन्त में मुक्ति पाई । रानी विन्ध्यावली राजा के साथ सती हुई और अपने पति के समीप पहुँची । सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! जो पुरुष भक्ति से सेतु-माधव का सेवन करते हैं, वे सदा कैलास में निवास करते हैं। जो सेतुमाधव का सेवन विना किये, रामेश्वर की सेवा करे, उसकी सब सेवा व्यर्थ होती है । जो पुरुष सेतु से बालूरेत लेकर गङ्गा में डालें, वे सदा वैकुण्ठ में वास करते हैं। गङ्गा को जाने लगे, तब सेतुमाधव के समीप संकल्प करके जाय, नहीं तो यात्रा निष्फल होती

है । जो पुरुष गङ्गा से काँवर भरकर रामनाथ-क्षेत्र में लावे और रामेश्वर पर गङ्गाजल चढ़ा कर, उस काँवर को सेतु के समीप समुद्र में डाले, वह पुरुष ब्रह्मसायुज्य को प्राप्त होता है । हे मुनिवर्य ! यह सेतुमाधव का वैभव हमने वर्णन किया, इसको जो पढ़े अथवा श्रवण करे वह वैकुण्ठवास पाता है ।

पचासवाँ अध्याय समाप्त ।

इक्यावनवाँ अध्याय ।

सेतुयात्रा के क्रम का वर्णन और विधान ।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य ! अब हम सेतु-यात्रा का क्रम कहते हैं, जिसके श्रवण करने से मनुष्य मुक्त होता है । प्रथम स्नान तथा आचमन कर, शुद्ध होकर रामेश्वर और रामचन्द्रजी की प्रसन्नता के लिये वेदवेत्ता ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए । तब मस्तकमें भस्म का त्रिपुण्ड्र अथवा गोपीचन्दन का ऊर्ध्वपुण्ड्र धारणकर, रुद्राक्षमाला और कुश की पवित्री धारणकर,

(सेतुयात्रामहं करिष्ये) यह संकल्प करके अष्टाक्षर अथवा पञ्चाक्षर मन्त्रको जपताहुआ घरसे यात्रा करे। मार्ग में एक बार हविष्य भोजनकरे। जितेन्द्रिय और जितक्रोध रहे। तीर्थयात्रा में पादुका, छत्र, ताम्बूल, तैलाभ्यङ्ग, स्त्रीसङ्ग आदि का निषेध है। शौच आचार से युक्त रहे। तीनकाल सन्ध्या वन्दन, गायत्री जप और रामेश्वर का चिन्तन करे। मार्ग में नित्य सेतुमाहात्म्य रामायण अथवा और कोई पुराण पढ़े अथवा श्रवण करे। व्यर्थ वाक्य उच्चारण न करे। प्रतिग्रह न लेवे और आचार से रहे। मार्ग में यथाशक्ति शिव और विष्णु का पूजन करता जाय। वैश्वदेव, ब्रह्मयज्ञ, अग्निहोत्र आदि करता जाय। अतिथियों को अन्न देवे और संन्यासियों को यथाशक्ति भिक्षा देता रहे। वित्तशाठ्य न करे और शिव, विष्णु आदि के स्तोत्र नित्य पढ़े। सदा धर्म सेवन करे और निषिद्ध कर्म को त्यागे। इस नियम से सेतु पर पहुँच कर पहिले एक पाषाण समुद्र को देकर समुद्र का आवाहन

करे, फिर प्रणाम कर अर्घ्य दे। तब समुद्र की आज्ञा लेकर स्नान करे और मुनि, देवता, पितर और वानरों का तर्पण करे। सात पाषाण अथवा एक पाषाण—

> पिप्पलादसमुत्पन्ने कृत्ये लोकभयंकरे ।
> पाषाणं ते मया दत्तमाहारार्थं प्रकल्पताम् ॥

यह मन्त्र पढ़कर समुद्र में डाले, तब स्नान सफल होता है।

> विश्वाचि त्वं घृताचि त्वं विश्वयोने विशांपते ।
> सान्निध्यं कुरु मे देव सागरे लवणाम्भसि ॥

यह आवाहन करने का मन्त्र है।

> नमस्ते विश्वगुप्ताय नमो विष्णो ह्यपांपते ।
> नमो हिरण्यशृङ्गाय नदीनां पतये नमः ॥

यह नमस्कार करने का मन्त्र है।

> सर्वरत्नमय श्रीमन्सर्वरत्नाकर प्रभो ।
> सर्वरत्नप्रधानस्त्वं गृहाणार्घ्यं महोदधे ॥

यह अर्घ्य देने का मन्त्र है।

> अशेषजगदाधार शङ्खचक्रगदाधर ।
> देहि देव ममानुज्ञां युष्मत्तीर्थनिषेवणे ॥

यह आज्ञा लेने का मन्त्र है ।

पूर्व दिशा में सुग्रीव, दक्षिण में नल, पश्चिम में मयन्द और उत्तर में द्विविद का स्मरण करे। मध्य में राम, लक्ष्मण, सीता, हनुमान्, अङ्गद और विभीषण का स्मरण करे ।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि प्राविशंस्त्वां महोदधे ।
स्नानस्य मे फलं देहि सर्वस्मात्त्राहि मैनसः ॥

यह मन्त्र पढ़कर हिरण्यशृङ्ग इत्यादि वैदिक मन्त्र पढ़े और नाभि में नारायण का स्मरण करे । स्नान आदि कर्मों में नारायण का स्मरण करता रहे, तो ब्रह्मलोक को प्राप्त हो और सब पापों का प्रायश्चित्त भी हो जाय । तब प्रह्लाद, नारद, व्यास, अम्बरीष, शुकदेव आदि भगवद्भक्तों का स्मरण करे ।

वेदादिर्यो वेदवशिष्ठयोनिः सरित्पतिः सागररत्नयोनिः अग्निश्च तेजेजइलाचतेजोरेतोधाविष्णुरमृतस्य नाभिः इदं ते अन्याभिरस्यमानमद्भिर्याकाश्चसिन्धुं प्रविशन्त्यापः ॥ सर्पो जीर्णामिवत्वचं जहामि पापं शरीरात् ।

यह मन्त्र पढ़कर स्नान करे 'समुद्रावयूनां' इत्यादि मन्त्र पढ़कर नमस्कार करे ।

सर्वतीर्थमयं शुद्धं नदीनां पतिमम्बुधिम् ।

यह मन्त्र और 'द्वौसमुद्रौ' इत्यादि मन्त्र पढ़कर, फिर स्नान करे । तब

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करस्पृष्टानि ते रवे ॥ तेन सत्येन मे सेतौ तीर्थं देहि दिवाकर ।

यह मन्त्र पढ़कर पूर्व आदि दिशाओं में सुग्रीव आदि का पूर्ववत् स्मरण कर तीसरा स्नान करे। जो देवीपत्तन होकर जाय, तो पहिले नव पाषाण के मध्य में समुद्र के बीच स्नान करे। यदि दर्भशय्या के मार्ग से जाय, तो पहिले समुद्र में स्नान करे ।

फिर पिप्पलाद, कवि, कण्व, कृतान्त, मृत्यु, कालरात्रि, विद्या, अहर्गणेश्वर, पराशर, वशिष्ठ, वामदेव, वाल्मीकि, नारद, बालखिल्यमुनि, नल, नील, गवाक्ष, गवय, गन्धमादन, मयन्द, द्विविद, शरभ, ऋषभ, सुग्रीव, हनुमान् और राम, लक्ष्मण, सीता का तीन २ बार तर्पण कर, देवता, ऋषि पितरों का तिल जल से तर्पण करे। चतुर्थ्यन्त अथवा द्वितीयान्त नाम उच्चारण कर,

जल के बीच खड़ा होकर तर्पण करे । समुद्र के बीच तर्पण करने से सब तीर्थों में तर्पण करने का फल प्राप्त होता है । इस भांति सबका तर्पण कर, जल से निकल वस्त्र धारण करे । तब पवित्र होकर, आचमन करके श्राद्ध करे। यदि धनाढ्य हो, तो षड्रस अन्न से पिण्ड देकर गौ, भूमि, सुवर्ण आदि दान कर ब्राह्मणों को देवे । यदि निर्धन हो, तो तिल, चावल से पिण्डदान कर देवे। इसी भांति पाषाणदान से लेकर श्राद्धपर्यन्त सब विधान रामधनुष्कोटि में भी करे ।

चक्रतीर्थ में जाकर स्नानकर वहां के अधिपति नारायण का दर्शन करे । यदि पश्चिम मार्ग से जाय, तो उस दिशा के चक्रतीर्थ में स्नानकर दर्भशायी नारायण का दर्शन करे । फिर कपि-तीर्थ, सीतातीर्थ और ऋणमोचनतीर्थ में स्नान कर, रामचन्द्रजी को प्रणाम करे । फिर कण्ठ से ऊपर वपन कराकर लक्ष्मणतीर्थ में स्नान करे । फिर रामतीर्थ, पापविनाशनतीर्थ, गङ्गा, यमुना, सावित्री, गायत्री, सरस्वती, हनुमत्कुण्ड, ब्रह्मकुण्ड

और नागकुण्ड में स्नान करे । गङ्गा आदि सब तीर्थ नागकुण्ड में निवास करते हैं । यह तीर्थ अनन्त आदि आठ नागों ने रचा है । फिर अगस्त्यकुण्ड में स्नानकर, अग्नितीर्थ में स्नान करे और विधिपूर्वक श्राद्धकर गौ, भूमि, सुवर्ण, अन्न आदि ब्राह्मणों को देवे, तो सब पापों से मुक्त हो जाय। चक्रतीर्थ आदि जिस क्रम से वर्णन किये उसी क्रम से स्नान करे । अथवा जैसी रुचि हो, उस प्रकार तीर्थों में स्नान करे ।

सब तीर्थों में स्नान और श्राद्ध करने के पीछे रामेश्वर महादेव, सेतुमाधव, राम, लक्ष्मण, सीता, हनुमान् और सुग्रीव आदि वानरों का सेवन करे । सब तीर्थों में स्नान करके रामनाथ और रामचन्द्र को प्रणाम कर, रामचन्द्र धनु-ष्कोटि में स्नान करे । वहां भी पाषाण दान आदि नियम सब करे । धनुष्कोटितीर्थ में क्षेत्र, गौ, वस्त्र, अन्न आदि वेदवेत्ता ब्राह्मणों को यथा शक्ति देवे । फिर नियम पूर्वक कोटितीर्थ में स्नान कर, रामेश्वरदेव को प्रणाम करे । यदि सामर्थ्य

हो, तो ब्राह्मणों को सुवर्णदक्षिणा देवे और तिल, धान्य, गौ, क्षेत्र, वस्त्र, अन्न भी ब्राह्मणों को देवे, वित्तशाठ्य न करे। धूप, दीप, नैवेद्य आदि पूजा के उपकरण वित्तानुसार रामेश्वर देव को अर्पण करे। रामेश्वरदेव की स्तुति और प्रणाम कर, सेतुमाधव के समीप जाय। वहां भी सब पूजा के उपचार समर्पण कर पूर्वोक्त नियमों से युक्त अपने घर को आवे। वहां आकर ब्राह्मणों को षड्रस भोजन करावे। इस प्रकार यात्रा करे, तो रामेश्वरदेव सब मनोरथ सिद्ध करते हैं। धन सन्तान की वृद्धि होती है। नरक और दारिद्र्य का भय नहीं रहता और अन्त में मुक्ति प्राप्त होती है। जिस मनुष्य को यात्रा करने की सामर्थ्य न हो, वह सेतु के माहात्म्य का कोई ग्रन्थ श्रवण करे, अथवा इसी सेतुमाहात्म्य को श्रवण करे, तो सेतुयात्रा का फल अवश्य प्राप्त होता है, परन्तु यह बात लँगड़े, लूले, अन्धे आदि के लिये कही है। हे मुनिवर्य! यह सेतुयात्रा का क्रम हमने आप लोगों के

सन्मुख कहा। इसको जो पढ़े अथवा भक्ति से श्रवण करे, वह सब दुःखों से छूटकर मोक्ष को प्राप्त होता है।

इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त।

बावनवाँ अध्याय।

सेतु का और गन्धमादनपर्वत के तीर्थों का माहात्म्य,
अर्धोदय आदि पर्वदिनों में सेतुस्नान का माहात्म्य,
सेतुमाहात्म्य के पठन और श्रवण का विस्तार से
माहात्म्य, व्यासजी का नैमिषारण्य में आगमन,
सेतुमाहात्म्य की प्रशंसा और ग्रन्थ-समाप्ति।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! आपकी प्रीति के लिये हम फिर सेतु को वैभव वर्णन करते हैं, आप प्रीति से श्रवण करो, यह स्थान सब स्थानों से उत्तम है। इस स्थान में किये हुये जप, तप, हवन, दान आदि कर्म अक्षय होते हैं। धनुष्कोटि में स्नान करने से दश वर्ष तक काशीवास किये का फल प्राप्त होता है। जो पुरुष धनुष्कोटि में स्नानकर तीन दिन रामेश्वर का दर्शन करता है, उसे पुण्डरीकपुर के दश वर्ष वास का फल

प्राप्त होता है । जो पुरुष अष्टोत्तर सहस्र जप षडक्षर मन्त्र का इस क्षेत्र में करे, वह शिवसायुज्य पाता है। और उसे मध्यार्जुन, कुम्भकोण, मायूर, श्वेतकानन, हालास्य, गजारण्य, वेदारण्य, नैमिष, श्रीपर्वत, श्रीरङ्ग, वृद्धगिरि, चिदम्बर, वल्मीक शेषाद्रि, वरुणाचल, दक्षिण कैलास, वेंकटाद्रि, हरिस्थल, काञ्चीपुर, ब्रह्मपुर, वैद्येश्वरपुर आदि शिवक्षेत्र और विष्णुक्षेत्रों में वर्ष भर निवास करने से जो फल प्राप्त होता है, वह धनुष्कोटि में माघ मास भर स्नान करने से प्राप्त होता है ।

सेतु के उद्देश से 'द्वौसमुद्रौ' इत्यादि 'अदोयद्दारु' इत्यादि 'विष्णोः कर्माणि पश्यन्ते' इत्यादि 'तद्विष्णोः' इत्यादि कई श्रुति हैं और अनेक स्मृति, इतिहास, पुराण आदि सेतुमाहात्म्य को कहते हैं, जो फल दश वर्ष पर्यन्त काशीवास कर गङ्गास्नान नित्य करने से होता है, वह चन्द्र सूर्यग्रहण में सेतुस्नान से प्राप्त होता है। सेतुस्नान करते ही कोटिजन्म में किये पाप तत्क्षण

नष्ट हो जाते हैं और हजार अश्वमेध का फल प्राप्त होता है । जो पुरुष विषुव, अयन, सोमवार और पर्वदिनों में सेतुस्नान करता है, उसके सात जन्म के पाप निवृत्त होते हैं और वह स्वर्ग लोक को प्राप्त होता है । जो पुरुष मकर के सूर्य और माघमास में सूर्योदय होने के अनन्तर तीन दिन धनुष्कोटि में स्नान करता है, उसे गङ्गादि सब तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त होता है। यदि पांच दिन स्नान करे, तो अश्वमेध आदि सब यज्ञों का फल पावे, चान्द्रायण आदि व्रत और चारों वेद के पारायण का फल प्राप्त होता है । जो पुरुष माघमास में दश दिन धनुष्कोटि में स्नान करता है, वह निश्चय ही ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है । पन्द्रह दिन स्नान करे, तो वैकुण्ठ प्राप्त हो, बीस दिन स्नान करे, तो शिवलोक में वास हो, पचीस दिन स्नान करे, तो सारूप्यमुक्ति पावे, तीस दिन स्नान करे, तो सायुज्य मिले । इसलिये माघमास में अवश्य ही धनुष्कोटि में स्नान करना चाहिये ।

चन्द्र, सूर्यग्रहण, अर्धोदय, महोदय आदि पर्वदिनों में स्नान करे, तो कभी गर्भवास न हो, ब्रह्महत्या आदि पाप निवृत्त हों, नरक-क्लेश न हो, सब सम्पत्ति मिले, इन्द्रादि लोकों में निवास हो। रामचन्द्रजी ने रावण के वध के लिये सेतु बनाया है, जिसको देवता, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, देवर्षि, राजर्षि, पितर, किन्नर, नाग आदि सब सेवते हैं। उस सेतु का स्नान के समय अवश्य स्मरण करे और चाहे जहां तड़ाग आदि में स्नान करने के समय स्मरण करे, तो भी सब पाप निवृत्त हो जायँ। सेतुक्षेत्र में एक मुट्ठी अन्न देने से सब रोग और भ्रूणहत्या आदि पाप निवृत्त होते हैं। रामचन्द्रजी के धनुष् से की हुई रेखा को जो पुरुष देखे, वह अक्षय वैकुण्ठवास पावे।

विभीषण की प्रार्थना से रामचन्द्रजी ने धनुष्कोटितीर्थ बनाया है, उसमें भक्ति से स्नान करे और गौ, भूमि, सुवर्ण, क्षेत्र, तिल, चावल, धान्य, दूध, दही, छांछ, उड़द, वस्त्र, भूषण,

घृत, जल, शाक, भात, शर्करा, मधु, लड्डू, अपूप, आदि सब पदार्थों का दान करे और धन का लोभ न करे, तो सब मनोरथ सिद्ध होते हैं। धनुष्कोटितीर्थ पर किये हुये दान, जप, तप, हवन आदि सब कर्म अनन्तफल देनेवाले होते हैं। धनुष्कोटि में स्नान करने से मनुष्य पवित्र होता है और देवता, पितर, मुनि, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, नाग, किम्पुरुष, यक्ष सब सन्तुष्ट होते हैं। उसके सब कुल सद्गति को प्राप्त होते हैं। राम धनुष्कोटि में स्नान करने से पांच करोड़ महापातक नष्ट होते हैं। सीता ने जहां अग्नि में प्रवेश किया था, उस कुण्ड में स्नान करने से सौ भ्रूणहत्या क्षणमात्र में नष्ट हो जाती हैं।

रामचन्द्रसेतु गङ्गा और विष्णु इनमें कुछ भेद नहीं है, यदि स्नान के समय इनका स्मरण करे, तो परमगति पावे। अर्धोदय पर्व में सेतु-स्नानकर सर्षप के तुल्य पिण्ड पितरों को देवे, तो जब तक सूर्य चन्द्र रहें, तब तक पितर तृप्त रहते हैं। शमीपत्र के तुल्य पिण्ड देवे, तो पितर

स्वर्ग में हों, तो मुक्ति पावें और नरक में हों, तो सब पापों से छूटकर स्वर्ग को जाते हैं । सेत, पद्मनाभ, गोकर्ण, पुरुषोत्तम इन क्षेत्रों में सदा समुद्र के बीच स्नान करना लिखा है । शुक्र, भौम और शनिवार के दिन सन्तान की इच्छा-वाला पुरुष सेतु के विना अन्यत्र समुद्र में स्नान न करे । जो गर्भिणीपति और प्रेतकृत्य न कर चुका हो, वह पुरुष सेतु के विना समुद्र में स्नान न करे । वार, तिथि, नक्षत्र आदि का नियम और क्षेत्रों में है, सेतु में सदा स्नान करना चाहिये । जीवते हुये बान्धवों के निमित्त सेतुस्नान करे, मृतहुओं के उद्देश से न करे । कुशा का पुतला बनाकर उसको स्नान करावे और यह मन्त्र पढ़े, (कुशोसित्वं पवित्रोसि विष्णुना विधृतः पुरा । त्वयि स्नाते स च स्नातो यस्यैतद्ग्रन्थिबन्धनम्) और स्थानों में पर्व के बीच समुद्र पवित्र होता है । सेतु में, गंगा-सागर म, गोकर्ण में, पुरुषोत्तमक्षेत्र में और किसी नदी से समुद्र का संगम हुआ हो, वहां सदा ही पवित्र है । वहां सब काल में स्नान

करना चाहिये और स्थानों में पर्वदिन के विना समुद्र को स्पर्श न करे ।

रामचन्द्रजी ने पितर, देवता और मुनियों के सन्मुख यह प्रतिज्ञा की है कि हमारे सेतु में जो स्नान करें वे जन्म मरण से छूट जाते हैं । राम-नाथ का माहात्म्य तथा सेतु का वैभव हम कोटि वर्ष में भी नहीं वर्णन कर सकते हैं । रामचन्द्रजी का यह वचन सुनकर सब देवता और मुनि बहुत प्रसन्न होकर प्रशंसा करने लगे । सेतु की रक्षा के लिये मध्य में ब्रह्माजी निवास करते हैं और सेतुमाधवनामक विष्णुसेतु में विराजमान हैं और भी देवता, पितर, धर्मशास्त्र के प्रवर्तक महर्षि, गन्धर्व, किन्नर, नाग, यक्ष, विद्याधर, चारण, किम्पुरुष आदि सब सेतु में निवास करते हैं । रामसेतु का दर्शन, स्पर्शन, श्रवण, स्मरण आदि सब पापों से रक्षा करता है । अर्धोदय में स्नान करने से आनन्द तथा मुक्ति की प्राप्ति होती है ।

अर्धोदययोग माघमास, अमावास्या तिथि,

रविवार, श्रवणनक्षत्र, व्यतीपातयोग हो और श्रवणनक्षत्र का सूर्य हो, तब होता है; उस योग में स्नान करनेसे सायुज्यमुक्ति मिलती है। हज़ार व्यतीपात के तुल्य अमावास्या अर्कवार से युक्त हो, तो दश हज़ार अमावास्या के तुल्य होती है। श्रवण नक्षत्र हो, तो बहुत ही पुण्य होता है। इनमें एक २ भी स्नान, दान, जप, पूजन आदि का अनन्त फल देनेवाला है, यदि पांचों का योग हो जाय, तो क्या कहना है। नक्षत्रों में श्रवण, तिथियों में अमावास्या, वारों में रविवार और योगों में व्यतीपातयोग श्रेष्ठ है। इन चारों का योग मकर के सूर्य में हो और उस काल में सेतुस्नान करे, तो जन्ममरण के भय से छूटकर मुक्ति पावे। अर्धोदय के तुल्य कोई पर्व न हुआ है और न होगा, ऐसा ही महोदयपर्व भी है। इन पर्वकालों में सेतुक्षेत्र के बीच यथाशक्ति दान करना चाहिये। जिस ब्राह्मण में आचार, तप, वेद, वेदान्त, शिव, विष्णु आदि देवताओं की भक्ति हो वह दान पात्र होता है, उसी को सब दान देना चाहिये।

जो सत्पात्र ब्राह्मण न मिले तो सब दानवस्तु इकट्ठी कर रक्खे और जब उत्तम पात्र मिले तब दे देवे; परन्तु अधम पात्र को न देवे।

इस प्रसंग में हम एक इतिहास कहते हैं, जो वशिष्ठजी ने राजा दिलीप को सुनाया था। सब पात्रों में उत्तम पात्र वेद के आचार में तत्पर ब्राह्मण है और उनमें भी उत्तम वह है, जिसके उदर में शूद्र का अन्न न गया हो। जो ब्राह्मण वेद और पुराण जाने, शिव, विष्णु आदि का पूजन करे, वर्णाश्रमधर्मों के अनुष्ठान में तत्पर हो, दारिद्रय और कुटुम्बी हो, वह उत्तम पात्र होता है। ऐसे पात्र को दान देने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होते हैं। उत्तम क्षेत्र में तो विशेष करके सत्पात्र को ही दान देना चाहिये। अपात्र को दान देनेवाला मनुष्य दश जन्म तक कृकलास, तीन जन्म तक गर्दभ, दो जन्म तक मण्डूक, एक जन्म चाण्डाल होकर फिर क्रम से शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण होता है; परन्तु सदा दारिद्रय और रोगी होताहै। अपात्र के दान

देने से इस भांति और भी अनेक दोष होते हैं, इसलिये सदा सत्पात्र को ही दान देना चाहिये। जो सत्पात्र न मिले तो संकल्पकर भूमि में जल छोड़ देवे। सत्पात्र न मिले, तो सत्पात्र के पुत्र को देवे, यदि वह भी न मिले, तो महादेव के, अर्पण करे; परन्तु अपात्र को कभी न देवे।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! वशिष्ठजी का यह उपदेश मानकर उस दिन से राजा दिलीप सत्पात्र को दान देने लगा। सेतु आदि पुण्य-क्षेत्रों में सत्पात्र को ही दान देवे। जो तीर्थ पर पात्र न मिले, तो वहां दान करके घर में आकर वह वस्तु सत्पात्र को दे देवे, नहीं तो धर्म का लोप होता है। जो मनुष्य इस प्रकार दान देता है, उसे कभी नहीं दुःख होता और सायुज्यमुक्ति मिलती है। अर्धोदय के समान कोई उत्तमकाल नहीं है। कुम्भकोण, सेतुमूल, गोकर्ण, नैमिष, अयोध्या, दण्डकारण्य, विरूपाक्ष, वेंकट, शाल-ग्राम, प्रयाग, काञ्ची, द्वारावती, मथुरा, पद्मनाभ, काशी, सब नदी, समुद्र, पर्वत आदि तीर्थों पर

मुण्डन और उपवास करना चाहिये। जो पुरुष लोभ अथवा मोह से मुण्डन और उपवास विना किये घर को चला आवे, उसके सब पाप साथ ही चले आते हैं।

गन्धमादन में चौबीस तीर्थ मुख्य हैं। उन में लक्ष्मणतीर्थ पर मुण्डन कराना लिखा है परन्तु कण्ठ से ऊपर वपन कराना चाहिये, वहां वपन कराकर, लक्ष्मणतीर्थ में स्नान कर ब्राह्मण को दक्षिणा देवे और लक्ष्मणेश्वर महादेव का दर्शन करे, तो सब पापों से छूटकर शिवलोक को प्राप्त हो। सेतु के तुल्य तीर्थ, तप, पुण्य और उत्तम गति कोई नहीं है। हजार ग्रहण के तुल्य अर्धोदयपर्व होता है। अर्धोदय के समान संसारमोचक कोई काल नहीं है। जो पुण्य अर्धोदय में रामसेतु के बीच स्नान करने से होता है, उसके तुल्य कोई पुण्य शास्त्र में नहीं कहा है। जो पुण्य साठिहज़ार वर्ष गङ्गा स्नान करने से होता है, वह एक बार सेतुस्नान करने से प्राप्त होता है, अर्धोदय महोदय के पुण्य

की तो क्या गणना है । मकरमास में प्रयागस्नान करने से सब पातक निवृत्त होते हैं, उससे सहस्र-गुणा अधिक पुण्य सेतु में एकबार अर्धोदय के बीच स्नानकरने से होताहै । जो पुण्य तीन लोकों के सब तीर्थों में स्नान करने से होता है, वह अर्धोदय में एक बार सेतु-स्नान करने से होताहै ।

ब्रह्मज्ञानसे हीन, कृतघ्न, दुरात्मा, महापातकी आदि सब अर्धोदय में सेतुस्नान करने से शुद्ध होजाते हैं । कृतघ्न का उद्धार और किसी तीर्थ में स्नान करने से नहीं होता, परन्तु सेतु-स्नान से उसकी भी सद्गति होजाती है । जो मनुष्य अर्धोदय में मोहवश होकर सेतुस्नान न करें, वे अन्धे की भांति सदा संसारकूप में डूबते हैं । अर्धोदय में सेतुस्नान करनेवाले मनुष्य सूर्यमण्डल को भेदनकर, ब्रह्मलोक को जाते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है । अर्धोदय में सेतुस्नान कर रामचन्द्र, सीता, लक्ष्मण, रामेश्वर, सुग्रीव आदि वानरों का ध्यानकर, अपना दारिद्र्य निवृत्त होने के लिये देवता, ऋषि, पितरों का तर्पण

करे और अर्धोदयनामक जगन्नाथ का पूजन करे तो विष्णुभगवान् प्रसन्न होते हैं ।

दिवाकर नमस्तेऽस्तु तेजोराशे जगत्पते ॥ अत्रिगोत्रसमुत्पन्न लक्ष्मीदेव्याःसहोदर ॥ अर्घ्यं गृहाण भगवन्सुधाकुम्भ नमोऽस्तु ते ॥ व्यतिपातमहायोगिन् महापातकनाशन ॥ सहस्रबाहो सर्वात्मन् गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ तिथिनक्षत्रवाराणामधीश परमेश्वर ॥ मासरूप गृहाणार्घ्यं कालरूप नमोऽस्तु ते ॥

इन मन्त्रों से अर्धोदय में अर्घ्य देना चाहिये । ब्राह्मणों को अपने वित्त के अनुसार सब पदार्थ देना चाहिए । चौदह, बारह, आठ, सात, छः अथवा पांच ब्राह्मणों का पृथक् २ मन्त्रों से पूजन करे । कांस्य का अथवा काष्ठ का नया पात्र खीर से भरकर फल, गुड़, घृत, ताम्बूल और दक्षिणा-सहित ब्राह्मणोंके आगे रक्खे और प्रत्येक ब्राह्मण को दूध देनेवाली गौ और यज्ञोपवीत देकर—

श्रवणर्क्षे जगन्नाथ जन्मर्क्षे तव केशव ॥ यन्मया दत्तमर्थिभ्यस्तदक्षयमिहास्तु ते ॥ १ ॥ नक्षत्राणामधिपते देवानाममृतप्रद ॥ त्राहि मां रोहिणीकान्त कलाशेष नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥ दीनानाथ जगन्नाथ कालनाथ कृपाकर ॥ त्वत्पादपद्मयुगले

भक्तिरस्त्वचला मम ॥ ३ ॥ व्यतीपात नमस्तेऽस्तु सोमसूर्य-
सुतप्रभो ॥ यद्दानादिकृतं किञ्चित्तदक्षयमिहास्तु ते ॥ ४ ॥
अर्थिनां कल्पवृक्षोऽसि वासुदेव जनार्दन ॥ मासत्वेयनकालेश
पापं शमय मे हरे ॥ ५ ॥

ये मन्त्र पढ़े, इस प्रकार ब्राह्मणों का पूजन तथा पार्वणश्राद्धकर, हिरण्यश्राद्ध, आमश्राद्ध अथवा पाकश्राद्ध करे, वित्तशाठ्य न करे । तब वस्त्र, भूषण आदि से आचार्य का पूजनकर प्रतिमा, गौ, क्षत्र, उपानत्, वस्त्र आदि उसको देवे । जो पुरुष इस प्रकार अर्धोदय पर्व में सेतु के बीच व्रत करता है, वह कृतकृत्य होजाता है, फिर उसको कुछ करना शेष नहीं रहता । दूसरे क्षेत्रों में भी अर्धोदय पर्व के बीच यही विधान करना चाहिये । रामचन्द्रजी ने गन्धमादन पर्वत के बीच, समुद्र में सेतु बांधा है । जो मनुष्य स्नान के समय सेतु का स्मरण करते हैं, उनके करोड़ों पाप तत्क्षण नाश को प्राप्त होते हैं और विष्णुलोक की प्राप्ति होती है । जो पुरुष निमेषमात्र भी सेतु के समीप निवास

करें, उनके सम्मुख कभी यमदूत नहीं आते । जो पुरुष रामसेतु, धनुष्कोटि, रामचन्द्र, सीता, लक्ष्मण, रामनाथ, हनुमान्, सुग्रीव आदि वानर विभीषण, नारद, विश्वामित्र, अगस्त्य, वशिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप आदि रामभक्तों का सदा चिन्तन करता है, वह सब दुःखों से छूटकर परमपद को प्राप्त होता है । सत्यक्षेत्र, हरिक्षेत्र, कृष्णक्षेत्र, नैमिष, शालग्राम, बदरी, हस्तिगिरि, वृषाचल, शेषाद्रि, लक्ष्मीक्षेत्र, चित्रकूट, कुरङ्गक, काञ्ची, कुम्भकोण, मोहिनीपुर, ऐन्द्रश्वेताचल, पद्मनाभ, महास्थल, फुल्लग्राम, घटिकाद्रि, सार-क्षेत्र, हरिस्थल, श्रीनिवास, भक्तनाथ, आलिन्द-क्षेत्र, शुकक्षेत्र, वारुणक्षेत्र, मथुरा, श्रीगोष्ठी, पुरुषोत्तम, श्रीरङ्ग आदि शिव, विष्णु क्षेत्रों में स्नान करने से जो पातक नाश को प्राप्त होते हैं, वे केवल सेतु स्नान से ही निवृत्त होजाते हैं।

जो पुरुष सेतु स्नान नहीं करते, वे कभी संसार से मुक्त नहीं होते हैं । जो मनुष्य कभी शिवपञ्चाक्षर, नारायणाष्टाक्षर और रामषडक्षर

का कभी जप, स्मरण आदि नहीं करते, वे भी सेतु स्नान करने से निष्पाप होजाते हैं। जो पुरुष कभी एकादशी व्रत नहीं करते, जाबाल्युपनिषद् के मन्त्रों से भस्म नहीं धारते, वेदोक्त मार्ग से शिव, विष्णु आदि देवताओं का पूजन नहीं करते, उन सबके भी पाप सेतु स्नान करने से नाश को प्राप्त होते हैं। जो पुरुष शिव, विष्णु आदि देवताओं का गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि उपचारों से पूजन नहीं करते और रुद्राध्याय, चमक, पुरुषसूक्त, पावमानीसूक्त, त्रिमधुरसूक्त, सुपर्ण, पञ्चशान्ति आदि से कभी अभिषेक नहीं करते, उन पापियों के पाप धनुष्कोटिस्नान करने से तत्क्षण निवृत्त होजाते हैं।

जो पुरुष शिव, विष्णु आदि देवताओं को नमस्कार, प्रदक्षिणा आदि नहीं करते और धनुर्मास में प्रभात ही पूजनकर, महानैवेद्य नहीं लगाते, वे सब रामसेतु में स्नान करने से निष्पाप होजाते हैं। जो पुरुष शिव के अथवा विष्णु के नाम उच्चारण नहीं करते, शालग्राम, शिवनाम

अथवा द्वारकाचक्र का पूजन नहीं करते, गङ्गा की मृत्तिका, तुलसी की मृत्तिका, अथवा गोपीचन्दन को मस्तक में, छाती में और दोनों भुजाओं में नहीं धारते और कभी रुद्राक्ष अथवा तुलसीकाष्ठ को धारण नहीं करते, वे सब धनुष्कोटि में स्नान करने से निष्पाप हो जाते हैं। जो पुरुष प्रभात उठकर शिव, विष्णु के नामस्तोत्र अथवा कोई मन्त्र चिन्तन नहीं करते, वे धनुष्कोटि में स्नान करने से निष्पाप होजाते हैं।

जो पुरुष प्रभात उठकर जलाशय पर जाकर स्नान सन्ध्यावन्दन कर, गायत्री का सेवन नहीं करते, प्रातःकाल, सायंकाल और मध्याह्न के कर्म नहीं करते, ब्रह्मयज्ञ, वैश्वदेव, अतिथिपूजन नहीं करते, संन्यासियों को भिक्षा नहीं देते, जो ब्राह्मण वेदत्रयी पढ़कर भूल जाते हैं अथवा वेद, वेदाङ्ग नहीं पढ़ते, माता, पिता का प्रतिवर्ष श्राद्ध नहीं करते, महालय में अष्टका श्राद्ध और नैमित्तिक श्राद्ध नहीं करते, चैत्र की पूर्णमासी को चित्रगुप्त की प्रसन्नता के लिये पान व कदली शर्करासहित

पायस, गुड़, आम्र, पनस, ताम्बूल, पादुका, छत्र, वस्त्र, पुष्प, चन्दन आदि ब्राह्मणों को नहीं देते, उनके सब पातक धनुष्कोटि स्नान से तत्काल निवृत्त होजाते हैं। दुराचार हो, चाहे सदाचार, जो धनुष्कोटि का सेवन करता है, वह संसार से मुक्ति पाता है। जो मनुष्य मुक्ति चाहे, उसे शीघ्र ही धनुष्कोटि को जाना चाहिए। हे मुनिवर्य! हम सत्यहित और सार कहते हैं कि शीघ्र धनुष्कोटि तीर्थ को जावो। धनुष्कोटि स्नान विना मुक्ति का कोई सरल उपाय नहीं है। वहां स्नान करनेवालों को संसार का भय नहीं होता। धनुष्कोटि स्नान करने से सत्यज्ञान, अनन्त परब्रह्म की प्राप्ति होती है।

सूतजी कहते हैं, हे मुनिवर्य! यह सेतुमाहात्म्य हमने वर्णनकिया। इसके पढ़ने और श्रवण करने से महादुःख, महारोग, दुःस्वप्न, अपमृत्यु आदि का नाश होता है और सबप्रकार से शान्ति होती है, स्वर्ग और मोक्ष भी मिलता है। इसको पढ़ने और सुनने से अग्निष्टोम आदि यज्ञों का और

चारोवेदों के सौ पारायण का फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य इसका एक अध्याय पढ़े, तो अश्वमेध का फल पावे। दो अध्याय पढ़े अथवा सुने, तो गोमेधयज्ञ का फल प्राप्त होता है। दश अध्याय पढ़े, तो स्वर्ग जाकर, इन्द्र के साथ आनन्द भोगता है। बीस अध्याय पढ़ने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। तीस अध्याय पढ़े, तो विष्णुलोक को जाय। चालीस अध्याय पढ़े, तो रुद्रलोक की प्राप्ति हो। जो पुरुष पचास अध्याय पढ़े, वह साम्ब सदाशिव के समीप निवास करता है।

जो पुरुष इस सम्पूर्ण माहात्म्यको एकबार पढ़े, वह शिवसालोक्य पावे। दो बार इस माहात्म्य को सुने, वह विमान में बैठकर शिवजी के समीप जाय। तीन बार पढ़े अथवा श्रवण करे, तो शिव-सारूप्य पावे। जो चार बार पढ़े, वह शिवसायुज्य पाता है। जो पुरुष प्रति दिन इस माहात्म्य का एक श्लोक, आधा श्लोक, एक चरण अथवा एक वर्ण ही नित्य पढ़े, वह उस दिनके किये हुए पापसे छूट जाता है। जो मनुष्य इस सम्पूर्ण माहात्म्य

को पढ़े अथवा सुने, तो जितने अक्षर इस माहात्म्य में हैं, उतनी ब्रह्महत्या, उतने सुरापान, उतने सुवर्णस्तेय, उतने गुरुदारगमन और उतने ही संसर्गदोष तत्क्षण नाश को प्राप्त होजाते हैं। जितने इसमें अक्षर हैं, उतने बार सेतु के सब तीर्थों में स्नान करने का फल इसके पठन और श्रवण से प्राप्त होता है। जो पुरुष इसको भक्ति से लिखे, वह ज्ञान निवृत्ति कर शिवसायुज्य पाता है।

जिस घरमें इस माहात्म्य की पुस्तक रहे, वहां भूत, वेताल, रोग, चोर, अग्नि आदि का भय नहीं होता और ग्रहपीड़ा भी नहीं होती। जिस घरमें यह माहात्म्य हो, वह घर सेतुक्षेत्र के समान है। चौबीस तीर्थ और गन्धमादन पर्वत भी वहां निवास करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु शिवआदि देवता वहां निवास करते हैं। बहुत कहांतक कहें, तीनों लोक वहां निवास करते हैं। जो मनुष्य श्राद्ध के समय एक अध्याय पढ़े, तो श्राद्ध की विकलता दूर होकर पितरोंकी तृप्ति होती है। जो पुरुष सदा इस माहात्म्य को ब्राह्मणों को सुनाता रहे, उसकी

गौ और महिषी नीरोग रहती हैं और बहुत दूध देती हैं। यह माहात्म्य मठ, देवालय, नदी, तड़ाग आदि के तट पर पुण्यवन में और श्रोत्रियों के घर में पढ़ना चाहिये और किसी अपवित्र स्थान में इसको न पढ़ना चाहिए। विषुवसंक्रान्ति, अयनसंक्रान्ति, हरिवासर अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्वदिनों में इसको पढ़े। श्रावण, भाद्रपद, धनुर्मास और उत्तरायण में पवित्र होकर इस माहात्म्य को पढ़े और श्रोता भी पवित्र होकर श्रवण करें। इस माहात्म्य में अनेक पुण्यतीर्थ, बड़े बड़े पुण्यात्मा राजा, तपस्वी, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता वर्णन किये हैं और धर्म अधर्म का भी इसमें प्रतिपादन कियाहै।

यह पवित्र माहात्म्य वेद के अर्थ से युक्त है और स्मृतिकर्ता व्यास आदि मुनीश्वरों का सम्मत है। जो पुरुष अपना कल्याण चाहे, वह इसको अवश्य ही पढ़े। जिससे यह माहात्म्य श्रवण करे, उसको सुवर्ण, वस्त्र आदि देवे, वित्तशाठ्य न करे। सब श्रोता सुवर्ण, वस्त्र, गौ,

भूमि आदि देकर पौराणिक को सन्तुष्ट करें। पौराणिक का पूजन करने से तीनों देवताओं का पूजन होता है और तीनों देवताओं का पूजन करने से तीनलोक सन्तुष्ट होते हैं। साक्षात् परमात्मा ने रामचन्द्ररूप से सीता लक्ष्मण सहित भूमि पर अवतार लिया। इस माहात्म्य के पढ़ने और श्रवण करनेवालों को रामचन्द्रजी भोग और मोक्ष देते हैं। यह माहात्म्य श्रीवेद-व्यासजी के मुखकमल से निकला है। युधिष्ठिर महाराज, भीमसेन आदि अपने भ्राताओं सहित अपने पुरोहित धौम्यऋषि के मुख से इस माहात्म्य को नित्य श्रवण किया करते हैं।

हे मुनिवर्य! हमारे मुख से यह अतिगुप्त और श्रुतिसम्मत माहात्म्य आपने श्रवण किया। इसका नित्य आदर से पठन कीजिये। श्रीशुक-देवजी मुनिवरों से यह वचन कहकर, अपने गुरु वेदव्यासजी का हृदय में स्मरणकर, प्रेम से रोमाञ्चित होकर, अश्रुपात करते हुये आनन्द से नाचने लगे। उसी समय शिष्यों पर अनुग्रह

करने के लिये वेदव्यासजी वहां प्रकट हुये। सूतजी सहित सब मुनि उनके चरणों पर गिरे और आनन्द से अश्रुपात करने लगे। व्यासजी ने अपने हाथ से सूतजी को उठाकर आलिङ्गन किया। मुनियों ने आसन बिछाया, उस पर व्यासजी बैठे और उनकी आज्ञा पाकर सब मुनि अपने अपने आसन पर बैठे।

तब व्यासजी शौनक आदि मुनियों से कहने लगे, हे मुनिवर्य! हमारे शिष्य सूतजी ने आप को सेतुमाहात्म्य श्रवण कराया, जिसके श्रवण से सब महापातक निवृत्त होते हैं। श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास और सब शास्त्रों का अर्थ इस माहात्म्य में पर्यवसन्न है। यह माहात्म्य सब पुराणों में हमको बहुत प्रिय है। हमारी आज्ञा से राजा युधिष्ठिर इस माहात्म्य को धौम्यऋषि के मुख से नित्य श्रवण करते हैं। इसलिये हे मुनिवर्य! आप लोग भी इस माहात्म्य को सदा पढ़ें, श्रवण करें और अपने शिष्यों को पढ़ावें। मुनिवरों ने व्यासजी की आज्ञा को अङ्गीकार

किया । व्यासजी अपने शिष्य सूतजी को साथ लेकर, मुनिवरों से विदा होकर, कैलास को गये और नैमिषारण्यवासी मुनिवरों ने उसी दिन से नित्य सेतुमाहात्म्य को पठन और श्रवणकर, आनन्द को प्राप्त होते भये ।

दोहा ।

भाषा माहिं विचारि कै, तजि मनको परमाद ।
रची रुचिर यह शिवकथा, बुध दुर्गापरसाद ॥ १ ॥
हरनेहारी श्रवन ते, भक्तन के भवफन्द ।
बनी रहै यह भूमि पर, जबलौं सूरज चन्द ॥ २ ॥
सुखी होयँ शिवभक्त सब, भूतिविभूषित भाल ।
जिनके दर्शन पाइ कै, कटैं पाप के जाल ॥ ३ ॥
सदा सदाशिव के तनय, देवन के सिरताज ।
विघ्न हरैं सब जगत् के, अतिकृपालु गणराज ॥ ४ ॥

बावनवाँ अध्याय समाप्त ।

इति ग्रन्थः समाप्तिमगादिति शिवम् ॥